में बहुत असन्तोष था। भरत और भृगु समझते थे कि हमारे ही कारण तृत्सु इतने बड़े हुए। उधर तृत्सु समझते थे कि हमारे ही शौर्य से प्राप्त की हुई समृद्धि और यश में भरत व भृगु लोग व्यर्थ ही भागी बनने आते हैं। विभिन्न प्रसंगों के कारण इन तीनों जातियों का वैमनस्य बढ़ता ही जाता था।

तृत्सुओं के प्रतिष्ठित बड़े-बूढ़े समझते थे कि इस समय तृत्सुओं के राजा सुदास चुपचाप किसी उधेड़-बुन में लगे हुए हैं।

भरतों और भृगुओं की सेनाओं के संयुक्त सेनापति भार्गववृद्ध कवि चायमान तीनों जातियों की ऐसी मैत्री को अस्वाभाविक मानते थे। ऋषि जमदग्नि युद्ध-प्रेमी नहीं थे, तो भी अपने पिता ऋचीक की ज्वलन्त कीर्ति सुरक्षित रखने के लिए वे भृगुओं को लड़ाकू बनाने में लगे थे।

[2]

मध्यरात्रि व्यतीत हुई थी। राजा सुदास द्वारा रक्षित तृत्सुग्राम गाढ़ निद्रा में सो रहा था। राजा सुदास के काका के पुत्र और तृत्सुओं के सेनापति हर्यश्व का महालय भी इस प्रकार निःशब्द पड़ा था मानो सो रहा हो। ऐसे समय इस महालय के उद्यान के बाड़े के पास दो पुरुष खड़े थे।

बाड़े के पीछे से पक्षी का शब्द सुनायी दिया। बाहर खड़े हुए दो पुरुषों में से एक ने भी वैसा ही शब्द किया। तुरन्त ही बाड़े के भीतर से पहले एक स्त्री आयी; उसने चारों ओर देखा और पुरुषों को पहचानकर धीरे-से शब्द किया। उत्तर में बाड़े के भीतर से बहुमूल्य ऊनी वस्त्र धारण किये हुए एक स्त्री निकली।

दो पुरुषों में से छोटी वय के पुरुष ने एकदम आगे बढ़कर इस स्त्री का आलिंगन करके चुम्बन लिया।

शुक्र के तारे के प्रकाश में भी दोनों के रंग का अन्तर स्पष्ट दिखायी दे रहा था।

स्त्री गौर वर्ण की थी, पुरुष का रंग श्याम था। एक आर्या थी, दूसरा

मल्लाह नाव को किनारे ले आये। उसमें से उतरकर सुदास नदी के किनारे-किनारे चलने लगे। अनुचर नाव से उतरकर वहीं खड़ा रहा।

कुछ क्षण चलकर सुदास ने चारों ओर देखा। नदी में कोई स्नान करता दिखायी दिया और वह उसकी प्रतीक्षा करता हुआ खड़ा रहा।

मुनि अगस्त्य के भाई और तपस्वियों में श्रेष्ठ वसिष्ठ स्नान करके पीने के पानी का घड़ा कन्धे पर रखकर नदी से बाहर निकले।

जब उनके पूज्य भाई अगस्त्य ने आर्य संस्कार की अवगणना करने-वाली लोपामुद्रा से विवाह किया, जब दास-कन्या उग्रा के साथ भरतों के राजा विश्वरथ ने घर बसाया, तब पापाचार से त्रस्त होकर उन्होंने राजा दिवोदास का पुरोहितपद और तृत्सुग्राम दोनों का परित्याग कर दिया। अरुन्धतीपद का उपभोग करनेवाली साध्वी पत्नी और विद्या तथा तप के निधि पुत्र शक्ति से सेवित वसिष्ठ ने पापभूमि में न रहने की प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए तृत्सुग्राम से दूर परुष्णी के तट पर जंगल में नया आश्रम स्थापित किया। देवों की आराधना करके आर्य-संस्कारों को विशुद्ध रखते हुए और पूजन करनेवालों की पूजा स्वीकार करके उन्होंने लगभग बीस वर्ष तक बन का सेवन किया। उन महाभाग ने मन, वाणी और कर्म को नियन्त्रण में रखकर स्तुति और निन्दा को समान मानते हुए मुनियों को भी दुष्प्राप्य तप किया था।

राजा ने मुनि के चरण छुए और आदरपूर्वक कहा, "गुरुवर्य, मैं प्रणाम करता हूँ।"

"शतंजीव, सुदास!"

"मुनिश्रेष्ठ, आपने मुझसे कहा था न कि एक वर्ष के पश्चात् आना," कहकर सुदास मुनि के साथ चलने लगे।

"हाँ, क्या कहना है?"

"एक वर्ष पहले मैंने जो कुछ कहा था वही। आप तृत्सुग्राम पधारें और तृत्सुओं का पुरोहितपद लें।"

"राजन्, मैंने तुम्हें बारह महीने विचार करने के लिए दिये थे। मेरे

आने से तुम पर क्या-क्या बीतेगी, उस पर तुमने सब सोच लिया ?" मुनि ने पूछा।

"जी हाँ, सब सोच लिया है। अब आपको चलना ही पड़ेगा।"

"तुम तो मेरी प्रतिज्ञा जानते ही हो कि जहाँ विश्वामित्र रहता हो वहाँ मैं पैर भी नहीं धर सकता। और फिर राजा हरिश्चन्द्र के यज्ञ से वह लौट आयेंगे तब ?"

"उन्हें लौटने में अभी दो महीने लगेंगे। मैं आपको पुरोहितपद पर स्थापित कर दूँगा तो वह स्वयं भी नहीं आयेंगे," सुदास ने कहा।

"सुदास, मुझमें और विश्वामित्र में वैयक्तिक द्वेष नहीं है। वरुणदेव ने मुझे ऐसे द्वेष से सदा ही अस्पृष्ट रखा है, पर विश्वामित्र ने ऋत का द्रोह किया है, दासों को आर्यत्व प्राप्त कराने के भ्रष्टाचार को उन्होंने धर्म माना है। जहाँ यह भ्रष्टाचार हो वहाँ मैं नहीं रह सकता," मुनियों में श्रेष्ठ वसिष्ठ ने कहा।

"गुरुवर्य, मुझे भी इस भ्रष्टाचार से आर्यों को बचा लेना है। मेरे पिता इस बात में विश्वास करते थे। विश्वामित्र में उन्हें श्रद्धा थी। पर इन दासों के कारण मैं कायर बन रहा हूँ।"

"या विश्वामित्र और भरतों के तेज से द्वेष करने के कारण ही तुम जलते हो ? क्या तुम मुझे इसीलिए ले जाना चाहते हो ?" वसिष्ठ हँसे। मनुष्य-हृदय के रहस्यों से वह अपरिचित न थे।

"गुरुवर्य, आपके सामने मेरा मिथ्या बोलना किस काम का ? वह मेरे राज्य के स्वामी बन बैठे हैं। मैं भी उनसे ऊब गया हूँ और मेरे तृत्सु भी ऊब उठे हैं," व्याकुल होकर सुदास ने कहा।

"तो भरतों के साथ युद्ध करना पड़ेगा।"

"इसके लिए मैं प्रस्तुत हूँ। मैं भरतों से निपट लूँगा," सुदास ने कहा।

मुनि ने थोड़ी देर मौन धारण किया—"सुदास, इस समय हमें दो टूक बात कर लेनी चाहिए। मेरी बात यदि तुम्हारा मन स्वीकार न करे

तो निमन्त्रण वापस ले लेना। यदि वरुणदेव मुझे आज्ञा देंगे कि यह कर्तव्य मुझे पूरा करना चाहिए तो मैं चलूँगा, पर…"

"पर क्या ?" सुदास फूला नहीं समाया।

"सुदास," मुनिश्रेष्ठ ने कहा, "मैं अनेक बार देव से प्रार्थना करता हूँ, पर मुझे स्पष्ट आज्ञा नहीं मिलती। किन्तु यदि मेरे आदेशों का तुम पालन करो तो मैं समझता हूँ कि देव मुझे अवश्य मार्ग-प्रदर्शन करेंगे।"

"कहिए, क्या आदेश है ?"

"तुम्हें ऐसा प्रबन्ध करना होगा कि तृत्सुग्राम में विश्वामित्र पैर न रख सकें।"

"इसके लिए मैं तैयार हूँ," सुदास ने कहा।

"कदाचित् मेरे बड़े भाई महर्षि अगस्त्य अनूप देश से लौट आयें तो उन्हें और…" वसिष्ठ का स्वर कुछ रुका "…उनकी पत्नी को अपने राज्य में न रहने देना।"

"मैं अर्जुन से कहूँगा। वह मेरा मित्र है। इतना तो वह कर ही देगा।"

"अच्छा," वसिष्ठ आगे बढ़े, "और दास हो या दासी-पुत्र, उसे आर्यों से दूर रखना होगा। विश्वामित्र ने जिस वर्णसंकरता का आरम्भ किया है उसके सम्पूर्ण विनाश के बिना आर्यों की वर्ण-शुद्धि सुरक्षित नहीं की जा सकती।"

"देवों ने आपको इस विनाश के लिए ही तो जन्म दिया है। मैं हूँ, मेरे तृत्सु महाजन हैं, शृञ्जय हैं, वीतहव्य हैं। आपके शिष्य तो गाँव-गाँव में भी हैं। यह केवल देव की कृपा से ही हो सकता है।"

मुनि ने कहा, "विश्वामित्र की विद्या और उसका तप अपार है। उसके भरत और अन्य शिष्यों की संख्या सहस्रों तक है।"

"पर आप मेरे साथ हो जायँ, फिर मुझे और कुछ नहीं चाहिए," सुदास ने कहा।

"देव ! क्या इसीलिए मुझे जीवित रख छोड़ा है ?" वसिष्ठ ऊपर

"वह मैं मानता हूँ," वसिष्ठ मुनि ने स्वीकार किया, "दासवर्णी लोग आर्य जातियों में स्थान पाते जा रहे हैं, इससे तुम और तुम्हारे महाजन सब व्याकुल हो गये हैं।"

"यह सत्य है," सुदास ने कहा।

"गतवर्ष तुम जब मुझे पुरोहितपद देने आये तब मैंने तुम्हें एक वर्ष की अवधि दी थी। इसका कारण जानते हो ? मैं तुम्हारी स्थिरता को कसौटी पर कसना चाहता था।"

"आप जिस कसौटी पर चाहें मुझे कस सकते हैं, मैं तैयार हूँ। इसी-लिए तो आज मैं आपके पास आया हूँ।"

"तुम्हें देखते ही मुझे ऐसा भान हुआ कि मुझे तुम्हारा पुरोहितपद स्वीकार करने की देवाज्ञा हो जायेगी," वसिष्ठ ने कहा।

"फिर विलम्ब किसलिए ?"

"कल सूर्योदय तक मैं देव की आज्ञा माँगूंगा। यदि आज्ञा प्राप्त हुई तो मैं तुम्हें 'हाँ' कहूँगा।"

"गुरुदेव, ना मत करना," सुदास ने विनती की।

"यह बात मेरे हाथ में नहीं है, देवों के हाथ में है। और फिर मुझे चोरी से विश्वामित्र का पद नहीं लेना है।"

"एँ ?" सुदास ने पूछा।

"तुम आज जाकर अपने महाजनों से ये सब बातें कहना और जो वे कहें उसकी सूचना कल भिजवाना।"

"उनकी तो सम्मति है ही।"

"नहीं, उन्होंने मेरे प्रतिबन्धों को बिना जाने ही सम्मति दी है, नहीं तो तुम इस प्रकार छिपकर क्यों आते ?"

सुदास को यह उपालम्भ थप्पड़-जैसा अपमानजनक जान पड़ा, पर इस समय उसे सहन करने के अतिरिक्त दूसरा चारा भी नहीं था।

"और यदि देव ने मुझे यह पद स्वीकार करने की आज्ञा दे दी तो शक्ति को मैं विश्वामित्र के पास पूछने भेजूंगा," मुनि ने कहा।

"विश्वामित्र के पास ?" सुदास ने चौंककर पूछा, "किसलिए ?"

"मैं उनसे पुछवाऊँगा कि सुदास जो पुरोहितपद मुझे देना चाहते हैं उसे मैं स्वीकार करूँ या नहीं," धीरे-से वसिष्ठ ने कहा।

"अरे, क्या यह भी सम्भव है ? इससे उनका क्या सम्बन्ध ?" सुदास को सब खेल उलटता-सा दिखायी दिया।

"मैं चोर नहीं हूँ। उनका और मेरा सत्य भिन्न है। इस बात से उनके जैसे मन्त्रद्रष्टा अनभिज्ञ न होंगे।"

"वे ना कर देंगे तो मेरा क्या होगा ?"

"वे ना न करेंगे, पर यदि वे ना कर ही देंगे तो मैं तुम्हारा दिया हुआ पद नहीं लूँगा। ब्राह्मण कभी ब्राह्मण की चोरी नहीं करता," मुनि ने सूत्र का उच्चार किया।

"पर इस प्रकार मेरा किया-कराया सब मिट्टी हो जायेगा," सुदास ने व्याकुल होकर कहा। पुरोहितों से उकताकर वह मन में उत्पन्न होते हुए क्रोध को ज्यों-त्यों दबाये रहे।

"देव की इच्छा के विना किसी का कुछ नहीं बिगड़ता। सुदास, मुझे पुरोहितपद की लालसा नही है और मैं समझता हूँ कि उन्हें भी नहीं है। यदि वह मुझे पुरोहितपद लेने से रोकेंगे तो यह तभी सत्य होगा जब वे सच्चे तपस्वी होंगे। यदि वह अधूरे हुए तो यह असत्य से धारण किया हुआ पद उन्हें नहीं पचेगा।"

"पर गुरुदेव, मेरे राज्य का, मेरे तृत्सुओं का कुछ हित होगा या नहीं ?" मुनि की दृष्टि परखने में अशक्त राजा ने पूछा।

"ऋत का सेवन किये बिना आर्यों के संस्कार मैं किस प्रकार सुरक्षित कर सकूँगा ?" सरलता से वसिष्ठ ने पूछा।

सुदास ने निःश्वास छोड़ा, "जैसी गुरुदेव की इच्छा !"

"अच्छा, कल किसी को भिजवाना। मैं उत्तर भिजवा दूंगा। किन्तु उससे पहले एक विचार भी कर लेना है।"

"क्या ?"

"मेरे वहाँ आने पर लोमहर्षिणी क्या करेगी, यह भी मुझे सूचित करना।" आश्रम के निकट पहुँचते ही मुनि खड़े हो गये, "तुम्हें आश्रम में चलने की आवश्यकता नहीं है। कल दोपहर को हर्यश्व के हाथ सन्देश भिजवा देना।"

"गुरुदेव, आशीर्वाद दीजिए," सुदास ने साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया।

आशीर्वाद देकर पीछे देखे बिना ही स्थिर पद से जब मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठ अपने आश्रम में चले जा रहे थे तब उनके तेजस्वी नयन सदा की भाँति भूमि पर ही गड़े हुए थे।

[4]

आश्रम से वापस लौटते समय तृत्सुओं के राजा सुदास के हृदय में शुद्ध उत्साह या आनन्द नहीं था। उनकी बात रखी तो जा रही थी किन्तु उनके सोचे हुए ढंग से नहीं।

वसिष्ठ यदि पुरोहित हो भी गये तब भी वे अपनी मनमानी कितनी कर सकेंगे, इस सम्बन्ध में उन्हें जो शंका थी वह अब पक्की हो गयी। किन्तु विश्वामित्र के चले जाने पर वसिष्ठ को दूर करने में देर न लगेगी, यह विश्वास उनके हृदय में निश्चय रूप से विद्यमान था। मुनि के पास सेना नहीं थी। उनके पीछे भरत और भृगु-जैसी प्रतापी जातियाँ नहीं थीं। वे तो केवल एक तपस्वी मात्र थे। आवश्यकता पड़ने पर उन्हें निकालने में कितनी देर लगेगी ? पर इस समय उनके बिना कोई मार्ग भी नहीं था।

अन्त में सुदास ने इसके लिए कमर कस ली। इस क्षण के लिए उसने वर्षों वाट देखी थी और तैयारियाँ की थीं। उसने तृत्सुओं की सेना अपने हाथ में कर ली थी। तृत्सु और भरत महाजनों के बीच वैर का बीज बो दिया था। अर्जुन वीतहव्य-जैसे क्रोधी स्वभाववालों को भी मित्र बनाया था। और यदि लोमा का विवाह उससे हो सके तो वह सदा दास बनकर रहनेवाला था।

भी दासियों से विवाह करने लगे थे, यह बात भी बहुत-से आर्यों को खटकती थी। इसलिए दासों पर अंकुश रखनेवाला शासन उनकी इच्छानुकूल ही था, पर आर्याओं पर अंकुश रखने का शासन उन्हें अच्छा नहीं लगेगा। उससे घर-घर झगड़े होंगे। महाजन यदि इस शासन का अनुमोदन भी करेंगे तो भी एक-दूसरे पर कटाक्ष किये बिना न रहेंगे। वह स्वत: लोमा द्वारा ही इस शासन का पालन कैसे करायेगा ?

लोमा को वश में रखना कठिन काम था। राजा दिवोदास ने इस लड़की को बहुत सिर चढ़ाया था। जो बचा-खुचा था वह लोपामुद्रा ने पूरा कर दिया था। आर्यों का एक भी ऐसा शिष्टाचार नहीं था जिसे वह तोड़ती नहीं थी। प्राय: वह पुरुषों का वेश बनाती, धनुष-बाण चलाती, जंगल में घूमती, दासों के घर जाती और बड़े-बड़े आर्यों की लड़कियों पर प्रभुत्व जमाकर उनके घर फोड़ती थी। वह जंगली बिल्ली है, सुदास ने स्नेह से विचार किया। उसमें लोपामुद्रा के सब दोष आ गये थे, यह बात सच थी, किन्तु उनके अनूपदेश जाने के पश्चात् तो वह अत्यन्त निर्लज्ज हो गयी थी। किसी का कहा मानने को वह तैयार न थी, तब उसके आचार को वह किस प्रकार ठीक करता ? इस बिल्ली के प्रति उसे बहुत बड़ा स्नेह था। जब-जब वह आती अपने साथ प्रोत्साहन लाती थी। उसके अल्हड़पन में जो आवेश था वह उसे जान पड़ता था मानो मेरे अपने हृदय में जलती हुई महत्त्वाकांक्षा का ही स्वरूप हो। सब लोग उसके डर से या स्वार्थ से उसकी ओर प्रवृत्त होते थे, किन्तु लोमा ही एक ऐसी थी जो किसी की चिन्ता किये बिना नि:स्वार्थ भाव से ही खूब जी-भर के चाहती थी।

इस जंगली बिल्ली को किस प्रकार शासनबद्ध किया जाय यह पहेली उसके सामने उपस्थित हुई। उसने तो सोचा था कि वसिष्ठ आयेंगे और उसे फुसलाकर ठीक कर लेंगे। उसके मन में कुछ ऐसा भी था कि लोमा ही वसिष्ठ को तंग करके कुछ ठीक मार्ग पर ले आयेगी।

कुछ मास पूर्व जब अर्जुन अपने अशिष्ट ढंग से लोमा के साथ बात करने लगा तब किस चातुर्य से लोमा ने उसे ठीक कर दिया था ? उसी

बना रहता है।

जब राजा दिवोदास यमलोक सिधारे तब एक मनवाले राजा और सेनापति ने विश्वामित्र को हटाकर एकचक्र राज्य करने की योजना को कार्यरूप देना प्रारम्भ कर दिया। उसी के परिणामस्वरूप अर्जुन वीतहव्य अगस्त्य को अनूप देश ले गया और सुदास जाकर वसिष्ठ को निमन्त्रित कर आया।

जितने तृत्सु महाजन थे वे दासों से द्वेष और भरतों से ईर्ष्या करते थे। उन्हें हर्यश्व सदा अपनी मुट्ठी में रखता। किन्तु वसिष्ठ ने जो अन्तिम प्रतिबन्ध बताया उससे उनकी योजना पर पानी फिर गया। विश्वामित्र को मुक्त करने के लिए पूरी योजना को सिद्धान्त का रूप दिया जा रहा था। महाजनों की सम्मति लेने का अर्थ था वसिष्ठ मुनि का सम्मान और स्त्रियों पर अंकुश लगाने का अर्थ था घर-घर आग लगाना।

राजाज्ञा के अनुसार तृत्सु महाजन तुरन्त ही राजसभा में आ पहुँचे और उनकी योजना सुनकर सब बड़े प्रसन्न हुए। सेनापति हर्यश्व ने पहले ही से सब व्यवस्था कर ली थी, इसलिए वसिष्ठ के प्रतिबन्धों को स्वीकार करने में किसी को कोई आपत्ति नहीं हुई। जो आपत्ति करनेवाले थे वे एक-न-एक बहाना निकालकर दूसरे गाँव चल दिये थे।

[5]

राजा और सेनापति दोनों उद्यान में टहलते हुए नयी योजनाएँ गढ़ रहे थे। इतने में ही दो व्यक्तियों के दौड़ते हुए आने की आहट सुनायी दी, और एक युवती का शब्द क्रोधपूर्वक आज्ञा करता हुआ सुनायी दिया, "राम, धीरे-धीरे दौड़ो।"

राजा और हर्यश्व दोनों जहाँ-के-तहाँ खड़े हो गये। सुदास का हृदय थर्रा उठा। जिससे वह मिलना चाहता था यह उसी की ध्वनि थी। पर इस समय वह ध्वनि न सुनायी पड़ी होती तो बहुत अच्छा होता। वह जंगली बिल्ली न जाने क्या कर बैठे?

पेड़ों की झुरमुट से एक युवती और एक लड़का दौड़े चले आ रहे थे।

उन्नीस वर्ष की लोमहर्षिणी का नन्हा भोला-सा मुखड़ा इस समय दौड़ने से और व्याकुलता से लाल हो गया था। उसकी आँखें चपलता से नाच रही थीं और उसके खुले बाल पीछे उड़ रहे थे। उसके सब अंग सुन्दर और सशक्त थे।

लड़के के समान उसने भी मृगचर्म का काछ बाँध रखा था। केवल छाती पर बंधे हुए कपड़े के बन्धन से उसने अपना स्त्रीत्व स्वीकार किया था। उसे देखकर ऐसा जान पड़ता था मानो मनोहारिणी सुन्दर अश्विनी छलाँगें भरती हुई पवन वेग से दौड़ी चली आ रही हो।

लोमा के साथ दौड़कर आनेवाला बालक होगा तो लगभग चौदह वर्ष का, पर लगता था सत्रह-अठारह वर्ष का। उसका शरीर अच्छे डील-डौल का और सुन्दर था। उसके चमकते हुए मुख पर इस अवस्था की दृष्टि से गाम्भीर्य था। उसकी काली—बहुत काली—आँखों में तेज था और विकराल प्राणी की आँखों में रहनेवाली त्रासदायक और स्थिर ज्योति इस समय उनमें चमक रही थी।

सुदास से थोड़ी दूरी पर लोमा खड़ी हो गयी—हाँपती हुई, अपने उछलते हुए छोटे-छोटे स्तनों से मोहक लगती हुई और अपनी क्रोधाग्नि से जलती हुई दृष्टि से सुदास को जलाती हुई। उसके पास वह बालक खड़ा रहा—गठीले बलवान शार्दूल-जैसा स्वस्थ और छलाँग मारने को तत्पर।

"भाई !" दाँत पीसकर बोलती हुई क्रोधाविष्ट लोमा ने पूछा, "क्या आपने मुनि वसिष्ठ को पुरोहितपद पर प्रतिष्ठित किया है, ऋषि विश्वामित्र के स्थान पर ?" एक से दूसरे की ओर वह देखती रही। सुदास अवाक् हो गया। उसने लोमा को डाँटने की जो योजना बाँधी थी वह ढीली पड़ गयी।

"हाँ, क्यों ?" उसने उत्तर दिया।

लोमा ने पैर चौड़े कर जमा लिये, कमर पर हाथ रखकर और सिर पीछे करके साँप के फूत्कार के समान स्वर में पूछा, "किसे पूछकर यह सब

हैं और अब उन्हीं के साथ रहना पड़ेगा ! वह जाकर रानी के पास बैठ गयी। कोई बोला नहीं।

थोड़ी देर तक मुनि अग्नि की ओर देखते रहे और फिर कहा, "महिषी, बड़ा अच्छा किया, आप आयीं। कहिए क्या कहना है ?"

"राजा ने प्रणाम कहलाया है," हर्यश्व ने कहा, "महाजनों ने आपके आगमन पर सहर्ष बधाई दी है।"

"हूँ।"

"आपने जो आदेश दिये थे उनकी घोषणा भी हो चुकी है।"

"दोनों की ?"

"जी हाँ।"

शशीयसी ने एक द्वेष-भरी दृष्टि वसिष्ठ पर डाली। वसिष्ठ तो अग्नि की ओर ही देख रहे थे।

"हम सब आपका स्वागत करने के लिए आतुर हो रहे हैं," पौरवी ने कहा।

मुनि के मुख पर मन्द हास्य छा गया, "सब ?"

"कुछ लोगों को भले ही अच्छा न लगता हो," रानी ने सुधार किया।

"क्या आप अब भी ऋषि विश्वामित्र को सन्देश भिजवाने की आवश्यकता समझते हैं ?" हर्यश्व ने पूछा, "हमें तो आवश्यकता नहीं जान पड़ती।"

"तुम्हें न जान पड़ती हो, यह मैं समझता हूँ, किन्तु उनकी अनुमति के बिना मैं नहीं आ सकता।" उन्होंने दूर बैठे हुए शक्ति की ओर देखकर कहा, "बेटा, सूर्य तपने से पहले ही चले जाओ।" फिर हर्यश्व की ओर देखकर उन्होंने कहा, "किन्तु जान पड़ता है अभी राजा सुदास का सन्देश पूरा नहीं हुआ।"

रानी ने कहा, "राजा ने लोमा बहन को मर्यादा में बाँधना प्रारम्भ किया है।" शशीयसी ध्यान से सुनने लगी।

"यह मैं नहीं जानना चाहता था," मुनि ने कहा।

"तब ?"

भेद का रक्त खौल उठा।

वह, उनका राजा, राजा शम्बर का पुत्र, इस प्रकार कायर के समान छिपकर घूम रहा था। अपनी अधमता वह भली प्रकार समझ गया। जो हारा वह मारा गया। आज वह तो दास था, काले वर्ण का था।

उसके हृदय में व्याप्त विष में से संकल्प का उदय हुआ। उसने तृत्सु-ग्राम से चोर के समान नहीं प्रत्युत विजेता के समान जाने का संकल्प किया। दासों के पास जितने घोड़े थे उतने उसने मँगवा लिये और उन्हें अपने राज्य में चलने की आज्ञा दी। पर उनमें से वहुतों ने उसके साथ जाना अस्वीकार कर दिया। उन्होंने हाथ जोड़कर कहा, "यह तो बादल आया है, उड़ जायेगा और फिर पूर्ववत् स्थिति हो जायेगी। हड़बड़ाना और घबराना उचित नहीं है।"

भेद के क्रोध का पार न रहा, "जाओ, तुम लोग आर्यों के पशु बनकर रहने योग्य हो।"

दो सौ घुड़सवार तो उसके अपने थे। दूसरे पचास के लगभग महाजन साथ हुए, और इन सबको लेकर दिन निकलते ही उसने अपने राज्य का मार्ग पकड़ा। ग्राम छोड़ते समय उसने भी आर्यों के कितने ही घरों को फूंक डाला।

राजा भेद ने गाँव छोड़ते समय पीछे फिरकर दृष्टि डाली। यहीं वह वड़ा हुआ था, यहीं उसने पढ़ा-लिखा था, आनन्द मनाया था, और वह सुखी हुआ था। आज उसे किसी हिंसक और वध्य पशु के समान सब दूर हाँक रहे थे।

थोड़ी देर के पश्चात् उसने घोड़ा रोका और फिरकर इस प्रिय और परिचित स्थान के दर्शन किये। परुष्णी वह रही थी, कल्लोल करती हुई—इन सब दोषों से अस्पृष्ट। ग्राम में वहुत से स्थानों में उसी प्रकार की ज्वालाएँ उठती दिखायी दीं, जिस प्रकार उसके हृदय में उठ रही थीं। उसके चारों ओर प्रासादों और आश्रमों की सुशोभित घटाएँ शोभायमान थीं। फिर उसे ये सब कब देखने को मिलेंगे!

प्राण-संकट होने पर भी वह जिज्ञासा न रोक सका। रास्ते के पास एक छोटी-सी टेकड़ी पर खड़े पेड़ के पीछे से वह ध्यान से देखने लगा कि नावों में कौन जा रहा है।

मुनि को कभी पहले न देखे रहने पर भी उसने तुरन्त पहचान लिया। उनका तेज, मन्द गति और एकाग्र दृष्टि उन्हें पहचानने के लिए पर्याप्त थे, अन्यथा अन्य लोग क्यों उनके मान की रक्षा करते हुए चलते ? और···भेद का गला रुँध गया। उनके साथ···पौरवी रानी···और उनके साथ सुन्दर लावण्यमयी शशीयसी ! हाँ, वही थी। सृष्टि में अन्य ऐसी कोई हो ही नहीं सकती।

साथ में हर्यश्व और कुछ थोड़े-से तृत्सु महाजन थे, थोड़े तपस्वी भी थे।

शशीयसी के बालों पर पड़ती हुई सूर्य की किरणें उसने देखीं। यही बाल न जाने कितनी बार उसकी उँगलियों में से पानी के समान निकल भागे थे—काले, सुन्दर, लम्बे और पुष्पों से सुगन्धित···और उसका हृदय विचलित हो उठा, उसकी जीभ ने निःशब्द उत्कण्ठा से 'शशीयसी' शब्द का उच्चारण किया। मरुभूमि में तड़पनेवाला जिस प्रकार पानी के लिए तरसता है, इसी प्रकार उसकी नस-नस शशीयसी के लिए तरसने लगी।

वह अकेली नहीं थी। साथ में मुनिश्रेष्ठ भी थे। हर्यश्व और महाजन भी साथ में थे, यह ध्यान उसे था।

उसे तत्काल स्मरण हुआ कि आर्यों की पुनीत प्रणाली के अनुसार आश्रम में शस्त्र नहीं ले जाये जा सकते; और वहाँ किसी प्रकार का अत्याचार नहीं किया जा सकता। पर यह तो आर्यों की प्रणाली है। उसे इससे क्या ? वह कहाँ आर्य है? वह तो काला दास, वध करने योग्य भेड़िया था। उसके ओठ क्षुधार्त भेड़िये के समान चलायमान हुए।

उसे थोड़ा ही चेत रहा···उसकी नसें शशीयसी को पुकार रही थीं। इस समय उसके साथ सशस्त्र मनुष्य थे। उसके हृदय में उल्लास का सागर हिलोरें मारने लगा—उसके कट्टर शत्रु वसिष्ठ के सामने, उनके आश्रम के

[1]

लोमहर्षिणी, राम और विमद तीनों घोड़ों पर चढ़कर राजा हरिश्चन्द्र के यहाँ जाने के लिए चल पड़े।

लोमा बड़ी प्रसन्न थी। उसने एक ही फटकार में सुदास और वसिष्ठ दोनों को छकाया था, तृत्सुग्राम का संकुचित वातावरण छोड़कर बाहर चली आयी थी और राम के साथ घूमने निकली थी। राजा दिवोदास की सन्तान और भगवती लोपामुद्रा की शिष्या के नाते वह विश्वामित्र से पुरोहितपद न छोड़ने की प्रार्थना करने जा रही थी। इस कारण उसके उल्लास में कर्तव्यनिष्ठा का अंश भी मिश्रित था।

वह और राम दोनों बराबर-बराबर घोड़ों पर चढ़े जा रहे थे। यह भी उसके लिए बहुत सुख की बात थी। राम के अश्व-संचालन कौशल पर वह सदा से मुग्ध होती रही है। जब वह घोड़े पर बैठता था, घोड़ा उसका अङ्ग बन जाता था। चौदह वर्ष की अवस्था में ही वह अश्वविद्या में निपुण हो गया था। अड़ियल-से-अडियल घोड़ा भी उसका स्वर सुनते ही ठण्डा हो जाता था। जंगली घोड़ों को भी ठीक करना उसे आता था, घोड़ियों की देखभाल और टट्टुओं का पोषण भी वह जानता था।

इस समय भी वह एक ऊँचे बड़े घोड़े पर जमा बैठा था—स्वस्थ,

पास बिठाया था।

"यदि तू चपलता करेगी तो मैं तुझे तृत्सुग्राम भिजवा दूंगा," उन्होंने कहा था।

कहीं अम्बा को छोड़कर सचमुच न चला जाना पड़े, इसलिए उसने आँसू रोककर रोना बन्द कर दिया था, ऐसा कुछ उसे स्मरण था।

वह ऋषि के पास बैठी रही। ऋषि भी पत्नी की चिल्लाहट से घबराये हुए थे। सामने वृद्ध कवि बैठे थे। वे वृद्ध भार्गव कुछ इधर-उधर की बातों में बहलाकर ऋषि को आश्वासन देते थे।

लोमा को स्मरण था कि उसी समय से वृद्ध कवि ने यह माँग करनी प्रारम्भ कर दी थी। "देखो भृगुश्रेष्ठ," वे कह रहे थे, "यदि इस समय भगवती को पुत्र प्राप्त हो तो उसे आपको मेरे हाथों सौंपना पड़ेगा। कवियों की युद्ध-विद्या का स्वामी मैं हूँ। तुमने तो कुछ सीखा नहीं। मैंने सब विद्या सुरक्षित रख रखी है। वह सब तुम्हारे इस पुत्र को मुझे सिखानी है।"

वृद्ध कवि इस प्रकार बोलते ही रहे। ऋषि बड़े करुणार्द्र भाव से मन्त्र पढ़ते जा रहे थे। बाहर सरस्वती के चढ़ते हुए पूर की ध्वनि आ रही थी, ऊपर से मूसलाधार वर्षा हो रही थी, रह-रहकर बादल गरज रहे थे, बिजली चमक रही थी और पीछे की झोंपड़ी में से अम्बा की चिल्लाहट सुनायी दे रही थी।

लोमा को वह रात भली प्रकार स्मरण थी। सबने जागरण किया था और पीछे की झोंपड़ी में वृद्ध स्त्रियाँ जो दौड़-धूप कर रही थीं, वह भी सुनायी दे रही थी।

वह कितनी देर तक जागी थी, और कितनी देर तक उसने नींद के झोंके खाये थे, यह उसे स्मरण न था। रात के पिछले पहर में उसे एक करुण चिल्लाहट सुनायी दी थी। ऋषि खड़े हो गये थे, लोमा का हृदय धड़कने लगा था और वह जमदग्नि से लिपट गयी थी। वृद्ध कवि भी उस समय मन्त्र बोल उठे थे।

फिर इस प्रकार दिशाएँ काँप उठीं मानो फिर इन्द्र ने वृत्रासुर का

चारण किया है।

बड़े होने पर जब राम क्रोधित होता था, तब उसकी आँखें बिजली के समान चमकती थीं, उसके गहन-गम्भीर स्वर का गर्जन दूर तक सुनायी देता था, और उसकी छोटी-सी वज्रमुष्टि पर्वतभेदी शक्ति के समान पड़ती थी। किसी और को विश्वास हो या न हो किन्तु अम्बा और वृद्ध कवि दोनों तो उसे इन्द्र ही मानते थे।

जैसे-जैसे घोड़े आगे बढ़ते जाते थे वैसे-वैसे लोमा को ये दिन स्मरण होते चले थे।

राम जब दो महीने का था तभी से इस सम्बन्ध में झगड़ा प्रारम्भ हुआ कि वह किसका है। अम्बा तो इस पुत्र के पीछे पागल हो गयी थी और सब काम-काज छोड़कर उसी की देखभाल में मग्न रहती थी। अम्बा और वह, दोनों मिलकर पागल के समान राम को हँसाने का प्रयत्न करते थे, किन्तु उनके प्रयत्नों का तिरस्कार करते हुए राम लेटा रहता और आँखें निकाल-कर घूरता रहता था। वह जब कुछ चाहता तो रोता नहीं था वरन् वृषभ के समान चिल्लाता था। और जब वह अपने-आप हँसता तब ऐसा लगता था मानो चारों ओर वसन्त रँगरेलियाँ कर रहा हो। वृद्ध कवि भी वर्षों के भार को भूलकर जो कुछ-कुछ पागलपन करते थे, वह भी लोमा को याद था। भरत, भृगु और तृत्सु की संयुक्त सेना का पति, सहस्रों रणक्षेत्रों का उद्भट वीर और शस्त्र-विद्या में सर्वोपरि आर्यश्रेष्ठ, जिसके हुंकार से सप्त-सिन्धु कम्पायमान हो उठता था, वह कवि चायमान वृद्धा के समान हो गये। वह अम्बा के पास की झोंपड़ी में रहने चले आये। वृद्धाओं को एकत्र करके छोटे बच्चों को पालने-पोसने की सब कला उन्होंने सीख ली और राम की देखभाल में माथापच्ची करने लगे।

वृद्ध कवि और अम्बा कितने ही प्रसंगों पर लड़ पड़ते थे। राम का पलना हवा में रखा जाय या न रखा जाय, किस ओर से उसे धूप लगनी चाहिए, उसे दूध किस प्रकार पिलाया जाय, उसके सिर पर तेल मला जाय या नहीं, इन सब बातों पर वृद्ध कवि और अम्बा लड़ पड़ते थे, और

होगी।"

जब राम दो वर्ष का हुआ तब वृद्ध कवि ने उसे घोड़े पर बिठाने की विधि बहुत अच्छे ढंग से सिखायी। उन्होंने विमद को सुन्दर-से-सुन्दर खिलौने के धनुप-बाण बनाने की आज्ञा दी और राम को खेलने के लिए वे खिलौने दिये जाने लगे।

ऐसे अनेक शिक्षा के प्रयोगों में वृद्ध कवि संलग्न रहे। वृद्ध कवि को अपनी अवस्था के अनुपयुक्त बालिशता के कारण ईर्ष्या भी हुई। अम्बा रेणुका यदि राम को खिलाएँ तो उन्हें अच्छा नहीं लगता था।

"मुझे अपने बच्चे को बिगाड़ना नहीं है। माताएँ लाड़-प्यार करके बच्चों को बिगाड़ देती हैं। इसी से भृगु अब निर्वीर्य हो गये हैं," ऐसा वह कहने लगे।

पहले यदि लोमा राम के साथ खेलने लगती थी तो वृद्ध कवि अधीर हो जाते थे, "लड़कियों की संगति में ही छोटे लड़के बिगड़ते हैं।" लोमा भगवती लोपामुद्रा के आश्रम में पढ़ती थी और स्वभाव से ही लड़के के समान थी, इसलिए वृद्ध कवि को अच्छी लगती थी। और राम को लोमा के बिना अच्छा नहीं लगता था, इसलिए इस बात को भी वह वृद्ध भूलने लगे कि लोमा लड़की है।

इन दोनों को साथ-साथ खेलने देने में कवि का दूसरा अभिप्राय था। भृगु स्त्रियाँ और विशेपतः रेणुका जो मृदुता से राम की देखभाल करती थी, यह उनको तनिक भी अच्छा नहीं लगता था। उन्हें तो राम को वज्र के समान बनाना था। पर छोटे बच्चे को संगति भी चाहिए, लाड़-प्यार भी चाहिए और देखभाल के लिए साथ में कोई बड़ा मनुष्य भी चाहिए। विमद यह सब नहीं कर सकता था और स्वयं दो वर्ष में छः मास लड़ने और यात्रा करने में व्यतीत करते थे, इसलिए लोमा को लड़के के समान रखा जाय तो राम के पालन-पोपण में बाधा न आये और उसे स्नेह प्राप्त हो, ऐसा संकल्प करके वृद्ध कवि नये मार्गों को शोधने लगे। लोमा को किस प्रकार शिक्षित और संस्कारयुक्त करना चाहिए इसका भी वह विचार करने लगे, भगवती

धुनने लगे। जान पड़ता था कि बूढ़े की मति बिगड़ने लगी है। किन्तु यदि राम न हो और कोई इस मतिमन्दता की कल्पना करके उनके साथ दूसरी रीति से व्यवहार करता तो उसे एक भयङ्कर दृष्टि से वह सीधा कर सकते थे।

एक समय तृत्सुओं के सेनापति कोई राजकीय सन्देशा लेकर गुरु वृद्ध कवि के पास आये। उनकी झोंपड़ी का द्वार बन्द था, किन्तु भीतर दो व्यक्ति चिल्लाते हुए सुनायी दिये। वृद्ध कवि सिंह का अनुकरण करके गर्जना कर रहे थे, और राम भी उनके अनुसार गरज रहा था। हर्यश्व ने द्वार खोला। वृद्ध कवि सिंह बने थे और राम उनके साथ द्वन्द्व-युद्ध कर रहा था। दोनों एक-दूसरे से लिपटे थे। वृद्ध कवि आगे बढ़ते थे और राम उनके बाल पकड़कर खींच रहा था। सप्तसिन्धु के अग्रगण्य महारथी का यह खेल देखकर हर्यश्व हँसना ही चाहता था, किन्तु गुरु के भय से वह हँस न सका। वह झोंपड़ी के बाहर खड़ा रहा और जब युद्ध समाप्त हुआ तब अन्दर गया। वृद्ध कवि बाल ठीक कर रहे थे। उनके मुख और सिर पर नख के चिह्न थे और उनके पास खड़ा हुआ राम सिंह के काटे हुए पर हाथ फेर रहा था।

हर्यश्व इस खेल का कुछ उपहास करना ही चाहता था पर शब्द उसके गले में ही रह गये। जिस गुरु का भय उसे बालपन से था, वह वैसे ही बैठे थे—दृढ़ और उग्र, अपने काम में ध्यान देते हुए। उनकी और राम की सृष्टि में प्रवेश करने का किसी को अधिकार नहीं था।

किन्तु जब राम आठ वर्ष का हुआ तब जमदग्नि को बीच में पड़ना पड़ा। विद्या और तप में श्रेष्ठ भृगु ने अपने छोटे पुत्र को विश्वामित्र ऋषि के पास शिक्षा के निमित्त रखने की योजना की। यह सुनकर वृद्ध कवि इस प्रकार विग्रह के लिए उतरे मानो पहले कभी न लड़े हों। मेरा बच्चा तो देव है, उसे दूसरे लड़कों के साथ किस प्रकार पढ़ने दिया जा सकता है? और मेरे समान समस्त सप्तसिन्धु में दूसरा शस्त्र-विद्या का शिक्षक मिलेगा कहाँ से? और फिर दूसरे आश्रमों की अपेक्षा विद्या और तप में जमदग्नि का आश्रम किससे कम है? और आजकल की भरतों की विद्या की अपेक्षा

होगा, इसका भी विचार उन्होंने किया। उन्होंने ऋषि विश्वामित्र से बातें कीं, उन्होंने महर्षि अगस्त्य से बातें कीं, उन्होंने भगवती लोपामुद्रा से पूछा। शिक्षा-पद्धति के विशारद वृद्ध तपस्वियों से भी इस विषय में पूछा गया।

बड़े परिश्रम से अन्त में यही निश्चय हुआ कि सनातन आर्य प्रणाली के अनुसार गुरु के आश्रम में रहकर ही विद्या सीखी जा सकती है, और आपत्ति-धर्म के अतिरिक्त पिता के आश्रम में रहकर विद्या पढ़ना आर्यों के लिए अनुपयुक्त कहा जायेगा। अव्यवस्थित रीति से एक योद्धा जो शिक्षा दे वह तो निम्न श्रेणी की ही रहेगी और उसे भृगु-बाल स्वीकार नहीं कर सकता। परिणामस्वरूप, राम को विश्वामित्र के पास पढ़ने के लिए रखने का निर्णय हुआ।

अन्त में विश्वामित्र ने वृद्ध कवि को समझाने का उत्तरदायित्व अपने सिर पर ले लिया, और एक दिन सन्ध्या के समय बहुत ही धैर्य और मृदुता के साथ उन्होंने राम के विषय में किया हुआ निर्णय सुनाया। वृद्ध ने निर्णय सुना। वह क्रोधित हुए और बड़बड़ाने लगे, पर ऋषि विश्वामित्र ने समझा-कर कहा कि विद्या का विषय गहन होने से अधिकारी के सिवाय दूसरे को उसे समझना बहुत कठिन है। कवि वहाँ से उठकर चले गये।

उस रात को वृद्ध कवि अपनी झोंपड़ी से चल दिये। दूसरे दिन सवेरे उनका कोई पता नहीं चला। सब खोज करने लगे। तीन सेनाओं के सेना-पति, शौर्य और शस्त्र-विद्या में अप्रतिम कवि चायमान घर छोड़कर चले गये, इससे सब ओर हाहाकार मच गया। जमदग्नि और विश्वामित्र भी चिन्ता में पड़ गये और कवि की खोज करने के लिए चारों ओर दूत भेजे जाने लगे।

सन्ध्या-समय समाचार मिला कि वृद्ध कवि अपने शिष्य तृत्सु सेनापति हर्यश्व के घर गये थे और वहाँ से घोड़ा लेकर सरस्वती के तट पर महा-अथर्वण द्वारा स्थापित भृगुओं के आश्रम की ओर जाने के लिए चल चुके थे।

तीन सेनाओं के पति इस प्रकार चले जायँ, यह तो बड़े आश्चर्य की

जब वृद्ध कवि चले गये तब चारों ओर मची हुई गड़बड़ का उसे ध्यान आया। उसने तुरन्त जाकर विमद से पूछा, "वृद्धा कहाँ गये ?" राम वृद्ध कवि को 'वृद्धा' ही कहता था।

"कौन जाने ?"

राम की आँखों में ज्वाला जग उठी, "मुझे वृद्धा के पास जाना है।"

"अरे, वे अभी आये आते हैं।"

"मुझे उनके पास जाना है," राम ने निश्चयात्मक स्वर में कहा। विमद ने बात उड़ा दी।

तेजपूर्ण आँखें गम्भीर हो गयीं। वह रेणुका के पास गया—"अम्बा, मुझे वृद्धा के पास जाना है," उसने कहा।

रेणुका ने प्रेम से उसे हृदय से लगा लिया, "भाई, वह कहाँ गये हैं, इसका अभी पूरा-पूरा ठिकाना नहीं है।"

राम की आँखें अधिक गम्भीर हो गयीं। उसे कुछ-कुछ अस्पष्ट-सा भान था कि किसी प्रकार उसके पास से उसके 'वृद्धा' को सब ले लेना चाहते थे। 'ठिकाना नहीं,' वह बड़बडाया और स्वस्थ बनराज के समान दूसरे दिन प्रातः लोपामुद्रा के आश्रम में जाकर उसने लोमा से पूछा, "वृद्धा कहाँ गये हैं ?"

लोमा बहुत-कुछ जाननी थी। उसने सच-झूठ बनाकर बहुत-सी बातें कहीं। ऋषि जमदग्नि ने निश्चय किया था कि राम को वृद्ध के पास पढ़ने नहीं देना चाहिए, उसे विश्वामित्र को सौंप दिया जाय। इससे वृद्धा रुष्ट हो गये थे। सब लोग यही बात करते थे। वृद्धा भृगुग्राम चले गये थे। अब वह न आयेंगे और राम को ऋषि विश्वामित्र के आश्रम में ही रहना पड़ेगा।

"मुझे वृद्धा के पास जाना है," राम ने क्रोध में कहा।

"कैसे जायेगा ? क्या पागल हुआ है ? वहाँ पहुँचने में कितने ही दिन लग जाते हैं। मार्ग में जंगल पड़ते हैं। तुम तो ऋषि के लड़के हो, तुम्हें पढ़ना चाहिए। ऋषि विश्वामित्र के समान कोई बड़ा ऋषि नहीं है।

एक पुत्र था। रात होते ही उसे पकड़ने के लिए वह दुष्ट आता था। इन दोनों को प्रतिदिन लड़ना पड़ता था, पर जब राम उसे मारकर हटाता था, तब पुन: प्रात:काल होता था। आज उसने निद्रासुर को चले जाने के लिए बहुत समझाया, पर उसने एक न मानी। राम ओठ पीसकर उठा। आज उसे उस अन्धकार के स्वामी को मारकर भगाना ही था। उसे लगा कि वह दुष्ट असुर उसके बायें हाथ की उँगली पर बैठता है।

वह उठकर बाहर गया और एक काँटे से बायें हाथ की उँगली पर बैठे हुए असुर पर घाव किया। विकराल आँखों से वह उँगली की ओर देखता रहा, और उसमें से जब असुर का रक्त बह निकला तभी उसे शान्ति हुई। वह झोंपड़ी में लौट आया। असुर भाग गया। राम की आँखों से नींद उड़ गयी, और फिर जब असुर आकर उसकी आँख पर बैठा तो तुरन्त उसने बायें हाथ की वह उँगली दबाकर असुर का रक्त निचोड़कर उसे हराया।

रात होने पर उसके सिर पर वात्सल्यपूर्ण हाथ फेरकर रेणुका जमदग्नि की झोंपड़ी में चली गयी। राम के साथ जो स्त्री सोती थी वह सोने लगी तब तक उँगली दबाकर वह निद्रासुर के साथ लड़ा। फिर वह उठा और कपड़े में बँधा हुआ पाथेय लिया तथा झोंपड़ी से बाहर निकल आया।

उसके पैर की आहट सुनकर उसका सुपर्ण हिनहिनाने लगा। तुरन्त सुपर्ण के पास जाकर उसने उसे खोला और उस पर चढ़ गया।

"सुपर्ण, चलो भृगुग्राम। हमारे वृद्धा वहाँ हैं, उनके पास चलना है," उसने आज्ञा दी।

राम जानता था कि मार्ग में बहुत से अन्धकारपूर्ण असुर मिलेंगे। पर उसे ज्ञात था कि उसके पूर्वज कवि उशनस शुक्राचार्य सब असुरों को वश में करके उनका पौरोहित्य करते थे, इसलिए जब वह बड़ा होगा तब वह भी उनका पुरोहित बनेगा। अभी से वह पुरोहित तो था ही, क्योंकि जब कोई उन्हें पहचानता नहीं था तब वह सबको भली-भाँति पहचानता था। जब सूर्यदेवता भी असुरों के साथ युद्ध करते-करते अन्धकार में लीन हो जाते थे, तब राक्षस अपनी माया से किसी को अपना रूप देखने नहीं देते थे।

सवार होकर वृद्ध के पास जाने के लिए चल पड़ा। वह अकेला ही जानता था कि सुपर्ण के पंख थे, पर वे दिखायी नहीं देते थे। वह पक्षी के समान उड़ता था। दूसरे घोड़े दौड़ते अवश्य थे, पर उन्हें सुपर्ण के समान उड़ना नहीं आता था।

उसके मन में विचार-तरंगें उठ रही थीं। वह आश्रम में नहीं होगा तो अम्बा रोयेंगी, पिता क्रोधित होंगे। ये दोनों क्रोधित होते तब पिता आँखें बन्द कर लेते और अम्बा रोने लगती थीं, यह उसे स्मरण हो आया। वह लौट आयेगा तो इन दोनों की आँखें पुनः जैसी अच्छी थीं वैसी ही हो जायेंगी, ऐसा मानकर वह आगे बढ़ने लगा। उसने विचार किया कि वृद्धा इस प्रकार अकेले चले गये, यह उन्होंने ठीक न किया। उसे साथ ले गये होते तो कैसा आनन्द आता! पर विश्वामित्र ने ना कर दी होगी। विश्वामित्र क्यों उसे पढ़ाना चाहते हैं? उसे तो सब आता है। और वृद्धा कहते थे कि उसके दादा ऋचीक को सब आता है, फिर उसे विश्वामित्र के पास पढ़ने की क्या आवश्यकता है?

घोड़े के टाप की ध्वनि ठीक चल रही थी। मुँह से 'खबड़क', 'खबड़क' [illegible] तो घोड़ा वेग से चलता है, यह वह जानता था। उसने 'खबड़क', 'खबड़क' कहना प्रारम्भ किया।

दोनों ओर जंगल में छिपे हुए अँधेरे के असुर 'राम-राम,' 'राम-राम' कहकर उससे बात करते थे। उसे वृद्ध कवि के पास शीघ्र जाना न होता तो वह अवश्य उनके साथ बैठकर बातें करता।

उसे ज्ञात था कि प्रातःकाल वायु को मरुत लाते हैं और रात को उनकी स्त्रियाँ लाती हैं। मरुत की स्त्रियाँ नदी में पानी भरने आती थीं, इसलिए वायु पर पानी गिर जाता था। इसी से शीतल वायु बहता था। उसने दाँत खोलकर वायु मुँह में खींचना प्रारम्भ किया। थोड़ी देर में वह सीटी बजाने लगा। सीटी बजाने से भूत-पिशाच भाग जाते हैं, यह भी वह जानता था। पेड़ों पर जुगनू की पंक्तियाँ उड़ रही थीं और वह जैसे-जैसे आगे बढ़ रहा था, वैसे-वैसे वे यहाँ-से-वहाँ और वहाँ-से-यहाँ उड़ती थीं।

राम के हृदय में इस दुखी सुकुमार लड़के के प्रति प्रेम की ऊर्मि जागरित हुई। उसने शुनःशेप को हृदय से लगाकर कहा, "रोओ मत, रोओ मत। लोमा लड़की है, पर वह भी इतना नहीं रोती। मैं तुम्हें नहीं छोड़ूंगा, बस अब ठीक है न? यदि तुम पतित हो तो मैं तुम्हें पवित्र करूँगा। मेरे पिताजी भी जब यही करते हैं तो मैं क्यों न करूँ?"

फिर शुनःशेप ने राम के कन्धे पर सिर रखकर हृदय शान्त किया—"राम, मैं बहुत दुखी हूँ। तुम्हें मैं अपनी बात कल कहूँगा।"

फिर हाथ-में-हाथ डालकर दोनों सो गये।

[9]

दूसरे दिन सबके सो जाने पर शुनःशेप ने अपनी बात प्रारम्भ की।

"मेरे पिता का नाम अजीगर्त है। उनके तीन पुत्र हैं। उनमें मैं बिचला हूँ। मेरे पिता भृगुकुल के हैं। जब वे छोटे थे तब वे पहले महर्षि अगस्त्य के और फिर भगवती लोपामुद्रा के शिष्य थे और बड़े तपस्वी माने जाते थे। किन्तु फिर उन्होंने महर्षि अगस्त्य और भगवती लोपामुद्रा से द्रोह किया और उन्होंने क्रोधित होकर शाप दे दिया। तभी से मेरे पिता की दुर्दशा प्रारम्भ हुई।

"इस शाप से मेरे माता-पिता पतित हो गये और उन्हें गाँव से बाहर निकाल दिया गया। पतित होने के कारण मेरे पिता जटा धारण नहीं कर सकते, किसी ग्राम में नहीं जा सकते, मन्त्रोच्चार नहीं कर सकते और न किसी के संसर्ग में रह सकते हैं। पतित तो रोगी और दुबले कुत्ते के समान रहता है। जो देखता है, वह उसे मारने दौड़ता है।

"जब से मुझे समझ आयी तभी से हम लोग इसी प्रकार भटक रहे हैं। खाने को मिल जाता है तो खा लेते हैं। बहुत दिन तक तो वन के फल-फूल ही मिल गये तो खाकर रह जाते थे, नहीं तो भूखे पेट ही दिन काट देते थे। शाप और आपत्तियों के कारण मेरे पिता का स्वभाव बहुत बिगड़ गया। वह मुझे और मेरी माता को नित्य पीटते थे और कभी-कभी तो इतने

छन्दों और देवों के दर्शन नहीं होते थे और दर्शन न होने पर मैं पागल-सा बन जाता था।

"मैं अपनी माता का बहुत लाड़ला था। जब-जब वे देखतीं कि मन्त्र सुनकर मैं पागल होता हूँ और वे मन्त्र तुरन्त मेरे कण्ठ में स्थिर हो जाते हैं, तब उनके हर्ष का पार नहीं होता था। और जब उन्होंने जाना कि मेरे मन्त्र सुनकर देव मुझे दर्शन देते हैं तब तो वे मुझे हृदय से लगाकर रोया करती थीं। वे तपस्वी की पुत्री थीं और मेरे पिता तो भृग्वङ्गिरस थे ही। मुझे मन्त्र-मुग्ध होते देखकर मेरी माता मुझे कहने लगीं कि मैं समस्त परिवार का उद्धार करनेवाला बड़ा ऋषि होनेवाला हूँ, और इस आशा से हमारे जीवन में उषा का उदय होने लगा।

"लगभग दो वर्ष पूर्व मेरे कुल को छिपाकर मेरी माता ने मुझे एक तपस्वी के पास विद्याध्ययन के लिए रखने की व्यवस्था की। मैं उस तपस्वी के यहाँ जाकर रहा। मैं आठ दिन ही वहाँ रहा होऊँगा कि गाँव के लोगों को मेरे कुल का परिचय मिल गया। उन्होंने आकर मुझे बहुत मारा और आश्रम के बाहर निकाल दिया।

"मेरी माता को भी उन्होंने बहुत पीटा। मार के कारण बहुत दिन तक मैं बिस्तर में पड़ा रहा, और मार खाने की अपेक्षा मैं इसी बात के दुख से अधिक तिलमिलाने लगा कि अध्ययन के द्वार मेरे लिए सदा के लिए बन्द हो गये। चाहे कितना ही पाप हो, देव चाहे कितने ही कुपित हों, तो भी पिता के पास यथाशक्य विद्या सीख लेने का मैंने निश्चय किया। किन्तु इस योजना को कार्य-रूप देना सरल बात नहीं थी। जब तक मद नहीं चढ़ता था, तब तक मेरे पिता मन्त्र नहीं बोलते थे, और मद चढ़ाने योग्य सुरा प्राप्त करना सरल नहीं था। यदि कोई यह जान जाय कि पिता या मैं दो में से कोई भी मन्त्रों का उच्चारण करता है तो हमारे प्राण चले जायँ। किन्तु विद्या प्राप्त करने की अपनी तृषा छिपाने के लिए मैं कोई-न-कोई मार्ग खोजा ही करता था।

"मेरी माता और बड़े भ्राता मेहनत करके, भीख माँगकर, कभी-कभी

"मैंने लौटकर सब बातें अपनी माता से कहीं। हम पर वरुण देव की कृपा हुई है, यह जानकर वे बहुत हर्षित हुईं और मेरे बदले में मोल ली हुई सुरा जब तक रही, तब तक अपने पिता के पास बैठकर मैंने विद्या प्राप्त की। मेरे सुख का पार नहीं रहा।

"जब सुरा समाप्त हो गयी तब पुनः हमारी दुर्दशा का आरम्भ हुआ और विद्या प्राप्त करने के साधन न रहने से मैं पुनः तिलमिलाने लगा। अन्त में किसी भी प्रकार मुझे पूर्ण विद्या प्राप्त कराने के लिए मेरी माता और मेरे भ्राता ने एक नया मार्ग खोज निकाला। किसी नये पणि के हाथ मुझे बेचकर बदले में सुरा ले लेते थे और वह सुरा छिपाकर रखते थे। पणियों के साथ मैं एक-दो दिन रहता, मन्त्र पढ़ता और देवों का आवाहन करता था, और पणि भी इस भय से मुझे छोड़ देते थे कि कहीं देव स्वतः न आ जायँ। मैं लौटकर जब अपनी माता के पास जाता, तब छिपायी हुई सुरा वह मेरे पिता को देने लगती थीं और मैं फिर पढ़ने लगता था।"

शुनःशेप ने म्लान-वदन यह बात कही। बात कहते हुए उसकी आँखें आँसुओं से भर जाती थीं। किन्तु अन्तिम बात पूरी करते समय उसके हृदय की श्रद्धा उसके मुख पर चमक उठी।

"इस प्रकार मैं बहुत से मन्त्र सीख गया हूँ। अब मेरे पिता भी सच्चे अध्यापक बनकर मुझे सिखाने लगे हैं। कभी-कभी मुझे भी नये मन्त्रों के दर्शन होते हैं। थोड़े वर्षों में मैं सब सीखकर, महर्षि अगस्त्य के पास जाकर सबको शाप से मुक्त कराऊँगा और फिर मैं किसी ऋषि के आश्रम में रहकर पूर्ण विद्या का सम्पादन करूँगा।"

विद्या प्राप्त करने के लिए अपने को बेचने की उत्कट इच्छा इस लड़के में देख राम उस पर मोहित हो गया—"पर तुम मेरे साथ क्यों नहीं चलते ?" राम ने कहा, "मैं महर्षि से कहूँगा तो वे इस शाप से तुम्हें अवश्य मुक्त कर देंगे।"

खेदपूर्वक शुनःशेप ने सिर हिलाया। बहुत ही कठिन अनुभव से उसे अपनी अधम स्थिति का ज्ञान हुआ था—"नहीं, मुझे कोई नहीं रखेगा।

नाव तो लौट जायेगी," शुनःशेप ने राम के कान में कहा।

"लौट जायेगी, क्यों ?" राम ने पूछा।

"किसी महाजन का लड़का खो गया है। यह पणि दस हजार गायें लेकर लड़का लौटाने जा रहा है।"

"कद्रू तो नहीं है ?" राम ने पूछा।

"तुम हो, तुम। क्योंकि इन लोगों की वातों में ऋषि जमदग्नि का नाम दो-तीन वार आया है।"

राम चुप रहा। थोड़ी देर में उसने शुनःशेप से पूछा, "पर इस ओर नाव यदि जाय तो भृगुग्राम पड़ेगा न ?"

"हाँ।"

"कितने दिन लगेंगे ?"

"आठ-दस।"

"पर यदि नाव लौट जाय तव भृगुग्राम नहीं पड़ेगा न ?"

"नाव लौट जायेगी तव कैसे पड़ेगा ?"

राम ने थोड़ी देर चुप रहकर कहा, "ये लोग सो जायँ तब मैं तो चल दूंगा।"

"इस समय ? ऐसी रात में ? इस जंगल में ?" शुनःशेप ने चकित होकर पूछा।

"इससे क्या ? मैं चलकर भृगुग्राम पहुंच जाऊँगा।"

"चलकर ? अकेले ? यह कैसे हो सकता है ?" शुनःशेप ने राम की आँखों में इन्द्र के वज्र की चमक देखी।

"क्या तुम चलते हो ?" राम ने पूछा।

"एँ ! मुझे तो अपनी माता के पास जाना है।"

"अच्छा, तो मैं अकेला जाऊँगा।"

"व्याघ्र, भेड़िये आदि मिलेंगे तो ?"

"पर मुझे तो वृद्धा के पास जाना है।" पुनः राम की आँखों में तेज चमकने लगा। शुनःशेप यह देखकर प्रभावित हुआ।

शुनःशेप चेत में आया और राम को देखते ही वह उससे गले मिला। उनकी पुरानी मैत्री की बात यहाँ हरी हो गयी। शुनःशेप आँखें बन्द करके 'लोमा', 'लोमा' ऐसा कुछ बोला।

राम ने उत्तर दिया, "हाँ शुनःशेप! मैं जिस लोमा की बात करता था वह लोमा यहीं है। बहुत गड़बड़ करती है।"

लोमा ने शुनःशेप के मस्तक पर हाथ रखा। वह आँखें बन्द करके मुस्करायी और शुनःशेप पुनः शान्त होकर आँखें बन्द करके सो गया।

विश्वामित्र मन में हँसे—यह लड़का उनका और उग्रा का है, उसका रुधिर गाधिराज और शम्बर के रुधिर से बना है। राजा दिवोदास की पुत्री से यदि यह विवाह कर ले तो आर्यावर्त से शेष विष भी निकल जाय। परन्तु यह हो कैसे सकता है? 'ऐसा सौभाग्यपूर्ण दिन आये तो पृथ्वी पर स्वर्ग ही आ जायेगा,' वे बड़बड़ाने लगे।

इतने में ऋषि जमदग्नि आ गये। अपने इस बालमित्र को बताये बिना विश्वामित्र से न रहा गया—"जमदग्नि, इसका मुख देखो, इसकी आँखें देखो, इसका स्वर सुनो। क्या विश्वरथ का स्मरण नहीं होता? और इसके हृदय पर इसकी माता की छाप है," उन्होंने कहा।

"और देव वरुण ने तुम्हारे पास इसे लौटा दिया!"

"हाँ, पर मेरा किया-कराया सब व्यर्थ हो गया," आक्रन्दपूर्वक विश्वामित्र ने कहा।

"क्यों, अब क्या रह गया?"

"क्या तुम इसे भरतश्रेष्ठ के रूप में स्वीकार करोगे?"

"भरतश्रेष्ठ!" चौंककर जमदग्नि बोले, "पर यह तो दासी-पुत्र है।"

"हाँ," कटुता से विश्वामित्र ने कहा, "हाँ, यह दासी-पुत्र, ऋषि-श्रेष्ठों के गुण द्वारा भरतों में श्रेष्ठ होने योग्य भी हो जाय तो भी इसके शरीर में शम्बर का रक्त है—इसीलिए न? इसलिए क्या तुम भी उसे योग्य स्थान न दोगे?" कहते-कहते ऋषि आवेश में आ गये, "क्यों···क्यों? उग्रा उसकी माता थी, ठीक है न? जमदग्नि, मेरे बालपन के साथी, तुम भी

"तो आप यह पद छोड़कर भरतों का राजपद क्यों नहीं स्वीकारते ?"

"मैं ? अरे देव !" कहकर विश्वामित्र हँस पड़े, "अपना ऋषिपद मुझे भरतों के वर्तमान राजपद की अपेक्षा अधिक प्रिय है।"

किन्तु विश्वामित्र को आज इन सब बातों में आनन्द नहीं मिल सकता था। जहाँ ये दोनों ऋषि बात कर रहे थे, वहीं कवि चायमान का भेजा हुआ दूत सब समाचार कहने के लिए घोड़े पर आ पहुँचा। वसिष्ठ के आश्रम में से भेद ने शशीयसी का हरण कर लिया है; मुनि वसिष्ठ ने देवों की आज्ञा मानकर समस्त आर्यावर्त का पौरोहित्य स्वीकार किया है; भेद का विनाश करने के लिए उन्होंने युद्ध-घोषणा कर दी है तथा आर्य-राजाओं को आमन्त्रित किया है, ये सब बातें दूत ने विस्तार से कह डालीं।

ये सब भयंकर समाचार थे। उनका पुरोहितपद जाते ही विष का प्रसार तो होने ही वाला था, यह सब सोचकर विश्वामित्र मन में हँसे—और क्या हो सकता है ?

रोहिणी आयी। उसकी आँखें सूजी हुई थीं। अपने क्रोध करने की क्षमा माँगने आयी थी। वह पतिव्रता थी, और पति के प्रति उसने जो अविनयी आचरण किया था उसका उसे दुख हुआ था। अपने पति के हृदय की व्यथा तक वह स्वयं नहीं पहुँच सकी थी, उसे नहीं समझ सकी थी, इसका उसे दुख था, चिन्ता थी।

विश्वामित्र अपने विचार में मग्न थे। उन्होंने निःश्वास छोड़ा।

शम्बर का काला पुत्र भेद, तृत्सु सेनापति हर्यश्व के पुत्र कृशाश्व की पत्नी को भगा ले गया। वसिष्ठ को देवों की आज्ञा प्राप्त हुई। देवों ने उन्हें समस्त आर्यावर्त के पुरोहितपद पर स्थापित किया, और अब जब तक भेद का वध न होगा तब तक वे विश्राम न लेंगे।

देव भी विचित्र परिस्थिति उत्पन्न कर रहे हैं। यहाँ तो उन्हें उग्रा का पुत्र पुनः सौंप रहे हैं,...और वहाँ शम्बर के पुत्र के वध की तैयारी करवा रहे हैं। देव ! देव !! यह आपने क्या सोचा है ? क्या देव की ही यह आज्ञा हुई है कि आर्य अब एक-दूसरे के प्राण लें।

और उग्रा दोनों आर्य हैं, यह मेरी दृष्टि है।"

"और हम सब···"

"तुम सब मेरे सर्वस्व हो—पर जमदग्नि, मेरे सर्वस्व से भी मेरे मन में सत्य श्रेष्ठतर है।"

[3]

रेणुका बच्चों के साथ बैठी बातें कर रही थीं। वे प्रश्न पूछतीं और बच्चे उत्तर देते थे। लोमा बात करते-करते उछली पड़ती थी। राम कुछ कहता था। शुनःशेप पूज्यभाव से पूछी हुई बात का उत्तर धीरे-से देता था। जब रोहिणी यहाँ आयी तब उसकी आँखें सूजी हुई थीं और उसके मुख पर उद्वेग था। रेणुका उसे देखते ही समझ गयीं कि कुछ गड़बड़ हुई है।

उसने कहा, "आइये, आइये, मामीजी! बच्चो, जाओ, अब तुम लोग खेलो।"

"आपको कुछ गुप्त बातें करनी होंगी?" लोमा ने पूछा।

"तो इससे तुम्हें क्या? जा," रेणुका ने हँसकर कहा।

"अब तो मैं स्त्री मानी जाऊँगी।"

"नहीं···अभी तो तू बच्ची है···राम के साथ तो खेला करती है। जा, और देखना शुनःशेप को मत सताना। उसे विश्राम करने देना।"

तीनों बच्चे चले गये तब रोहिणी की ओर घूमकर ममता से रेणुका ने कहा, "बैठिये, कहिए क्या है?"

"रेणुका, मुझ पर तो बादल टूट पड़े हैं।" और रोहिणी का मुँह रुआँसा हो गया, गला रुँध गया।

"शान्त होइए। सबकुछ ठीक करनेवाले देवता तो हैं न!"

रोहिणी ने प्रयत्नपूर्वक पुनः मन को स्वस्थ किया और आँखें पोंछीं।

"अरे देव, मैं क्या करूँ?" उसने निःश्वास छोड़ा।

"क्यों, क्या है?"

"तुम्हारे मामाजी पुनः पागल हो गये हैं।"

"वह दूसरा काहे का झंझट है ?"

"देवदत्त का बड़ा भाई मिल गया है।"

"देवदत्त का बड़ा भाई ?" जयन्त ने आश्चर्य से पूछा।

"हाँ, उग्रा का पुत्र।"

"उग्रा का पुत्र ?" जयन्त मूच्छित होता-सा बोला।

"हाँ, जिसे मरा हुआ समझा था वह जीवित है," रेणुका ने कहा।

"कहाँ ? कौन ?"

"शुनःशेप।"

"ऐं ?"

"और अब वह भरतों का राजा होनेवाला है," रोहिणी ने क्रुद्ध होकर कहा।

सेनापति जयन्त सब समझ गया। उसकी आँखों से चिनगारियाँ निकलने लगीं। क्रोध में वह खड़ा हो गया।

"भगवती, क्या यह सत्य है ? यदि सत्य हो तो एक बात निश्चित है कि..."

"क्या ?"

"शम्बर के दौहित्र के सामने यह सिर कभी नहीं झुकेगा," इतना कह-कर रोष में जयन्त वहाँ से चला गया।

रोहिणी और रेणुका एक-दूसरी की ओर देखती रहीं।

"देखा ?" अन्त में रोहिणी ने कहा।

"मामी," रेणुका ने कहा, "इन सबका मार्ग एक ही है। आप मामा के हृदय में प्रविष्ट होने का प्रयत्न करें।"

"कैसे ? वे तो द्वार सदा बन्द ही रखते हैं।"

"अरे, उसकी चाबी तो तुम्हारे ही पास है," रेणुका हँसी। रोहिणी भी हँसे बिना न रह सकी।

"मामा के पास जाइये। हिमालय का हिम तो सरस्वती ही बहाकर ला सकती है, और सरस्वती ऐसा न करे तो हम सब तड़पकर मर जायें।"

किंवदन्ति भी प्रचलित थी। उसमें संस्कार बहुत ही कम थे, यह तो स्पष्ट ही दिखायी देता था। तप और आचार-जैसी भी कोई वस्तु उसके राज्य में होगी, यह भी शंकास्पद था। मुनि अगस्त्य और भगवती लोपामुद्रा वहाँ आश्रम बनाकर निवास कर रहे थे, इसके अतिरिक्त इस देश के विषय में और कोई अच्छाई सुनने में नहीं आयी थी। सप्तसिन्धु के अप्रतिरथ राजा दिवोदास की पुत्री ऐसे देश के राजा से ब्याह करे इसमें हेठी तो थी, पर सुदास को तो सप्तसिन्धु पर विजय प्राप्त करनी थी, और उस कार्य के लिए अर्जुन की सहायता अत्यन्त अपेक्षित थी। इधर अर्जुन को भी दिवोदास की कन्या से विवाह करके अपनी ऐंठ दिखानी थी। सुदास सहमत हो गया और अर्जुन तीन सहस्र घुड़सवारों के साथ आ पहुँचा।

अर्जुन ने आते ही अपने आने का मूल्य माँगा—लोमा कहाँ है? पर वह तो चली गयी थी। शेर की गर्जना के समान भयंकर ध्वनि उसके मुँह से निकली। उसे शिष्टाचार की चिन्ता नहीं थी। "लोमा को उपस्थित करो, नहीं तो मैं अपनी सेना के साथ यहाँ आया हूँ, मैं रीते-हाथ लौटकर नहीं जाऊँगा।" सुदास घबरा गया, अर्जुन शत्रु बन जाय तो?

अर्जुन से विरोध करना उसे सह्य नहीं था। उसने लोमा को ले आने का निश्चय किया। सुदास ने साथ में हर्यश्व को भी भेजा।

मुनि वसिष्ठ राजा सोमक के साथ मन्त्रणा करने गये थे, इसलिए उनसे पूछने का समय नहीं था। अर्जुन और हर्यश्व जब हरिश्चन्द्र के ग्राम के पास आये, तब बड़ी कठिनाई से हर्यश्व ने अर्जुन को दूर ही छावनी डालकर एक दिन रहने के लिए समझाया। भरत, भृगु और उनके सब मित्र यहाँ साथ में हैं, यदि वह साथ चला तो लोमा को कोई आने न देगा; और इस समः मार-काट करने में कोई सार नहीं था।

अन्त में अर्जुन मान गया। "लोमा को लिये विना न लौटना," उसने हर्यश्व से कहा। पर वह शान्ति से बैठ नहीं सकता था। अपनी ठोड़ी अपनी वज्रमुष्टि के सहारे टिकाकर रात-भर वह चुपचाप बैठा रहा। उसे सप्तसिन्धु के इन छोटे-छोटे राजाओं और छोटी-छोटी सेनाओं से चिढ़ थी।

"जाओ, घर में जाओ। थोड़े दिनों में अर्जुन आता है न ? अब तुम्हें बन्धन में डाले बिना न रहूँगा।"

हरिणी के समान उछलकर उसने अपना हाथ छुड़ाया, "स्मरण रखना, वसिष्ठ मुनि को जो बुलायेगा, उसके मैं प्राण ले लूँगी। अपने पिता की जमायी हुई व्यवस्था मैं किसी को बिगाड़ने न दूँगी, समझे ? अब मैं समझी कि पुत्र के रहते हुए भी राजा दिवोदास ने विश्वामित्र को पुत्र क्यों माना था।"

इस वाग्बाण से सुदास का हृदय बिंध गया। वह आगबबूला हो गया। अपनी बहन द्वारा किया हुआ भी यह अपमान सहन नहीं किया जा सकता था। उसने लोमा के एक तमाचा लगा दिया। तमाचे की चटाक के होते ही सुदास के मुँह से एक ऐसी चीख निकली मानो उसके प्राण निकल रहे हों, 'हाय !"

हर्यश्व झपटकर राम को खींचकर हटाने लगा। राम ने सुदास के बायें हाथ पर रुधिर से परिपूर्ण अर्धचन्द्राकार बना दिया था और राजा भी उस समय क्रोध भूलकर वेदना का अनुभव करने लगे थे।

वेदना होते ही सुदास ने तलवार खींचनी चाही, पर राम तो विद्युत्-वेग से काम करता था। राजा के हाथ में काटकर फिर उसने पास आये हुए हर्यश्व के पेट में उसने वेग से सहसा सिर मारा कि वह गिरते-गिरते बचा, पर उसका हाथ छूट गया।

इस अप्रत्याशित आक्रमण से सुदास और हर्यश्व की समझ में आने से पहले ही राम और लोमा दोनों हाथ-में-हाथ डालकर निकल चुके थे। सुदास की [illegible] केशावलियाँ और चार उछलते हुए पैर सामने क्रोधपूर्वक [illegible]। उनका वश चलता तो वे क्या-क्या न कर डालते ! बहन तो [illegible] थी और वह [illegible] नाग के समान विषैला था, पर जिसे [illegible] उसका किया ही क्या जा सकता है ?

"[illegible] को ठीक करना चाहिए," हाथ में फूँक मारते हुए राजा [illegible]। [illegible] चुपचाप [illegible]। [illegible] के स्वतन्त्र हो जाने से

दुष्परिणाम की उसे पूरी जानकारी थी। पिछले पाँच वर्ष से शशीयसी उसके घर मे एकचक्र राज्य करती थी और उसे जगत् के उपहास की सामग्री बनाती थी।

हाथ सहलाते हुए सुदास ने अन्त मे कहा, "हर्यश्व, शशीयसी और लोमा दोनों को ठीक करना ही पडेगा। मैं अभी पौरवी को कहता हूँ कि लोमा को बन्द करके रखे।"

लोमा और राम कुछ दूर तक तो दौडे, फिर श्वास लेने के लिए ठहर गये।

"राम," लोमा ने कहा, "चलो, तुम्हारे आश्रम मे चलकर वृद्धा से मिले। उसका कोई उपाय निकालना ही होगा।"

ऋषि जमदग्नि और रेणुका अपने पुत्रो और पट्ट-शिष्यो के साथ हरिश्चन्द्र के यज्ञ मे गये थे और विश्वामित्र तथा जमदग्नि दोनो अपने आश्रम सप्तसिन्धु मे अप्रतिम वीर समझे जानेवाले वृद्ध कवि चायमान को सौंप गये थे। ये दोनो वृद्ध कवि को 'वृद्धा' कहते थे।

"अच्छा चलो," राम ने कहा। फिर वह रुक गया। उसकी आँखे तेज से चमक उठी, "लोमा, तुम जाकर वसिष्ठ मुनि से कह आओ कि वे यहाँ न आयें।"

लोमा स्नेहपूर्वक राम को देखती रही। "धन्यवाद," उसने कहा, "तुम्हे सहसा ऐसी बात कहाँ से सूझती है? पर चलो, पहले वृद्धा से तो पूछ देखे।"

[6]

जब से दण्ड की बात प्रारम्भ हुई तब से हर्यश्व की चिन्ता का पार न था। उसका पुत्र कृशाश्व और दस्युओ के स्वर्गीय राजा शम्बर का पुत्र राजा भेद दोनो परम मित्र थे। जब विश्वामित्र समस्त सप्तसिन्धु मे आदरणीय माने गये तब उनकी स्वीकृत पत्नी उग्रा का भाई भी उसके पुत्र का परम मित्र हो, यह बात हर्यश्व को बहुत अच्छी लगी थी। किन्तु जब से राजा

सुदास के साथ विश्वामित्र की अनवन करने की योजना प्रारम्भ की गयी तव से उसने कृशाश्व को कहना प्रारम्भ कर दिया कि राजा भेद के साथ अपना सम्बन्ध कम करो।

अव कठिनाइयाँ बढ चली। दुष्ट लोगो ने यह अपवाद फैला रखा था कि कृशाश्व की रूपवती स्त्री शशीयसी को राजा भेद के बिना चैन नही है। यह भी सब जानते थे कि अभिमानी तृत्सु युवको ने भेद से बदला लेने का भी निश्चय किया था।

शशीयसी को टोकने मे भी उसे अभी तक बुद्धिमत्ता नही जान पडी थी। सुदास के पुत्र नही था, इसलिए कृशाश्व के राजा बनने की सम्भावना भी थी। उधर शशीयसी भी शृजय राजा सोमक की पुत्री थी और ऐंठू स्वभाव की थी। अपने घर तथा अपने पिता के घर वह अपनी आज्ञा के विना कुछ भी नही होने देती थी।

अव क्या होगा ? यदि कोई दुष्ट बालक दण्ड के अनुसार राजा भेद का वध कर दे तो समस्त सप्तसिन्धु मे उसकी और उसकी पुत्रवधू की वदनामी हुए विना न रहेगी। दस्युओ के राजा शम्वर के पुत्रो मे से केवल भेद को पाल-पोमकर विश्वामित्र ने एक छोटे-से प्रदेश का राजा वनाया था किन्तु जगल मे वैठकर अपना राज्य चलाने के वदले उसे तृत्सुग्राम मे आनन्द लेना अधिक प्रिय था।

विश्वामित्र के आश्रम मे उसे आर्यो की शिक्षा मिली थी। आर्य रहन-सहन का वह परम भक्त था।

सप्तसिन्धु मे समस्त दास भी उसकी पूजा करते थे। विश्वामित्र के साले का सभी आर्य और विशेपत भरत तथा भृगु लोग वडा आदर करते थे। वह राजकीय ठाठ-वाट से रहता था और नये व्यसनो के आवेश मे आर्यो के दूपणो का भी सेवन करता था। पूरे गाँव मे सुन्दरतम घोडे उसके पास थे। घृत और सुरा दोनो जितने अधिक उसके पास रहते उतने वडे-से-वडे आर्यो के घर भी नही मिल सकते थे। उसकी उदारता और उसके आतिथ्य-सत्कार की प्रशसा सभी लोगो के मुँह से सुनी जाती थी। आनन्दी

आर्य-युवक उसी के मत्थे खाते-पीते, उससे ही भेंट मे गौएँ लेते और फिर उसी की पीठ-पीछे उसका उपहास करते तथा उसके श्याम वर्ण से जलते और द्वेष फैलाते थे।

दासो की सिग्रुजाति के राजा शुष्णु की पुत्री मे उसने विवाह किया था। किन्तु अपने सस्कार के अनुरूप आर्य सुन्दरियो की सगति किये बिना उसका जी नही मानता था।

'उसी का खटका था,' हर्यश्व धीरे-से बडबडाया। 'क्या उस मुनि ने मुझे ही ठीक करने के लिए उस दण्ड-विधान की घोषणा करायी है'—यह सोचता हुआ सेनापति हर्यश्व अपने घर आया और शशीयसी तथा कृशाश्व की खोज करने लगा। सूर्यास्त हो गया था फिर भी दोनो लौटे नही, यह जानकर उसकी चिन्ता और बढ गयी।

राम का सिर इतने वेग से उसके पेट मे लगा था कि अभी तक भी वह भूला नही था। कुछ पीडा से और कुछ क्रोध से उसकी व्याकुलता बढती ही चली जा रही थी।

"अन्नदाता!" परिचर ने आकर कहा, "कर्दम आपसे मिलने आये है। अग्निशाला मे बैठे है।" हर्यश्व चौंका। दुष्ट और अभिमानी तृत्सु युवको का यह नेता कुछ-न-कुछ गडबड़ करने ही आया होगा। शकित होकर वह अग्निशाला मे गया।

"क्यो कर्दम?"

युवक ने प्रणाम किया। "तृत्सुश्रेष्ठ," कर्दम ने कहा, "आज जिस दण्ड-विधान की घोषणा की गयी है उसी के सम्बन्ध मे आपसे कुछ बात करने आया हूँ।"

"अच्छा, आओ बैठो," हर्यश्व ने कहा, "कहो, क्या बात है?"

"आपने निश्चय किया है कि जिस दास के साथ कोई भी आर्या सम्बन्ध रखती हो, उस दास को समाप्त कर दिया जाय।"

"हां, यह तो दण्ड-विधान ही है। ठीक है।"

"तो हम राजा भेद से ही प्रारम्भ करेंगे।"

"राजा भेद ! क्या कहते हो ? इससे तो खलबली मच जायेगी। राजा बिगड़ खडे होगे।"

"इसी से ही आपको अपने साथ ले जाने के लिए आया हूँ।"

"मुझे ? किसलिए ?"

"दण्ड-विधान के अनुसार आपका कर्तव्य होगा कि शशीयसी को आप नियन्त्रण मे रखें और सेनापति के रूप मे आप ही भेद का वध भी करे।"

"क्या ?" कडाई से हर्यश्व ने पूछा।

"क्षमा कीजिएगा, किन्तु आर्याओ मे श्रेष्ठ आपकी पुत्रवधू का व्यवहार देख-देखकर हमारा तो रक्त खौल उठता है।"

"झूठ बात है।"

"तो चलिये मेरे साथ। दण्ड-विधान की घोषणा होते ही शशीयसी गयी है भेद को सूचना देने। मेरे मित्रगण भेद के प्रासाद को घेरे बैठे है। तृत्सुओ के सिर से यह कलक आज हमे दूर करना ही होगा।"

"कृशाश्व कहाँ है ?"

"उसे मैंने अपने यहाँ बिठा रखा है। शशीयसी यदि कुछ भी गडबड़ करेगी तो उसे और कृशाश्व को दूसरे गाँव भिजवा देंगे, नही तो तृत्सुओ की बडी बदनामी होगी।"

"जान पडता है तुम सबने बडी योजना की है," कटाक्ष से हर्यश्व ने कहा।

"आपकी प्रतिष्ठा ही हमारा सर्वस्व है," उत्साही कर्दम ने कहा।

"पर तुम्हे यह कैसे विश्वास हुआ कि दोनो मे वैसा ही सम्बन्ध है जैसा तुम कहते हो ?"

"अभी तक भी आप अविश्वास करते है ? वह कब जाती है, कहाँ मिलती है, यह सब हम जानते है। चलिये मेरे साथ, मैं विश्वास करा देता हूँ।"

हर्यश्व विद्युत्-वेग से विचार कर रहा था, फिर भी वह सँभलकर किसी प्रकार बोलता ही जा रहा था जिससे कर्दम उसकी घबराहट न भाँप

ले। "वत्स, देखो मुनि वसिष्ठ के पास मुझे अभी तत्काल राजा सुदास का सन्देश ले जाना है। एक क्षण भी मैं ठहर नही सकता। तुम जो चाहो सो करो, पर मैं अपनी, तृत्सुओ की, राजा दिवोदास के कुल की लज्जा सब तुम्हारे हाथ सौंपता हूँ। शशीयसी भी साधारण कुल की नही है। उसकी और उसके पिता शृंजय के कुल की लज्जा भी रखना।"

"हमे तो किसी प्रकार यह भ्रष्टाचार रोकना है।"

"मेरा आशीर्वाद है, वत्स !" हर्यश्व ने मुँह से कह तो दिया, पर उसका मस्तिष्क अत्यन्त वेग से काम कर रहा था। इस हठी युवक को इस समय रोकने का प्रयत्न करने पर तृत्सुओं मे अपमानित होने की आशंका थी। यदि मैं न जाऊँ और ये लडके जाकर कुछ-का-कुछ कर आयें इसकी अपेक्षा तो यही ठीक है कि मैं स्वयं चला जाऊँ। कोई उपाय तो निकल ही आयेगा। शशीयसी की बदनामी होगी तो क्या होगा ? विश्वामित्र इस बदनामी से क्या समझेंगे ? सुदास क्या कहेगे ? और गर्विष्ठा रानी पौरवी कैसे क्षमा करेगी ? और यह जो आशा थी कि किसी-न-किसी दिन शशीयसी तृत्सुओं की रानी बनेगी उसका क्या होगा ?

अन्त मे मन मे इस पहेली का समाधान हो गया। उसने कहा, "भाई तुम्हारी बात सच है। तृत्सुओ के अग्रणी होने के नाते मुझे अपका कर्तव्य पालना ही चाहिए। यदि शशीयसी ऐसी ही हो तो कुलपति के नाते उसे नियन्त्रण मे रखना मेरा काम है। भेद का वध भी मेरे हाथो होना चाहिए।"

कर्दम गर्व मे हँसा—"इसे कहते हैं सच्चा तृत्सु। चलिये, आप तो हमारे सिरमौर हैं।"

"अच्छा बैठो," हर्यश्व ने कहा, "मैं घर मे खोज लूं। यदि शशीयसी घर मे हुई तो वहाँ हमारी बडी हँसी होगी।"

वह रनिवास मे गया और अपने विश्वासपात्र सेवक को उसने बुलाया. "घोड़े पर शीघ्र जाओ और सेनापति वृद्ध चायमान से कहो कि भेद के प्राण सकट मे हैं।"

"जो आज्ञा," कहकर परिचर चला गया।

हर्यश्व ने लौटकर कर्दम से कहा, "कृशाश्व को साथ मे लेते चलना चाहिए। तृत्सु महाजन के नाते मेरे पुत्र का भी धर्म है कि यह परम कर्तव्य अपने ही हाथ से पूरा करे।"

कर्दम इस सीधी बात को अस्वीकार न कर सका और वे दोनो कृशाश्व को लिवाने चल दिये।

[7]

मध्याह्न के पश्चात् जब दण्ड-विधान की घोषणा हुई और तृत्सुग्राम मे हाहाकार मच गया, तब राजा भेद अपने प्रासाद के विशाल उद्यान मे दो-चार मल्लो के साथ मल्ल-युद्ध कर रहे थे।

भेद श्यामवर्ण का एक ऊँचा और रूपवान् मल्ल था। वह सभी युद्ध-कलाओ मे कुशल था। प्रत्येक वस्तु का उपयोग वह अपने आनन्द के लिए ही करता था; वह घोडे पर चढता, किन्तु घोडा नचाने या घुडदौड में दौडाने के लिए ही, वह मल्लयुद्ध करता, किन्तु केवल नये-नये दाँव-पेंचो से वडे-वडे अनुभवी मल्लो को आश्चर्यचकित करने के लिए; वह धनुर्विद्या मे नैपुण्य प्राप्त करता, केवल अदभुत् प्रयोग करने के लिए। विश्वामित्र से उसने वहुत-कुछ सीखा, पर उनके ध्येय और गाम्भीर्य ने उसे स्पर्श नही किया था।

उसने मल्लयुद्ध पूरा करके शरीर मे तैल-मर्दन प्रारम्भ किया। तब उसका विश्वासपात्र सेवक गृद्ध आता दिखायी दिया और वह भी सिर खुजलाता हुआ।

जव वह सिर खुजलाते हुए आता तव शशीयसी का सन्देश लेकर आता था, ऐसा दोनो मे संकेत वँधा हुआ था। इस वेला मे उसके लिए उस सुन्दरी का क्या सन्देश होगा ?

भेद के प्रासाद के एक ओर शशीयसी की विधवा मामी का प्रासाद था और दूसरी ओर अगस्त्य और लोपामुद्रा का आश्रम था। इन दोनो

स्थानो मे होकर भेद के उद्यान मे जाने का मार्ग था। वहाँ एकान्त मे एक झोपडी थी। यही पर वे दोनो मिलते थे। वह कही तो जाती थी गृद्ध की झोपडी, पर रात्रि मे वहुत देर तक गृद्ध और उसकी स्त्री झोपडी मे रहने के वदले उसके आसपास चौकसी करते रहते थे।

गृद्ध भी राजा भेद का वडा विश्वासपात्र सेवक था। घर मे उसकी वहुत चलती थी और उसकी स्त्री ने तो भेद को अपना दूध पिलाकर वडा किया था, इसलिए सगी माता से भी अधिक वह भेद की रक्षा करती थी।

गृद्ध को सिर खुजलाते देखकर भेद तुरन्त ही तैल-मर्दन वन्द करके उसके पास गया।

"क्यो ?"

"आयी है ?"

"अभी ? कहाँ ?"

गृद्ध ने आँख से सकेत किया—"मेरे यहाँ।"

"आया," कहकर भेद ज्यो-त्यो तेल पोछकर गृद्ध के साथ हो लिया।

घुडसाल और नौकरो के आवास के पास दो दास सदा पहरा देते थे। उनके पास से निकलकर वे सघन पेडो के नीचे से होते हुए एक रमणीय स्थान मे जा पहुँचे। छोटे-से सरोवर मे हस तैर रहे थे। उसी के पास एक छोटी-सी झोपडी थी जो गृद्ध की झोपड़ी कहलाती थी। उससे थोडी दूर पर एक दूसरी झोपडी थी जिसमे वह वास्तव मे रहता था।

अधीर होकर दौडता हुआ भेद उस छोटी झोपडी मे घुसा और सौन्दर्य तथा सुवर्ण की आगार एक लावण्यमयी युवती सिसकियाँ लेती हुई उससे लिपट गयी।

"भेद ! भेद ! !"

भेद ने अपने सशक्त हाथो से उसका आलिगन किया, "क्या है ? कुछ कहो भी तो ?"

"भेद, हम लोगो का अन्त आ पहुँचा। तुम्हारा क्या होगा ?" शचीयसी ने विदीर्ण हृदय से कहा।

"पर बात क्या है यह तो बताओ," शशीयसी के आँसू पोछकर भेद ने पूछा।

"राजा चाहते है कि विश्वामित्र को निकालकर वसिष्ठ को पुरोहित-पद दे दे।"

"तो उससे क्या ?" भेद सहसा समझ न पाया।

"अर्थात् तुम और मैं पृथक् हो जायेंगे। अभी राजा ने घोषणा करायी है कि जो भी दास आर्याओ के साथ सम्बन्ध रखता हो उसका तत्काल वध कर दिया जाय। इसीलिए मैं आयी हूँ भेद, तुम भाग जाओ। तुम्हे तृत्सु नही छोडेंगे।" शशीयसी की आँखो मे आँसू बरस पडे। भेद ने उनका चुम्बन ले लिया।

"तुम क्यो घबराती हो ? किसकी शक्ति है कि मेरा बाल भी बाँका कर सके ?"

"भेद, तुम इन लोगो को जानते नही हो। कितने ही माह से सब लोग हम दोनो के विषय मे कितनी बाते कर रहे है। और यह घोषणा भी तुम्हारे ही लिए की गयी है।"

"तुम बैठो तो सही। थोडा शान्त हो जाओ तब हम लोग विचार करेंगे," कहकर भेद ने उसे दोनो हाथो से उठाकर सुन्दर मृगचर्म के बिछौने पर सुला दिया और उसके पास बैठकर उसके स्तनों पर अपना सिर रख दिया।

भेद की रसिकता मे डूबी हुई शशीयसी जिस कारण से आयी थी उसे भूल गयी और इस प्रणयी के हाथ मे कालचक्र की गति भी रुक गयी।

अँधेरा हो चला।

थोडी देर मे गृद्ध की चिल्लाहट सुनायी दी और दोनो चौंककर अलग हो गये।

"अरे बाप रे, बहुत देर हो गयी। मुझे जाने दो," कपडे ठीक करते हुए शशीयसी ने कहा।

तभी एक ऊँची काली परछाई द्वार मे आकर खड़ी हो गयी—"भेद,

जहाँ हो वहाँ से न हटना। मैं हूँ वृद्ध कवि।"

भेद और शशीयसी काँप उठे—सप्तसिन्धु की सेनाओं से त्राहि करानेवाले ये वृद्ध सेनापति यहाँ कहाँ से ?

झोंपड़ी का द्वार खोलकर वृद्ध कवि ने प्रवेश किया और बोले, "मूर्ख ! तेरे लिए यम तड़प रहा है और तूने यह क्या काण्ड मचाया है ? चलो दोनो मेरे साथ।" उनका स्वर काँप रहा था। उनसे प्रश्न पूछने का दोनो मे से एक का भी साहस नही था।

हर्यश्व और कर्दम दोनो जब राजा भेद के घर पहुँचे तब उसके प्रासाद के पास एक लडके ने कर्दम को सूचना दी कि शशीयसी और भेद अभी वृद्ध की झोंपडी मे ही हैं। हर्यश्व और उसके साथी पास के मार्ग मे होकर एक प्रवेश-द्वार के पास पहुँचे। वहाँ सात-आठ लड़के हाथ मे खड्ग लेकर पहरा दे रहे थे।

"क्यो, वे दोनो भीतर है ?" कर्दम ने पूछा।

"हाँ, झोपडी मे ही हैं। मैंने दोनो को अपनी आँखों से भीतर जाते देखा है।"

वृद्ध कवि को भेजा हुआ सन्देश निष्फल समझकर हर्यश्व की घबराहट का पार न रहा। इन लडको के सामने अपनी मिटती हुई मर्यादा किसी भी प्रकार बचानी ही चाहिए, ऐसा संकल्प करके वह कर्दम को अलग ले गया।

"क्या तुम्हे विश्वास है कि शशीयसी चोर के समान इस प्रवेश-द्वार मे आती होगी ?"

"जी हाँ, बहुत बार। या तो अपनी मामी के प्रासाद मे होकर या उस ओर अगस्त्य के आश्रम मे होकर आती है।"

"अच्छा ?" शकायुक्त स्वर मे हर्यश्व ने पूछा।

"हाँ, मैंने स्वय उसे आते देखा है।"

"तब हम लोग एक काम करें। मैं झोपडी के पीछे खडा रहता हूँ, और तुम अपने दो मित्रो के साथ झोंपडी के आगे खड़े रहो। पीछे से शशीयसी निकलेगी तो मैं पकड लूँगा और तुम भेद को पकड लेना। मैं नही जानता

था कि तृत्सुओ की कुलकलङ्किनी मेरे घर पनपेगी। बाहर वात जायेगी तो आर्यों मे हम सबकी बडी वदनामी होगी।"

कर्दम भी हर्यश्व का आदर करता था, इससे उस पर दया कर उसने यह योजना स्वीकार कर ली। हर्यश्व जाकर गृद्ध की झोपडी के पीछे खड़ा हो गया और लडके आगे के द्वार पर खड्ग उठाकर खडे हो गये। पेडो की छाया के कारण झोपडी मे अँधेरा था। केवल किसी पक्षी के पखो की फड-फडाहट से ही नीरवता भग होती थी।

एक घडी वीती, दो घडियाँ बीती, पर झोपडी मे से नि श्वास तक सुनायी न दिया। अन्त मे लडको ने द्वार पर कान लगाये, तो जान पडा कि झोपडी निर्जन है।

कर्दम भी जाकर हर्यश्व को बुला लाया, और उसने द्वार मे धक्का मारा। द्वार खुल गया। एक ने चकमक रगडकर दीया जलाया। झोपडी मे कोई नही था। 'देव ने ही मेरी रक्षा कर ली,' इस प्रकार मन मे वडवडाकर उसने कर्दम को एक तमाचा जडा, "क्यो लडके !" वह क्रोध मे चिल्लाया, "मुझसे भी ठट्ठा !" और किसी को वोलने का अवसर दिये बिना ही वहाँ से वह पैर वढाकर निकल गया।

इस महासकट से मुक्त हो जाने पर विचार करता हआ जव वह अपने प्रासाद मे पहुँचा तव राजा सुदास का सन्देशवाहक उसकी प्रतीक्षा मे वैठा था।

"अन्नदाता ने कहलाया है कि जव आप मुनि के आश्रम मे जायँ तव राजप्रासाद से होकर जायँ। आपके साथ राजमहिषी और आपकी पुत्रवधू शशीयसी भी जानेवाली है।"

"मेरी पुत्रवधू शशीयसी ?" वेसुध-से होकर हर्यश्व ने पूछा।

"जी हाँ, वे राजमहिषी के साथ मे ही है और आपके आने तक वे वहीं रहेगी।"

मैं जागता हूँ या नही, यह निर्णय करने मे भी असमर्थ वना वह एकटक देखता रहा।

कर्दम और उसके साथी आपस मे झगडने लगे। किसने यह परिहास किया है? किसने शशीयसी को देखा? किसने भेद का स्वर सुना? झगड़ा करते-करते जब वे सब थक गये तब उन्हे सुध आयी कि भेद के सेवक हमे देखेंगे तो मार डालेंगे। सब शान्त होकर प्रासाद की ओर बढे तो देखा कि वहाँ नि.शब्द अन्धकार फैला हुआ है।

अन्त मे वे प्रासाद के पास पहुँचे तो जान पडा कि वहाँ भी कोई नही है। धीरे-धीरे उन्हे साहस आया और उन्होंने दीये जलाये। वे चारो ओर घूमे पर उन्हे कोई दिखायी नही दिया। उन्होने घुडसाल मे से घास-फूस बटोरी और प्रासाद मे आग लगा दी।

प्रासाद मे आग लगते ही लडको मे उत्साह भर आया। वहाँ जो बड़े-बडे दास रहते थे, वे उनके घर मे आग लगाने का प्रयत्न करने लगे। इन प्रयत्नो मे वे अधिक सफल न हुए, तो वे लड़के इस काण्ड मे योग देनेवाले आर्य सब मिलकर उधर पहुँचे जिधर दूसरे दास रहते थे। वहाँ जितने दास मिले उन सबको मारा और कितनो के घर भस्म कर दिये। प्रात.काल की वेला निकट आने पर ये तृत्सुवीर अग्नि महोत्सव मनाकर अपने-अपने घर लौट गये।

[8]

राजा मुदास के चले जाने पर मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठ, पुन: देवों की आज्ञा माँगने बैठे। यह अयाचित पुरोहितपद ले या न लें, यह प्रश्न उन्होंने देव वरुण से पूछा, और पक्षियो के पथ जाननेवाले देवाधिदेव ने उन्हें यह पद लेने की आज्ञा दी या नही, यह वे निश्चित न कर सके। किन्तु जिस अवसर के लिए वे जीवन-भर प्रयत्नशील रहे वह सामने उपस्थित हो गया है, यह उन्हें निश्चित प्रतीत होने लगा।

प्राचीन ऋषियो मे जिन वसिष्ठो को देवगण सर्वाधिक प्रिय मानते थे उनकी विद्या और तप की पैतृक सम्पत्ति जबने उन्हे गुरु के आश्रम मे प्राप्त

हुई थी तभी से जीवन के इस परम कर्तव्य के बारे मे उन्हे कभी शका नही हुई।

यदि उन्हे यह परम कर्तव्य पूरा करना न होता तो वालकपन मे ही वसिष्ठो के विशाल आश्रम मे तप करनेवाले सैकडो शिष्यो मे उनका श्रेष्ठत्व क्यो स्वीकार किया जाता, और छोटी ही अवस्था मे उन्हे वसिष्ठो का कुलपतिपद क्यो प्राप्त होता ? उन्हे तभी से स्पष्ट भान होने लगा था कि आर्यो के संस्कार, विद्या और विधि को यथापूर्वक पूर्णतया शुद्ध रखने का परम कर्तव्य देवो ने उनके ही सिर डाला है। गत सत्तर वर्षो के अपने जीवन-पट पर वसिष्ठ ने दृष्टिपात किया तो उन्हे स्पष्ट दिखायी देने लगा कि इस कर्तव्य को पूरा करने की आवश्यक योग्यता प्राप्त करने मे उन्होने प्रत्येक क्षण और प्रत्येक वृत्ति का उपयोग किया है।

साथ ही देवो ने उन्हे कसौटी पर कसने मे कोई वात उठा न रखी थी। उनके वडे भाई अगस्त्य के प्रखर व्यक्ति के विरुद्ध उन्हे कितने ही वर्षो तक अकेले ही लोहा लेना पड़ा था। राजा दिवोदास निरन्तर दस्युओ के साथ युद्ध किया करते थे। उसके परिणामस्वरूप आर्य अपने कुलाचार छोडकर अपने घरो मे दास रखने लगे, उनकी स्त्रियो के साथ सम्वन्ध करने लगे, और उनके पुत्र आर्यो के संस्कार कलुपित करने लगे। कितनी ही आर्याएँ भी दासों के साथ सम्बन्ध रखने लगी। देवो की आराधना मे स्खलन होने लगा था। कितने ही आर्य तो दासो के देवता की भी आराधना करने लगे थे।

उन्होने वहुत तप भी किया, किन्तु इस अधोगति से आर्यो का उद्धार करने का मार्ग उन्हे नही सूझा। अपने तप के वल से वे केवल तपस्वियो के आचार शुद्ध रख सके।

आज उनके विस्मृत भीपण प्रसगो की स्मृतियाँ पुन. हरी हो उठी। यह प्रयत्न भी देवो ने सफल न किया। विद्या और तप मे अद्वितीय ऋषि लोपामुद्रा ने दासो के साथ परिचय वढाकर उनके सस्कार के लिए आर्यो का जो तिरस्कार किया था उसे भी कम कराया। फिर तो देवो ने वसिष्ठ को कसौटी पर कसने मे कोई कसर न छोडी।

फिर शम्बर का वध किया गया, पर मरते-मरते भी वह आर्यत्व को मृतप्राय कर ही गया। सहस्रो दास आकर आर्यों के घरो मे नौकरी करने लगे। उनके और उनकी स्त्रियो के स्पर्श मे आर्यत्व भ्रष्ट हो गया। अगस्त्य ने लोपामुद्रा मे विवाह किया और विश्वामित्र ने उग्रा को स्वीकार किया।

"देवाधिदेव! कैसा भयकर काण्ड है," उनके मुँह मे निकला।

उनकी विचारमाला आगे बढी। उस समय उन्हे ऐसा सशय हुआ था कि उनका जीवन-कर्तव्य असत्य है, और उसी क्षण प्राण त्यागने का विचार भी उनके मन मे आया था।

किन्तु उन्हे ऐसा भी भान हुआ था कि किसी ऐसे ही काम के लिए देव उन्हे जीवित रखे हुए हैं, यह बात भी उन्हे स्मरण हो आयी।

उन्होने भीष्मप्रतिज्ञा की—जहाँ विश्वामित्र वहाँ मैं नही। जहाँ आर्यत्व की शुद्धि न हो, वहाँ वसिष्ठ नही रह सकते।

देवो ने उन्हे विचित्र शक्ति प्रदान की और सम्पूर्ण आश्रम-सहित वे तृत्सुग्राम से चल दिये। आर्य-सस्कार की विशुद्ध ज्योति लेकर उन्होने निर-भिमान होकर अपने मन-ही-मन इस अभिनिष्क्रमण का वर्णन किया।

देवो द्वारा दिया हुआ आश्वासन आज उन्हे सफल होता दिखायी देता था। अब इस ज्योति द्वारा आर्यों के सस्कार सतेज करने की आज्ञा प्राप्त होने का समय आ पहुँचा था। तीसरे दिन मुनियो मे श्रेष्ठ वसिष्ठ सूर्यदेव को अर्घ्य देकर सदा के समान अपनी कुटी के आगे यज्ञकुण्ड के पास बैठे अग्नि की आराधना कर रहे थे।

अरुन्धतीपद की अधिकारिणी उनकी पत्नी उनकी प्रत्येक चेष्टा भक्ति-भाव मे निरख रही थी। उनका बड़ा पुत्र शक्ति और उनके अग्रगण्य शिष्य सब गुरु पर दृष्टि जमाकर बैठे थे।

सब जानते थे कि गुरुदेव आज देव की जो आज्ञा माँग रहे थे वह अभी तक प्राप्त नही हो सकी है। किन्तु जिस कर्तव्य के लिए उन्होने देह धारण की है उसे फलते देखकर ये सब अननुभूत उल्लास का अनुभव कर रहे थे। मुनि जो कर रहे थे उसमे सयम दृष्टिगोचर होता था। वे जो समिधा अग्नि मे

डाल रहे थे, वह भी अभ्यास से और विचारपूर्वक। वे अग्नि की आराधना करते समय मौन होकर ऋत के रहस्य शोधने मे ध्यानमग्न हो गये। अग्नि मे ज्वाला प्रज्वलित हुई। इससे क्या सूचित होता था? एक शिष्य ने आकर इस प्रश्न का उत्तर-सा सूचित किया कि महिषी पौरवी, सेनापति हर्यश्व, उनकी पुत्रवधू शशीयसी और थोडे-से तृत्सु महाजन आये हैं।

वे सब चले आये।

शशीयसी जब भेद से अलग हुई तब हृदय से भी वह वृद्ध कवि के साथ चली गयी। सेनापति ने अपने परिचर के कपड़े ज्यो-त्यो उसे लपेटकर अपने घोड़े पर बिठाकर उसे राजप्रासाद के पास उतार दिया।

"पौरवी रानी के पास चली जा। आज तो बच गयी। फिर कभी ऐसा न करना," वृद्ध कवि ने जाते-जाते कहा—"तुझ-जैसी आर्याएँ तो सर्वनाश करा बैठी है।"

बिना कुछ कहे शशीयसी राजप्रासाद मे चली गयी। स्वत बच गयी, इसलिए उसके शरीर मे जो सुगन्धि अभी भी आ रही थी उस सुगन्धि के स्वामी का उसे स्मरण हो आया। भेद का क्या हुआ होगा?

कुछ करने की उसे उत्कण्ठा हो उठी। वह दौडती हुई रानी के पास गयी और आज की बातो की जो चर्चा चल रही थी उसमे सम्मिलित हो गयी। जब उसने सुना कि वसिष्ठ को निमन्त्रित करने के लिए हर्यश्व जाने-वाले है तब उसने कहा कि ऐसे महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए स्वय रानी को ही जाना चाहिए। यह बात सबको अच्छी लगी और परिणामस्वरूप रानी स्वय दलबलसहित मुनि वसिष्ठ के यहाँ चली आयी।

"पुत्री, बहुपुत्रवती बनो," मुनि ने आशीर्वाद दिया। "हर्यश्व, शतशरद् जीवित रहो; और बालिके!" वसिष्ठ ने तटस्थता से शशीयसी को सम्बो-धित किया, "आर्यत्व को सुशोभित करने की देव तुझे शक्ति प्रदान करें। महाजनो! चिरजीवी बनो।"

सब बैठ गये। शशीयसी के झुके हुए नयनो मे जिज्ञासा और भय के साथ-साथ द्वेष भी था। ये मयकर मुनि उसे और भेद को अलग करना चाहते

हैं और अब उन्हीं के साथ रहना पड़ेगा! वह जाकर रानी के पास बैठ गयी। कोई बोला नहीं।

थोड़ी देर तक मुनि अग्नि की ओर देखते रहे और फिर कहा, "महिषी, बड़ा अच्छा किया, आप आयीं। कहिए क्या कहना है?"

"राजा ने प्रणाम कहलाया है," हर्यश्व ने कहा, "महाजनों ने आपके आगमन पर बहुत बधाई दी है।"

"हूँ।"

"आपने जो आदेश दिये थे उनकी योजना भी हो चुकी है।"

"दोनों की?"

"जी हाँ।"

गरीयसी ने एक टेढ़ी-सी दृष्टि वसिष्ठ पर डाली। वसिष्ठ तो अग्नि की ओर ही देख रहे थे।

"हम सब आपका स्वागत करने के लिए आतुर हो रहे हैं," गौरवी ने कहा।

मुनि के मुख पर मन्द हास्य आ गया। "सब?"

"कुछ लोगों को भले ही अच्छा न लगता हो," रानी ने सुधार किया।

"क्या आप आज भी ऋषि विश्वामित्र को सन्देश भिजवाने की आवश्यकता समझते हैं?" हर्यश्व ने पूछा, "हमें तो आवश्यकता नहीं जान पड़ती।"

"तुम्हें न जान पड़ती हो, यह मैं समझता हूँ, किन्तु उनकी अनुमति के बिना मैं नहीं आ सकता।" उन्होंने दूर बैठे हुए शक्ति की ओर देखकर कहा, "बेटा, सूर्य ढलने से पहले ही चले जाओ।" फिर हर्यश्व की ओर देखकर उन्होंने कहा, "किन्तु जान पड़ता है अभी राजा सुदास का सन्देह पूरा नहीं हुआ।"

रानी ने कहा, "राजा ने लोमा बहन को मर्यादा से बाँधना आरम्भ किया है।" गरीयसी ध्यान से सुनने लगी।

"यह मैं नहीं जानना चाहता था," मुनि ने कहा।

"तब?"

"मैंने तो पुछवाया था कि वह क्या करना चाहती है," मुनि ने कहा।

"वह तो जो राजा कहेंगे वही करेगी," रानी ने विश्वास दिलाया।

"अच्छा!" मुनि ने शका की, "मैं नही मानता।"

मुनि की शका को मूर्तिमान करते हुए सहसा लोमहर्षिणी और राम वहाँ आ पहुँचे। लोमा ब्रह्मचारी के वेष मे थी।

उसका मोहक मुख और सुन्दर शरीर जटा और वल्कल मे और भी आकर्षक प्रतीत होते थे। राम भी ऐसे ही वेष मे था, पर उसके बाल खुले थे और उसके गम्भीर मुख से ऐसा भास होता था मानो सूर्य की किरणे फैलकर निकल रही हो। लोमा ऐसी लगती थी मानो अभी अन्तरिक्ष से उतरी चली आ रही हो।

हर्यश्व की जीभ तालु से चिपट गयी। लोमा किसी से दबनेवाली नही थी। उसने पहले कभी मुनि को देखा नही था, पर तुरन्त ही पहचान लिया। पैर छूकर वह बोली, "मुनिश्रेष्ठ, आशीर्वाद दीजिये। मै लोमहर्षिणी राजा दिवोदास की पुत्री और ऋषियो मे श्रेष्ठ भगवती लोपामुद्रा की शिष्या पाँव पडती हूँ।"

नि:सकोच भाव से उसने वसिष्ठ के पैर छुए। वहाँ बैठे हुओ को ऐसा धक्का लगा मानो पृथ्वी फट गयी हो। इस आश्रम मे मुनि की उपस्थिति मे लोपामुद्रा का नाम लेना अकल्प्य था, और यहाँ तो उसकी शिष्या ही चली आयी थी।

मुनि ने आँखें बन्द कर ली। क्या होगा, वह सब अनिमेष दृष्टि मे देखते रहे। उन्होने जब आँखें खोली तब उनका तेज स्थिर और भावविहीन था।

"मेरे आशीर्वाद की तुझे क्या आवश्यकता है?" उन्होने धीरे-से पूछा, "मैं तो इतनी ही प्रार्थना आदित्यो से करता हूँ कि उनकी कृपा तुझ पर हो जिससे तुझे आर्यत्व प्राप्त हो। और···" मुनि की दृष्टि राम पर पडी। उस मस्त, स्वस्थ और तेजस्वी बालक की ओर उन्होंने प्रशसा के भाव से देखा। उन्होंने बालक के विषय मे बहुत-सी बातें सुनी थी।

"यह कौन ? जमदग्नि का पुत्र है ?" उन्होने हँसकर पूछा।

राम ने प्रणिपात करके मुनि की चरण-रज सिर पर चढायी। मुनि उसके सुन्दर शरीर और तेज-भरी मुख-कान्ति देखकर क्रोध भूल गये और उसके सिर पर हाथ रखा—"वत्स, अपनी तपस्या से आर्यो को तारना। तुम्हारा नाम क्या है ?"

राम ने हाथ जोडकर कहा, "राम !"

यह रूप, विनय और कान्ति देखकर मुनि और भी अधिक आकर्षित हुए—"वत्स, इधर आओ," कहकर उन्होने उसका हाथ खीचकर अपने पास विठा लिया, "आर्यो की कीर्ति उज्ज्वल करेगा न ?"

तभी विमद ने आकर प्रणाम किया और मुनि ने जमदग्नि तथा रेणुका के समाचार पूछे।

"मुनिवर," लोमा ने कहा, "मैं आपसे कुछ कहने आयी हूँ।"

मुनि पुनः तटस्थ हो गये, "क्या ?" और फिर अग्नि की ओर देखने लगे।

"यही कि मेरे भाई ने आपको पुरोहित वनने का निमन्त्रण दिया है, उसे आप स्वीकार न करें।"

"अरे ! यह क्या कहती है ?" रानी उसकी धृष्टता से घवराकर वोली।

"कहने दो उसे," मुनि ने कुछ हँसकर पूछा, "क्यो ?"

"सच्ची वात कह दूँ ?"

"यहाँ सत्य ही कहने आयी है न ?"

"तो सुनिये, विश्वामित्र को मेरे पिताजी पुरोहित वना गये है। मैं अपने पिताजी के वचन अपने भाई द्वारा मिथ्या न होने दूँगी।"

"जो राजा हो वह पुरोहित की प्रतिष्ठा करे," मुनि ने कहा।

"इतने वर्षो के पश्चात् आप क्यो आते है ? आप अस्वीकार कर दीजिए।"

"मुझे देव की आज्ञा होगी तो अवश्य आऊँगा।"

"किन्तु हमें तो विश्वामित्र ही चाहिए।"

"मेरे प्रति इतनी अरुचि क्यो ?"

"मेरे पिता, गुरु अगस्त्य और भगवती लोपामुद्रा, ये तीनो जो कुछ कर गये है, वह सब आप मिटा देना चाहते है इसलिए।"

"यदि आर्य-सस्कार की पुन· स्थापना मे दोष हो तो यह दोप ही लेने के लिए देव ने मुझे आयु प्रदान की है।"

"तो क्या मुनि अगस्त्य, भगवती और विश्वामित्र ऋषि आर्यत्व भ्रष्ट करते हैं ?" कमर पर हाथ रखकर लोमा ने पूछा।

"लोमा, यदि मुझे यह विश्वास न होता तो मैंने कभी का यह शरीर त्याग दिया होता।"

"तो यह कहिए न कि आप हमारे पुरोहित होना चाहते है।"

"इसी लोभ को दूर करने के लिए ही तो मैं शक्ति को ऋषि विश्वामित्र के पास पूछने के लिए भिजवा रहा हूँ कि यह पद मै लूँ या न लूँ।"

"और यदि वे स्वीकार न करें तो ?"

"तो मै ग्रहण नही करूँगा। और कुछ ?"

लोमा खडी हो गयी—"तो मैं जाती हूँ, ऋपि विश्वामित्र के पास। मुझे पुरोहित नही वदलने है। मैं जानती हूँ, आप आकर क्या करना चाहते हैं। सस्कार के नाम पर आप चारो ओर वैर और दु ख फैलाना चाहते हैं।"

"आर्यत्व के सरक्षण के लिए जो वलिदान देना पडेगा वह तो अवश्य दूंगा ही।"

"तो मुनिराज, मैं लोमहर्पिणी, भगवती की शिप्या," सिंहनी के समान उग्रता से लोमा गरजी, "आपको स्पष्ट कहे देती हूँ कि जव तक आपको इस पद से हटा नही दूंगी तव तक चैन न लूंगी।"

"लोमा, लोमा," रानी पुन. वीच मे वोल उठी।

"और अव मैं विश्वामित्र के पास जाती हूँ।"

"आप, लोमाजी ?" हर्यश्व ने पूछा।

"हां।"

"किन्तु आपके भाई क्या कहेंगे ?" रानी ने कहा।

"जिसने मेरे पिता की अवगणना की वह भाई काहे का ? मुझे जहाँ जाना होगा वहाँ मैं जाऊँगी। मुनिवर्य, जाती हूँ। किसी दिन स्मरण कीजिएगा कि मैंने क्या कहा था। चलो राम !"

"मुनिवर, आज्ञा दीजिए," राम ने अनुमति माँगी।

"तुम कहाँ जाते हो ?"

"मैं राजा हरिश्चन्द्र के यहाँ पिताजी के पास जाता हूँ।"

"लडकी," धीरे से किन्तु कडाई से वसिष्ठ ने कहा, "यह काम तुम्हारा नही है। तुम महिषी के साथ लौट जाओ। तुम्हारा स्थान तुम्हारे भाई के पास है।"

निर्लज्जता से लोमा हँसी—"स्वर्ग से देवताओ को उतार लाऊँगी, किन्तु भाई ने जो सोचा है वह कभी न होने दूँगी। चलो राम," कहकर क्रोध से भरी हुई लोमा जाने लगी।

हर्यश्व ने मुनि से पूछा, "क्या मै इसे रोकूँ ? राजा सुदास क्या कहेंगे ?"

राम ने प्रश्न सुना और उसकी आँखे विकराल हो गयी। वह हर्यश्व तथा लोमा के वीच आकर खड़ा हो गया।

मुनि ने विचार किया—"विमद, तुम साथ मे हो न ?" उन्होंने पूछा।

"जी हाँ," विमद ने कहा।

"तो कोई चिन्ता नही हर्यश्व, शक्ति भी साथ मे है। जाती ही है तो जाने दो।"

"पर अर्जुन वीतहव्य के आने पर उससे इसका विवाह करना है।"

"मेरा विवाह ?" लोमा ने कहा और सिर हिलाकर मुनि तथा रानी का तिरस्कार करती हुई लोमा राम को लेकर चली गयी।

"मैं जानता ही था कि लोमा सरलता से नियन्त्रण मे न आयेगी। शक्ति, तुम इसे लौटा लाना। महिषी, आप सव भोजन करके जायें।"

"जो आज्ञा। पर आपका उत्तर ?" रानी ने पूछा।

"मेरा या देवो का ? मुझे जान पडता है कि देव मेरा उपयोग अवश्य करेंगे, 'ना' नही कहेगे।" मुनि ने विश्वास दिलाया।

[9]

अपने शस्त्र-विद्या के गुरु और भरत, तृत्सु तथा भृगुओ की सयुक्त सेना के नायक वृद्ध कवि की आज्ञा के अनुसार राजा भेद अपने सेवको को साथ लेकर ऋषि जमदग्नि के आश्रम मे आ पहुँचा। शशीयसी के पास से जिस प्रकार उसे भागना पडा था वह उसे अच्छा नही लगा था। दासो से कितने ही आर्य जलते थे, इस वात को भी वह जानता था। तो भी उसे यह विश्वास नहीं था कि स्थिति इतनी गम्भीर हो जायेगी।

वृद्ध कवि के सहसा आ जाने पर वह स्वत: कैसी अधम दशा मे पड गया था, यह उसकी समझ मे आया।

वसिष्ठ-विश्वामित्र का विरोध उसके लिए अवकाश के समय उपहास करने का विषय था। उसके जगत् मे विश्वामित्र तो ध्रुव के समान निश्चल मध्यविन्दु थे। इस मध्यविन्दु को हटाने के प्रयत्न को वह अपने मन मे वालिशता की पराकाष्ठा समझते थे। एकदम यह मध्यविन्दु हट गया। वृद्ध कवि की उग्रता से उसने भाँप लिया कि वात वहुत गम्भीर हो चली है।

विश्वामित्र के चले जाने का अर्थ यह है कि उसकी और उसके जनो की बुरी दशा होगी। हर प्रकार से आर्यश्रेष्ठ की वरावरी करनेवाले दास-श्रेष्ठ को भी गाँव के वाहर रहना पडेगा। वह आर्यों के साथ वरावरी का सम्वन्ध नही रख सकेगा। अव से जो भी दास किसी आर्या के साथ ससर्ग रखेगा वह पागल कुत्ते के समान वध करने योग्य समझा जायेगा।

भेद क्रोध से आगवबूला हो गया। उसके पिता दिवोदास के समवयस्क थे। यदि दिवोदास हारे होते तो सुदास के स्थान पर आज वही राज्य करता होता। आज केवल विश्वामित्र की कृपा से ही वह इस प्रकार विचरण कर रहा था। वह दास था, इसीलिए ही उसे इस प्रकार भागना पडा।

आर्य राजाओ से वह किस बात मे कम था ? उसके समान चतुर-चपल और सस्कारयुक्त बहुत थोडे लोग थे। इतना ही नही, आर्यो के रहन-सहन को भी जितने अच्छे ढँग से उसने सुशोभित किया था, उतना किसी ने नही किया था। स्वय विश्वामित्र ने उसे गायत्री सिखायी थी। उसने बड़े-बड़े यज्ञ करके देवो की भी आराधना की थी, तो भी वह दास था, पशु के समान उसका वध किया जा सकता था। उसे सिखाया गया था कि शम्बर व्यर्थ ही आर्यो के साथ लडा करता था। आज शम्बर की चतुराई उसकी समझ मे आ गयी। इस अधमता को सहन करने की अपेक्षा रणागण मे मरना ही श्रेयस्कर था।

प्रतिदिवस उसके चारो ओर लोभी आर्य मँडराया करते थे। आज उसके पास कोई नही दिखायी दे रहा था। इन सबमे अकेली शशीयसी ही उसे नि.स्वार्थ-भाव से चाहती थी। पर वह गोरी, गोरे लोगो की थी। वह स्वत. काला था, दास था।

वृद्ध कवि ने उसे तुरत अपने राज्य मे चले जाने की सम्मति दी थी। यदि उसे कुछ हो गया तो इसका क्या परिणाम होगा ? विश्वामित्र की आज्ञा के विना भरत या भृगु लोग तृत्सुओ के साथ विग्रह मोल नही ले सकते थे।

कटुतापूर्वक भेद ने अपनी स्थिति का विचार किया। ये सब आर्य थे, वह दास था, वह विश्वामित्र का साला होते हुए भी आर्य नही था। उसके लिए आर्य परस्पर विग्रह कैसे कर सकते है ? वह तो काले वर्ण का था, दास था।

काला, दास, अधम आदि शब्द उसके कान मे कितनी ही देर तक गूंजते रहे।

इतने मे उसे ढूंढते हुए दास महाजन समाचार लेकर आ पहुँचे। आर्यो ने उसका प्रासाद जला दिया था। किसी-किसी दास पर मार भी पडी थी। किसी-किसी के घर आग भी लगा दी गयी थी। नगर मे दासो की हत्या हुई थी।

भेद का रक्त खौल उठा।

वह, उनका राजा, राजा शम्बर का पुत्र, इस प्रकार कायर के समान छिपकर घूम रहा था। अपनी अधमता वह भली प्रकार समझ गया। जो हारा वह मारा गया। आज वह तो दास था, काले वर्ण का था।

उसके हृदय मे व्याप्त विष मे से सकल्प का उदय हुआ। उसने तृत्सु-ग्राम से चोर के समान नही प्रत्युत विजेता के समान जाने का संकल्प किया। दासो के पास जितने घोडे थे उतने उसने मँगवा लिये और उन्हे अपने राज्य मे चलने की आज्ञा दी। पर उनमे से बहुतो ने उसके साथ जाना अस्वीकार कर दिया। उन्होने हाथ जोडकर कहा, "यह तो बादल आया है, उड जायेगा और फिर पूर्ववत् स्थिति हो जायेगी। हडबडाना और घबराना उचित नही है।"

भेद के क्रोध का पार न रहा, "जाओ, तुम लोग आर्यो के पशु बनकर रहने योग्य हो।"

दो सौ घुडसवार तो उसके अपने थे। दूसरे पचास के लगभग महाजन साथ हुए, और इन सबको लेकर दिन निकलते ही उसने अपने राज्य का मार्ग पकडा। ग्राम छोडते समय उसने भी आर्यो के कितने ही घरो को फूँक डाला।

राजा भेद ने गाँव छोडते समय पीछे फिरकर दृष्टि डाली। यही वह बडा हुआ था, यही उसने पढा-लिखा था, आनन्द मनाया था, और वह सुखी हुआ था। आज उसे किसी हिंसक और वध्य पशु के समान सब दूर हाँक रहे थे।

थोडी देर के पश्चात् उसने घोडा रोका और फिरकर इस प्रिय और परिचित स्थान के दर्शन किये। परुष्णी बह रही थी, कल्लोल करती हुई—इन सब दोषो से अस्पृष्ट। ग्राम मे बहुत से स्थानो मे उसी प्रकार की ज्वालाएँ उठती दिखायी दी, जिस प्रकार उसके हृदय मे उठ रही थी। उसके चारो ओर प्रासादो और आश्रमो की सुशोभित घटाएँ शोभायमान थी। फिर उसे ये सब कब देखने को मिलेंगे!

उसके हृदय मे द्वेष की बाढ आ गयी। ये सब उसके किस प्रकार हो सकते है? यह तो उसके शत्रुओ की सम्पत्ति है, जिसे उसके दासो ने कोडे खा-खाकर तैयार किया है। और फिर भी वह काला दास भेडिये के समान वध करने योग्य है। जो वह आर्य राजा होता तो वह भी शशीयसी के साथ आनन्द-विहार करता, उसे पूछने का भी कोई साहस न करता, किन्तु वह तो वध करने योग्य है।

इन सबमे केवल शशीयसी ही एक ऐसी थी, जिसे रग-द्वेष नही था। उसके मुख का स्वाद अभी भी उसके मुख मे व्याप्त था। वह तो अद्भुत थी। यदि वह स्वत· गोरा होता तो! उसने दाँत पीसे। पर वह तो काला था। भेडिये के समान वह वध्य ही था।

उसके अग-अंग मे विष व्याप गया। कोई दिन ऐसा भी आयेगा जब वह बता देगा कि वह राजा शम्बर का पुत्र है। पर कब? विश्वामित्र थोड़े महीनो के लिएँ ही हट गये तो उसकी यह दुर्दशा हुई; यदि वह न हो तो दास क्या कर सकते है? इस समय उसके साथ उसके राज्य मे आने का भी दासो मे साहस नही था, तो ये सब इकट्ठे होकर किस प्रकार आर्यों का सामना कर सकेंगे?

इस प्रकार विचार करते हुए राजा भेद ने अपने गाँव का मार्ग लिया। जब सूर्य सिर पर चढ आया तब उसने और उसके साथियो ने पेडो के तले बैठकर थकावट दूर की और घोडो को नहलाकर आराम दिया तथा फिर यात्रा प्रारम्भ कर दी।

कुछ आगे बढने पर वसिष्ठ का आश्रम मिला। उसे देखकर भेद उग्र हो उठा। उसके सब दुखो की जड ये मुनि ही थे। वे दासो के कट्टर शत्रु थे। उन्होने दण्डविधान की घोषणा कराकर उसका वध कराने के लिए तृत्सुओ को प्रोत्साहित किया था। किसी दिन इन्हे भी वह समझ लेगा।

आश्रम के पास ही तीन-चार रास्ते फटते थे। लोग आश्रम मे से निकलकर परुष्णी नदी की ओर चले जा रहे थे। नदी मे नावें देखकर उसे आश्चर्य हुआ, क्योकि नावें राजा सुदास की थी।

प्राण-सकट होने पर भी वह जिज्ञासा न रोक सका। रास्ते के पास एक छोटी-सी टेकडी पर खडे पेड के पीछे से वह ध्यान से देखने लगा कि नावो मे कौन जा रहा है।

मुनि को कभी पहले न देखे रहने पर भी उसने तुरन्त पहचान लिया। उनका तेज, मन्द गति और एकाग्र दृष्टि उन्हे पहचानने के लिए पर्याप्त थे, अन्यथा अन्य लोग क्यो उनके मान की रक्षा करते हुए चलते ? और···भेद का गला रुँध गया। उनके साथ···पौरवी रानी' 'और उनके साथ सुन्दर लावण्यमयी शशीयसी ! हाँ, वही थी। सृष्टि मे अन्य ऐसी कोई हो ही नही सकती।

साथ मे हर्यश्व और कुछ थोडे-से तृत्सु महाजन थे, थोडे तपस्वी भी थे।

शशीयसी के बालो पर पडती हुई सूर्य की किरणे उसने देखी। यही बाल न जाने कितनी बार उसकी उँगलियो मे से पानी के समान निकल भागे थे—काले, सुन्दर, लम्बे और पुष्पो से सुगन्धित···और उसका हृदय विचलित हो उठा, उसकी जीभ ने नि.शब्द उत्कण्ठा मे 'शशीयसी' शब्द का उच्चारण किया। मरुभूमि मे तडपनेवाला जिस प्रकार पानी के लिए तरसता है, उसी प्रकार उसकी नस-नस शशीयसी के लिए तरसने लगी।

वह अकेली नही थी। साथ मे मुनिश्रेष्ठ भी थे। हर्यश्व और महाजन भी साथ मे थे, यह ध्यान उसे था।

उसे तत्काल स्मरण हुआ कि आर्यों की पुनीत प्रणाली के अनुसार आश्रम मे शस्त्र नही ले जाये जा सकते; और वहाँ किसी प्रकार का अत्याचार नही किया जा सकता। पर यह तो आर्यों की प्रणाली है। उसे इससे क्या ? वह कहाँ आर्य है ? वह तो काला दास, वध करने योग्य भेड़िया था। उसके ओठ क्षुधार्त भेडिये के समान चलायमान हुए।

उसे थोडा ही चैन रहा···उसकी नसें शशीयसी को पुकार रही थी। उस समय उसके साथ सशस्त्र मनुष्य थे। उसके हृदय मे उल्लास का सागर हिलोरें मारने लगा—उसके कट्टर शत्रु वसिष्ठ के सामने, उनके आश्रम के

पास से वह विवाहित आर्या को उठा ले जाय तो ? ठीक, ठीक, यही वसिष्ठ को उसका सीधा और सच्चा उत्तर होगा।

वह शम्बर के निन्यानवे गढो का स्वामी था। पल-भर मे उसने खड्ग निकाला और अपने वीर पिता का युद्ध-घोष किया—"ई ई ई ऊ ऊ ऊ।"

वसिष्ठ आदि इस गर्जना को सुनकर चौककर पीछे घूमे।

सुवर्णमय कवचो से सुसज्जित योद्धा, काले प्रचण्ड घोडे पर हाथ मे खड्ग लेकर, टेकडी पर से उन पर चढा चला आ रहा था।

दासो की युद्ध-घोषणा सुनायी न पडी होती और घुडसवार के शरीर का श्याम-वर्ण दिखायी न पडा होता तो वे समझते कि वृत्र को मारनेवाला इन्द्र ही चला आ रहा है, पर यह तो कोई दास था।

वे जहाँ खडे थे वही खडे रहे। उनकी आँखो से चिनगारियाँ निकलने लगी। नि शस्त्र हर्यश्व और महाजन घबराहट से दूर हट गये। इस आकस्मिक भय को रोकने मे असमर्थ पौरवी रानी घबराहट से चिल्लाने लगी और बेसुध होकर भूमि पर गिर पडी।

शशीयसी जहाँ-की-तहाँ स्तब्ध खडी रह गयी। घबरायी हुई आँखो से उसने अपने राजा भेद को आते देखा।

इन्द्र के अश्व के समान घोडा उनकी ओर बढता चला आया। दृढ हाथो से रोके जाने के कारण वह बडे झटके से खडा हो गया।

हर्यश्व और दो-तीन महाजन नाव मे पडे हुए अपने धनुष-बाण लेने दौडे।

राजा भेद ने घोडे को सँभाला, अद्भुत कला से उसे घुमाया और देखते-ही-देखते पास मे खडी हुई शशीयसी की कमर मे हाथ डालकर उसे घोडे पर चढा लिया। वह चिल्लायी।

वसिष्ठ और दो महाजन घोडा रोकने के लिए आगे बढे।

घोडे ने छलाँग मारी और इस प्रकार टेकड़ी पर चढ गया मानो उसके पख लगे हो। रेती पर के चिह्नो के अतिरिक्त उसका कोई चिह्न न रहा। दूर जाते हुए अनेक घोडो के टापो की ध्वनि सुनायी दी। अनेक कण्ठो की

विजय-घोषणा भी सुनायी दी—"ई ई ई ऊ ऊ ऊ !"

किन्तु महाजनो और तपस्वियो की उधर-उधर दौडने और बोलने की वृत्ति जैसी उत्पन्न हुई थी वैसी ही दब गयी।

मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठ जहाँ-के-तहाँ खड़े रह गये। उनकी ज्वाला-भरी आँखे टेकडी की ओर गयी। ओठ-पर-ओठ दबाकर उन्होने अपना जटा-वाला सिर इस प्रकार ऊपर उठाया मानो आकाश को छू रहा हो।

जब राजा भेद की घोषणा सुनायी दी तो मुनि ने अपनी बन्द आँखे खोली, "शक्ति, हाथ का सहारा दो।"

कोई बोला नही। मुनि की मूक उग्रता से वातावरण भयपूर्ण बन गया था।

मुनि और शक्ति दोनो पौरवी रानी को उठाकर रेती पर पड़ी हुई नाव मे सुला आये और उनके साथ आयी हुई औरते उनकी सेवा-शुश्रूषा मे लग गयी।

मुनि नाव पर हाथ रखकर खडे रहे। "शक्ति!" उनके स्वर मे घण्टा-नाद की झंकार थी, "जाओ, और ऋषि विश्वामित्र से कहना कि वसिष्ठ के आश्रम मे उनकी आँखो के सामने शम्बर के पुत्र भेद ने, सशस्त्र आकर, सृञ्जय की पुत्री और सेनापति हर्यश्व की पुत्रवधू का अपहरण किया है।"

"जो आज्ञा," शक्ति बोला।

"और···ऋषि से जाकर यह भी कहना कि यदि वसिष्ठ मे तपोबल होगा तो भेद का संहार करके आर्यमात्र उस अब्रह्मण्य कार्य का प्रायश्चित करेगा।"

युवा पुरुष की-सी स्फूर्ति के साथ वृद्ध मुनि कूदकर नाव मे जा बैठे, "वत्सो! सब वसिष्ठो के आश्रम मे लौट जाओ और कह आओ कि अनार्यों के विनाश के लिए, आर्यत्व के उद्धार के निमित्त आज देवो ने मुझे आर्यों का पुरोहितपद दिया है। और मेरा प्रण है कि भेद का वध करके सप्तसिन्धु को विशुद्ध करूँगा। केवट, नाव को तृत्सुग्राम ले चलो।"

मुनिश्रेष्ठ देवो के तेज से देदीप्यमान हो गये।

दूसरा खण्ड

बटुकदेव

[1]

लोमहर्षिणी, राम और विमद तीनों घोडों पर चढकर राजा हरिश्चन्द्र के यहाँ जाने के लिए चल पडे।

लोमा बडी प्रसन्न थी। उसने एक ही फटकार मे सुदास और वसिष्ठ दोनों को छकाया था, तृत्सुग्राम का सकुचित वातावरण छोडकर बाहर चली आयी थी और राम के साथ घूमने निकली थी। राजा दिवोदास की सन्तान और भगवती लोपामुद्रा की शिष्या के नाते वह विश्वामित्र से पुरोहितपद न छोडने की प्रार्थना करने जा रही थी। इस कारण उसके उल्लास मे कर्तव्यनिष्ठा का अश भी मिश्रित था।

वह और राम दोनों बराबर-बराबर घोडों पर चढे जा रहे थे। यह भी उनके लिए बहुत सुख की बात थी। राम के अश्व-सचालन कौशल पर वह सदा से मुग्ध होती रही है। जब वह घोडे पर बैठता था, घोडा उसका अङ्ग बन जाता था। चौदह वर्ष की अवस्था मे ही वह अश्वविद्या मे निपुण हो गया था। अडियल-से-अडियल घोडा भी उसका स्वर सुनते ही ठण्डा हो जाता था। जगली घोडों को भी ठीक करना उसे आता था, घोडियों की देखभाल और टट्टुओं का पोषण भी वह जानता था।

उस समय भी वह एक ऊँचे बडे घोडे पर जमा बैठा था—स्वस्थ,

गम्भीर और भव्य। उसका मोहक मुख तेज से तप रहा था। उसकी काली-काली आँखों का तेज जहाँ बरसता वहाँ आग भड़क उठती थी।

[2]

राम के जन्म में ही उस पर जिन तीन व्यक्तियों का अधिकार था उनमें से लोमा भी एक थी। आज पहली बार वृद्ध कवि चायमान तृत्सुग्राम में पीछे रह गये थे; अम्बा—भगवती रेणुका—ऋषि जमदग्नि के साथ राजा हरिश्चन्द्र के यहाँ चली गयी थी, और आज लोमा ही अकेली उसके साथ थी।

राम के जन्म की घटना का स्मरण अम्बा और वृद्ध कवि सदा किया करते थे। तृत्सुग्राम में, भृगुओं के आश्रमों में और भृगु के शिष्य अनु और द्रुह्यु जातिवालों के निवासस्थानों में तो इस स्मरण ने दन्तकथा का रूप धारण कर लिया था।

यह सब घटना विद्या और तप की जननी सरस्वती माता के तट पर: महाअथर्वण ऋचीक द्वारा स्थापित भृगुग्राम में स्थित भृगुश्रेष्ठ ऋषि जमदग्नि के आश्रम में हुई थी। इस दिवस के समान भयङ्कर दिवस बड़े-बूढ़ों ने भी कभी नहीं देखा-सुना था।

लोमा को उस दिवस के अनुभव प्राय. स्मरण हो आया करते थे। लोमा स्वत उस दिन आश्रम में ही थी। उसकी माता जन्म के समय ही चल बसी थी, इसलिए माँ की मौसेरी बहन भगवती रेणुका ने ही उसका पालन-पोषण किया था और इससे वह भी रेणुका को अम्बा ही कहती थी।

उस दिन इन्द्र क्रुद्ध हो उठे थे। मेघ-गर्जन और बिजली की चमक से पृथ्वी काँप उठी थी। नदी में बाढ आयी थी, और कितने ही वृक्ष, पशु और मनुष्य उस बाढ में बह गये थे।

उसी समय अम्बा को प्रसव-वेदना हुई, इसलिए एक स्त्री लोमा को पकड़कर झोपड़ी के बाहर ले आयी थी। उसने बहुत चपलता की थी, यह उसे स्मरण था। सामने की झोपड़ी में जमदग्नि ने हाथ पकड़कर उसे अपने

पास बिठाया था।

"यदि तू चपलता करेगी तो मैं तुझे तृत्सुग्राम भिजवा दूंगा," उन्होने कहा था।

कही अम्बा को छोड़कर सचमुच न चला जाना पडे, इसलिए उसने आंसू रोककर रोना बन्द कर दिया था, ऐसा कुछ उसे स्मरण था।

वह ऋषि के पास बैठी रही। ऋषि भी पत्नी की चिल्लाहट से घबराये हुए थे। सामने वृद्ध कवि बैठे थे। वे वृद्ध भार्गव कुछ इधर-उधर की बातो मे बहलाकर ऋषि को आश्वासन देते थे।

लोमा को स्मरण था कि उसी समय से वृद्ध कवि ने यह माँग करनी प्रारम्भ कर दी थी। "देखो भृगुश्रेष्ठ," वे कह रहे थे, "यदि इस समय भगवती को पुत्र प्राप्त हो तो उसे आपको मेरे हाथो सौपना पडेगा। कवियो की युद्ध-विद्या का स्वामी मैं हूँ। तुमने तो कुछ सीखा नही। मैंने सब विद्या सुरक्षित रख रखी है। वह सब तुम्हारे इस पुत्र को मुझे सिखानी है।"

वृद्ध कवि इस प्रकार बोलते ही रहे। ऋषि बडे करुणार्द्र भाव से मन्त्र पढते जा रहे थे। बाहर सरस्वती के चढते हुए पूर की ध्वनि आ रही थी, ऊपर से मूसलाधार वर्षा हो रही थी, रह-रहकर बादल गरज रहे थे, बिजली चमक रही थी और पीछे की झोपडी मे से अम्बा की चिल्लाहट सुनायी दे रही थी।

लोमा को वह रात भली प्रकार स्मरण थी। सबने जागरण किया था और पीछे की झोपडी मे वृद्ध स्त्रियां जो दौड-धूप कर रही थी, वह भी सुनायी दे रही थी।

वह कितनी देर तक जागी थी, और कितनी देर तक उसने नीद के झोंके खाये थे, यह उसे स्मरण न था। रात के पिछले पहर मे उसे एक करुण चिल्लाहट सुनायी दी थी। ऋषि खडे हो गये थे, लोमा का हृदय धडकने लगा था और वह जमदग्नि से लिपट गयी थी। वृद्ध कवि भी उस समय मन्त्र बोल उठे थे।

फिर इस प्रकार दिशाएँ कांप उठी मानो फिर इन्द्र ने वृत्रासुर का

हनन किया हो और लोमा भयभीत होकर रो पडी थी। वृद्ध कवि ने उसे उठाकर गोद मे ले लिया था।

इन्द्र का वज्र गिरा, पृथ्वी काँपने लगी और भयकर गर्जन हुआ। सब चिल्ला उठे।

ऋषि ने इन्द्र का आवाहन प्रारम्भ किया और गर्जन-तर्जन इस प्रकार शान्त हो गया मानो उनका निमन्त्रण सुनकर देव प्रसन्न होकर उतर आये हो। वादल फट चले और पिछली झोपडी से एक वलिष्ठ वालक का रुदन सुनायी देने लगा।

जहाँ लोमा वैठी थी, वहाँ आकर एक वृद्धा वोली, "भार्गवश्रेष्ठ, भगवती को पुत्र हुआ है।"

"माता और पुत्र कैसे है ?" ऋषि ने पूछा।

"दोनो स्वस्थ है।"

"इतनी देर क्यो लगी ?" वृद्ध कवि ने पूछा।

"अरे, यह वात जाने दीजिए," वृद्धा ने कहा, "लडका कोई लडका है! और क्या कहूँ ? उसका मिर किनना वडा है, ओह, ओ!" वृद्धा ने जिस प्रकार पुपलाते हुए मुंह से 'ओह ओ' कहा था वह लोमा को अभी तक स्मरण था।

वृद्ध कवि ने कहा, "ऋषिवर्य अव आपको अपना वचन पालना पडेगा। यह वालक मुझे दे देना होगा।"

"हाँ, वृद्ध कवि वह तुम्हारा ही तो है," ऋषि ने कहा।

चौदह वर्ष के विराट वटुक का विशाल और सुन्दर मुख देखकर लोमा को आज वे शब्द पुन स्मरण हो आये—'इसका सिर कितना वडा है, ओह, ओ!'

प्रात काल सवको ज्ञात हुआ कि इन्द्र स्वत: ही पिछली रात को उतरे थे, क्योंकि वज्रघात से ऋचीकशृंग नाम की निकटस्थ टेकड़ी के दो टुकडे हो गये थे।

भृगु वृद्धो का ऐसा मत था कि स्वत. इन्द्र ने ही रेणुका के गर्भ से जन्म

धारण किया है।

बड़े होने पर जब राम क्रोधित होता था, तब उसकी आँखें बिजली के समान चमकती थी, उसके गहन-गम्भीर स्वर का गर्जन दूर तक सुनायी देता था, और उसकी छोटी-सी वज्रमुष्टि पर्वतभेदी शक्ति के समान पडती थी। किसी और को विश्वास हो या न हो किन्तु अम्बा और वृद्ध कवि दोनो तो उसे इन्द्र ही मानते थे।

जैसे-जैसे घोडे आगे बढते जाते थे वैसे-वैसे लोमा को ये दिन स्मरण होते चले थे।

राम जब दो महीने का था तभी से इस सम्बन्ध मे झगडा प्रारम्भ हुआ कि वह किसका है। अम्बा तो इस पुत्र के पीछे पागल हो गयी थी और सब काम काज छोडकर उसी की देखभाल मे मग्न रहती थी। अम्बा और वह, दोनो मिलकर पागल के समान राम को हँसाने का प्रयत्न करते थे, किन्तु उनके प्रयत्नो का तिरस्कार करते हुए राम लेटा रहता और आँखें निकाल-कर घूरता रहता था। वह जब कुछ चाहता तो रोता नहीं था वरन् वृषभ के समान चिल्लाता था। और जब वह अपने-आप हँसता तब सा लगता था मानो चारो ओर वसन्त रँगरेलियाँ कर रहा हो। वृद्ध कवि भी वर्षों के भार को भूलकर जो कुछ-कुछ पागलपन करते थे, वह भी लोमा को याद था। भरत, भृगु और तृत्सु की संयुक्त सेना का पति, सहस्रों रणक्षेत्रो का उद्भट वीर और शस्त्र-विद्या मे सर्वोपरि आर्यश्रेष्ठ, जिनके हुकार से सप्त-सिन्धु कम्पायमान हो उठता था, वह कवि चायमान वृद्धा के समान हो गये। वह अम्बा के पास की झोपडी मे रहने चले आये। वृद्धाओ को एकत्र करके छोटे बच्चो को पालने-पोसने की सब कला उन्होंने सीख ली और राम की देखभाल मे माथापच्ची करने लगे।

वृद्ध कवि और अम्बा कितने ही प्रसंगो पर लड पडते थे। राम का पलना हवा में रखा जाय या न रखा जाय, किस ओर से उसे धूप लगनी चाहिए, उसे दूध किस प्रकार पिलाया जाय, उसके सिर पर तेल मला जाय या नहीं, इन सब बातो पर वृद्ध कवि और अम्बा लड पडते थे, और

जमदग्नि ऋषि के सिर पर झगडे निपटाने का कुल भार आता था। वे उकताकर पूछते थे, "अरे कभी किसी ने लडका पाला भी है या आज पहले-पहल पालने चले हो ?

वृद्ध कवि का सिद्धान्त था राम को भली-भाँति सोने देना चाहिए। अम्वा कहती थी कि थोडी-थोडी देर वाद जगा-जगाकर उसे जो चाहिए वह देना चाहिए। इस गहन प्रश्न पर कितने ही दिन तक वाद-विवाद होता रहा, और वैद्यो तथा वृद्धो की सम्मति ली गयी। इन सवमे से केवल लोमा ही जानती थी कि उसका राम तो अपने मन की ही करता है। उसे यदि सोना हो तो कोई उठा नही सकता था, और उसे जागते रहना हो तो कोई सुला नही सकता था। किन्तु इन दोनो के प्रयत्नो के परिणामस्वरूप राम या तो पलना तोड डालता या उछलकर पलने से वाहर गिर पड़ता था।

फिर जव वर्षा ऋतु का अन्त हुआ और युद्ध प्रारम्भ हुए तव वृद्ध कवि युद्ध मे गये और अव राम का भार लोमा पर ही पडने लगा।

राम से उसकी पहले ही से वहुत वनती थी। एक दिन तो राम उसे देखकर अम्वा के हाथ मे से उछलकर हँसता-हँसता-उसके पास चला आया। उसके वालपन का वह दिवस कितना धन्य था !

[3]

सेनापतियो मे सर्वप्रथम वृद्ध कवि चायमान ने ही राम की शिक्षा की वे तैयारियाँ प्रारम्भ की मानो किसी वड़े युद्ध की तैयारी कर रहे हो। अवकाश प्राप्त होने पर वह अस्त्र और शस्त्र-विद्या के नये-नये पाठ पुन सीखने लगे। अपने छोटे लडके विमद को भी वह इसीलिए सिखाने लगे कि जव वह यमलोक जाने लगे तव उनकी सव विद्या विमद राम को सिखा सके। उन्होंने अच्छे-से-अच्छे घोडे इकट्ठे करके राम के लिए सुन्दर घोडो के पालन-पोषण के प्रयोगो का प्रारम्भ किया। उनके प्रवृत्तिशील स्वभाव से जो परिचित थे वे भी इस नयी प्रवृत्ति से विस्मित हुए। यदि कोई पूछता तो वृद्ध कवि एक ही उत्तर देते थे, "मेरा पुत्र वड़ा होगा तव आवश्यकता

होगी।"

जब राम दो वर्ष का हुआ तब वृद्ध कवि ने उसे घोडे पर बिठाने की विधि बहुत अच्छे ढग से सिखायी। उन्होने विमद को सुन्दर-से-सुन्दर खिलौने के धनुष-बाण बनाने की आज्ञा दी और राम को खेलने के लिए वे खिलौने दिये जाने लगे।

ऐसे अनेक शिक्षा के प्रयोगो मे वृद्ध कवि सलग्न रहे। वृद्ध कवि को अपनी अवस्था के अनुपयुक्त बालिशता के कारण ईर्ष्या भी हुई। अम्बा रेणुका यदि राम को खिलाएँ तो उन्हे अच्छा नही लगता था।

"मुझे अपने बच्चे को बिगाडना नही है। माताएँ लाड-प्यार करके बच्चो को बिगाड देती है। इसी से भृगु अब निर्वीर्य हो गये है," ऐसा वह कहने लगे।

पहले यदि लोमा राम के साथ खेलने लगती थी तो वृद्ध कवि अधीर हो जाते थे, "लडकियो की सगति मे ही छोटे लडके बिगडते है।" लोमा भगवती लोपामुद्रा के आश्रम मे पढती थी और स्वभाव से ही लडके के समान थी, इसलिए वृद्ध कवि को अच्छी लगती थी। और राम को लोमा के बिना अच्छा नही लगता था, इसलिए उस बात को भी वह वृद्ध भूलने लगे कि लोमा लडकी है।

उन दोनो को साथ-साथ खेलने देने मे कवि का दूसरा अभिप्राय था। भृगु स्त्रियाँ और विशेषत रेणुका जो मृदुता से राम की देखभाल करती थी, यह उनको तनिक भी अच्छा नही लगता था। उन्हे तो राम को वज्र के समान बनाना था। पर छोटे बच्चे को संगति भी चाहिए, लाड-प्यार भी चाहिए और देखभाल के लिए साथ मे कोई बडा मनुष्य भी चाहिए। विमद यह सब नही कर सकता था और स्वय दो वर्ष मे छ: मास लडने और यात्रा करने मे व्यतीत करते थे, इसलिए लोमा को लडके के समान रखा जाय तो राम के पालन-पोषण मे बाधा न आये और उसे स्नेह प्राप्त हो, ऐसा सकल्प करके वृद्ध कवि नये मार्गों को सोचने लगे। लोमा को किस प्रकार शिक्षित और सस्कारयुक्त करना चाहिए, इसका भी वह विचार करने लगे, भगवती

लोपामुद्रा से मिलकर सव वातें पूछ आये और राजा दिवोदास की अनुमति लेकर लोमा को भी शस्त्र-विद्या और अश्व-विद्या सिखाने लगे।

वृद्ध कवि की सिखाने की पद्धति मे अनेक वस्तुओ का समावेश हो जाता था। मल्लयुद्ध, पेड पर चढना और तैरना तो राम को वह पाँच वर्ष की अवस्था से ही सिखाने लगे। वह स्वतः विस्मृत मन्त्रो को स्मरण करके राम को रटवाने लगे और अथर्वण वृद्धश्रवा को बुलाकर अथर्ववेद के अन्य मन्त्र सीखकर उन्हे सिखाने लगे। इस प्रकार अपने वच्चे को शिक्षित करने के लिए वृद्ध कवि स्वतः विद्यार्थी वन गये।

राम अपनी अवस्था के परिमाण मे प्रचण्ड, दृढ और चालाक था। वह शारीरिक वल की सव शिक्षा खेल-खेल मे सीख लेता था। वृद्ध कवि ऐसी स्थिति मे राम को रखते थे कि वडे लडके डर जायँ, पर उसे भय तो लगता ही नही था। वेत के समान राम को जितना मोडा जाता था उससे दुगुना वह उछलकर कूदता था।

हाथ मे से अम्वा के वाल-इन्द्र को यदि वृद्ध कवि ले जाते तो वह अम्वा को अच्छा नही लगता था। पहले तो उन्होने इस वृद्ध को समझाने का प्रयास किया, पर वह निष्फल हुआ। फिर उन्होने लोमा को हाथ मे करने का प्रयास किया, पर वह भी निष्फल हुआ। अन्त मे उन्होने अपना मन मोड़ लिया। वह जमदग्नि की परिचर्या मे संलग्न रहने लगी। अन्य तीन लडकों और दो लडकियो की देखरेख मे भी समय जाता था और भृगुश्रेष्ठ की पत्नी के रूप मे भी उनके सिर पर वडा वोझ था। इस कारण वह राम पर उचित ध्यान भी नही दे सकती थी।

वृद्ध कवि की एकाग्र शिक्षक-वृत्ति पर सव हँसने लगे। पचहत्तर वर्ष के वृद्ध छ वर्ष के वालक के साथ घूमते, घुडसवारी करते और तैरते। वहुत वार दोनो साथ ही दौडते थे। वहुत वार छलांग भरते हुए वृद्ध कवि चुपचाप चलते और साथ मे छोटे सिह के समान राम भी उछलता हुआ दौड़ता था।

इस वृद्ध को इस प्रकार वालक को शिक्षित करते देखकर सव सिर

धुनने लगे। जान पड़ता था कि बूढ़े की मति बिगड़ने लगी है। किन्तु यदि राम न हो और कोई इस मतिमन्दता की कल्पना करके उनके साथ दूसरी रीति से व्यवहार करता तो उसे एक भयङ्कर दृष्टि से वह सीधा कर सकते थे।

एक समय तृत्सुओं के सेनापति कोई राजकीय सन्देशा लेकर गुरु वृद्ध कवि के पास आये। उनकी झोपड़ी का द्वार बन्द था, किन्तु भीतर दो व्यक्ति चिल्लाते हुए सुनायी दिये। वृद्ध कवि सिंह का अनुकरण करके गर्जना कर रहे थे, और राम भी उनके अनुसार गरज रहा था। हर्यश्व ने द्वार खोला। वृद्ध कवि सिंह बने थे और राम उनके साथ द्वन्द्व-युद्ध कर रहा था। दोनों एक-दूसरे से लिपटे थे। वृद्ध कवि आगे बढ़ते थे और राम उनके बाल पकड़कर खींच रहा था। सप्तसिन्धु के अग्रगण्य महारथी का यह खेल देखकर हर्यश्व हँसना ही चाहता था, किन्तु गुरु के भय से वह हँस न सका। वह झोपड़ी के बाहर खड़ा रहा और जब युद्ध समाप्त हुआ तब अन्दर गया। वृद्ध कवि बाल ठीक कर रहे थे। उनके मुख और सिर पर नख के चिह्न थे और उनके पास खड़ा हुआ राम सिंह के काटे हुए पर हाथ फेर रहा था।

हर्यश्व इस खेल का कुछ उपहास करना ही चाहता था पर शब्द उसके गले में ही रह गये। जिस गुरु का भय उसे बालपन में था, वह वैसे ही बैठे थे—दृढ़ और उग्र, अपने काम में ध्यान देते हुए। उनकी और राम की सृष्टि में प्रवेश करने का किसी को अधिकार नहीं था।

किन्तु जब राम आठ वर्ष का हुआ तब जमदग्नि को बीच में पड़ना पड़ा। विद्या और तप में श्रेष्ठ भृगु ने अपने छोटे पुत्र को विश्वामित्र ऋषि के पास शिक्षा के निमित्त रखने की योजना की। यह सुनकर वृद्ध कवि इस प्रकार बिगड़ उठे मानो पहले कभी न लड़े हों। मेरा बच्चा तो [illegible] के साथ किस प्रकार पढ़ने दिया जा सकता है? और मेरे [illegible] सप्तसिन्धु में दूसरा शस्त्र-विद्या का शिक्षक मिलेगा [illegible] और फिर दूसरे आश्रमों की अपेक्षा विद्या और तप में जमदग्नि का [illegible] और [illegible] की विद्या की अपेक्षा

महाअथर्वण ऋचीक की जो अथर्वाङ्गिरस-विद्या वृद्धश्रवा इस आश्रम मे सिखाते थे, उसकी वरावरी कौन कर सकता है ? जिस वारीकी से उन्होने शिक्षाक्रम तैयार किया था, वैसा दूसरा कौन तैयार कर सकता है ? और विश्वामित्र ऋपि भले ही हो, वडे भी हो, देव के लाडले भी हो, पर उनके सौष्ठव से वज्र जैसे कठोर भृगु विगड़े विना कैसे रह सकते है ? और उनके आश्रम मे विद्या कौन-सी है ? और यदि हो भी तो व्यर्थ, वाहरी दिखावट-वाली और वनावटी, वह स्वत. ऋचीक के पास जो विद्या सीखे थे, वैसी पुरातन और सवल विद्या तो कही थी ही नही।

वृद्ध कवि ने ये सव कारण वताये तो भी जमदग्नि का मन न माना। उन्होने तीन वडे लडको को विभिन्न ऋषियो के पास शिक्षा प्राप्त करवायी थी। तीनो ही अच्छे योद्धा थे। वडा लडका आज इनके आश्रम की कीर्ति वढाने लगा था। इस अन्तिम पुत्र को ऋषि-पुत्रो के योग्य शिक्षा न मिले तो कितनी वुरी वात हो ! वृद्ध कवि ने महाअथर्वण ऋचीक का उदाहरण दिया। वे पिता के अतिरिक्त और किसके यहाँ पढे थे ? जमदग्नि हँसे। कहाँ ऋचीक द्वारा प्राप्त की हुई विद्या, और कहाँ अगस्त्य, वसिष्ठ, विश्वामित्र और उनसे मिलकर गत पचास वर्षो मे वृद्धिगत की हुई विद्या !

जमदग्नि और वृद्ध कवि के वीच कितने ही दिन तक झगडा चला, पर कवि टस-से-मस न हुए। "राम मेरा है। जमदग्नि ने उसके सव अधिकार मुझे दे दिये है। यदि राम को किसी के यहाँ पढने रखोगे तो मै सव छोड-छाडकर वही जाकर रहूँगा," ऐसे-ऐसे तर्क वह करने लगे।

ज्यो-ज्यो राम की अवस्था वढती गयी त्यो-त्यो यह झगडा वडा उग्र स्वरूप धारण करता गया। प्राचीन ऋपियो ने आर्यो की जो सनातन शिक्षा-पद्धति निश्चित की थी उसमे कितना परिवर्तन किस प्रकार हो, इस विपय मे जमदग्नि को शका हुई। विश्वामित्र जैसे ऋपि द्वारा शिक्षा का लाभ यदि राम को न मिले तो उस समय प्रचलित परिस्थिति मे वह कुल का नाम किस प्रकार उज्ज्वल रख सकता है, ऐसी भी चिन्ता उन्हे हुई। और इतने अच्छे लडके को ऐसी पद्धति का लाभ न मिले तो क्या परिणाम

होगा, उसका भी विचार उन्होंने किया। उन्होंने ऋषि विश्वामित्र से बातें की, उन्होंने महर्षि अगस्त्य से बातें की, उन्होंने भगवती लोपामुद्रा से पूछा। शिक्षा-पद्धति के विशारद वृद्ध तपस्वियों से भी इस विषय में पूछा गया।

बड़े परिश्रम से अन्त में यही निश्चय हुआ कि सनातन आर्य प्रणाली के अनुसार गुरु के आश्रम में रहकर ही विद्या सीखी जा सकती है, और आपत्ति-धर्म के अतिरिक्त पिता के आश्रम में रहकर विद्या पढ़ना आर्यों के लिए अनुपयुक्त कहा जायेगा। अव्यवस्थित रीति से एक योद्धा जो शिक्षा दे वह तो निम्न श्रेणी की ही रहेगी और उसे भृगु-बाल स्वीकार नहीं कर सकता। परिणामस्वरूप, राम को विश्वामित्र के पास पढ़ने के लिए रखने का निर्णय हुआ।

अन्त में विश्वामित्र ने वृद्ध कवि को समझाने का उत्तरदायित्व अपने सिर पर ले लिया, और एक दिन सन्ध्या के समय बहुत ही धैर्य और मृदुता के साथ उन्होंने राम के विषय में किया हुआ निर्णय सुनाया। वृद्ध ने निर्णय सुना। वह क्रोधित हुए और बड़बड़ाने लगे, पर ऋषि विश्वामित्र ने समझा-कर कहा कि विद्या का विषय गहन होने से अधिकारी के सिवाय दूसरे को उसे समझना बहुत कठिन है। कवि वहां से उठकर चले गये।

उस रात को वृद्ध कवि अपनी झोंपड़ी से चल दिये। दूसरे दिन सवेरे उनका कोई पता नहीं चला। सब खोज करने लगे। तीन सेनाओं के सेना-पति, शौर्य और शस्त्र-विद्या में अप्रतिम कवि चायमान घर छोड़कर चले गये, इससे सब ओर हाहाकार मच गया। जमदग्नि और विश्वामित्र भी चिन्ता में पड़ गये और कवि की खोज करने के लिए चारों ओर दूत भेजे जाने लगे।

[illegible] समाचार मिला कि वृद्ध कवि अपने शिष्य तृत्सु सेनापति [illegible] और वहां से घोड़ा लेकर सरस्वती के तट पर महा-[illegible] भृगुओं के आश्रम की ओर जाने के लिए चल चुके [illegible]।

[illegible]

वान हो गयी। राजा दिवोदास को चिन्ता हुई वृद्ध कवि इस प्रकार रूठकर चले जायँ तो समस्त सप्तसिन्धु में अपकीर्ति हो। सीनों सेनाओं में जितने ही शौर्यमूर्ति योद्धा उनके शिष्य थे। उन सबने हल्ला मचा दिया। उन सबको ऐसा प्रतीत हुआ कि सेनापति का अपमान सेनाओं का अपमान है। एक छोटे लड़के को पकड़ने की बात से पूज्य शौर्यमूर्ति वृद्ध कवि का अपमान किया जाय! यह कैसे सहन किया जा सकता है!

अपमान से सिद्धान्त की बात आयी। वृद्ध कवि जैसे योद्धा स्वतः सिखायें इससे बढ़कर और कौन-सी शिक्षा हो सकती है? पिता ही प्रथम गुरु है। और वृद्ध कवि स्वतः भार्गव थे, शस्त्र-विद्या में गुरुओं के गुरु थे। फिर क्या चाहिए था? चारों ओर कुछ-कुछ बातें उड़ने लगीं, और इन बातों का प्रभाव राष्ट्र पर क्या होगा इसका भी विचार राजा दिवोदास और महर्षि अगस्त्य चिन्तापूर्वक करने लगे।

बात का बतंगड़ हुआ जानकर वह सोचा गया कि किसी भी रीति से वृद्ध कवि को वापस बुलवाना ही चाहिए। सबने सेनापति हर्यश्व और कवि के प्रिय पुत्र विन्द को दूसरे दिन भृगुग्राम भेजा।

[4]

इस बीच इस सम्पूर्ण झगड़े की जड़ राम निश्चिन्त और मस्त होकर घूमता-फिरता था। विन्द के साथ वह नदी में तैरने जाता, घोड़ों की अयाल पकड़कर उन्हें दौड़ाता और पन्द्रह वर्ष के लड़कों के व्यर्थ पड़े हुए धनुषों का उपयोग करता था। तेजपूर्ण गम्भीर नयनों से वह सबको वश में करता, और जो उसके मन में आये वही करता था। वह बोलता कम था। जो चाहता वह ले लेता था—आवश्यकता पड़ने पर चिल्लाकर या बलपूर्वक। जब विद्या और तप के अभ्यास में उसे पकड़वाने के प्रयास होते तब मदोन्मत्त हाथी के समान वह जहाँ चाहे वहाँ घूमा करता था। लोमा को साथ लेकर वह खेलता था और रात में रेणुका (अम्बा) के पास जाकर सो जाता था।

जब वृद्ध कवि चले गये तब चारों ओर मची हुई गड़बड़ का उसे ध्यान आया। उसने तुरन्त जाकर विमद से पूछा, "वृद्धा कहाँ गये ?" राम वृद्ध कवि को 'वृद्धा' ही कहता था।

"कौन जाने ?"

राम की आँखों में ज्वाला जग उठी, "मुझे वृद्धा के पास जाना है।"

"अरे, वे अभी आये आते हैं।"

"मुझे उनके पास जाना है," राम ने निश्चयात्मक स्वर में कहा। विमद ने बात उड़ा दी।

तेजपूर्ण आँखें गम्भीर हो गयीं। वह रेणुका के पास गया—"अम्बा, मुझे वृद्धा के पास जाना है," उसने कहा।

रेणुका ने प्रेम से उसे हृदय से लगा लिया, "भाई, वह कहाँ गये हैं, उनका अभी पूरा-पूरा ठिकाना नहीं है।"

राम की आँखें अधिक गम्भीर हो गयीं। उसे कुछ-कुछ अस्पष्ट-सा भान था कि किसी प्रकार उसके पास से उसके 'वृद्धा' को सब ले लेना चाहते थे। 'ठिकाना नहीं,' वह बड़बड़ाया और स्वस्थ वनराज के समान दूसरे दिन प्रातः लोपामुद्रा के आश्रम में जाकर उसने लोपा से पूछा, "वृद्धा कहाँ गये हैं ?"

लोपा बहुत-कुछ जानती थी। उसने सच-झूठ बनाकर बहुत-सी बातें कहीं। ऋषि जमदग्नि ने निश्चय किया था कि राम को वृद्ध के पास पढ़ने नहीं देना चाहिए, उसे विश्वामित्र को सौंप दिया जाय। इससे वृद्धा रुष्ट हो गये थे। सब लोग यही बात करते थे। वृद्ध भृगुग्राम चले गये थे। अब वह न आयेंगे और राम को ऋषि विश्वामित्र के आश्रम में ही रहना पड़ेगा।

"मुझे वृद्धा के पास जाना है," राम ने क्रोध से कहा।

"कौन जायेगा ? तुम पागल हुए हो ? वहाँ पहुँचने में कितने ही दिन लग जाते हैं। मार्ग में जंगल पड़ते हैं। तुम तो ऋषि के लड़के हो, तुम्हें पढ़ना चाहिए। ऋषि विश्वामित्र के समान कोई बड़ा गुरु नहीं है।

तुम्हारे जैसे सैकड़ों लड़के उनके आश्रम में पढ़ रहे हैं।" लोमा अपने ढंग से बातें करने लगी।

राम की भौंहें चढ़ गयीं। उसकी आँखें विकराल हो गयीं। उसने पैर पटका और जोर से चिल्लाकर बोला, "मुझे वृद्धा के पास जाना है।"

और लोमा की ओर देखे बिना ही वह चल दिया।

इस बालक के मस्तिष्क में भिन्न-भिन्न चित्र उपस्थित होने लगे—वह भृगुग्राम, जहाँ वह प्रतिवर्ष जाता था; माता की भी माता, पानी से छल-छल करती हुई सरस्वती वहाँ थी; आश्रम के वृक्ष और चकित-नयन हरिण और इन सबको लुभानेवाले उसके वृद्धा थे।

राम के सुन्दर और गम्भीर मुख पर उग्रता थी। आँखों में प्रखर तेज था। वह धीरे-धीरे घुड़साल में गया और अपने सुपर्ण को उसने दाना दिया। वहाँ से वह रेणुका की झोपड़ी में गया और अपने लिए बरतन में रखा भोजन ले आया और एक कपड़े में बाँध लिया।

वहाँ से वह वृद्ध कवि की झोपड़ी में गया। जब उसकी दृष्टि वृद्धा की सूनी बैठक पर पड़ी तब उसका मुख उदास हो गया। उसने अपने बाल नोचे और उसकी आँखों में आवेश बढ़ आया। निकट ही उसके शस्त्र रखे थे। उनमें से उसने एक खड्ग, एक धनुष और बाणों के दो निषंग लिये और द्वार के आगे उन्हें इकट्ठा किया।

तब वह विमद से मिलने गया, पर वह न मिला। उसकी स्त्री ने कहा कि जमदग्नि की आज्ञानुसार हर्यश्व के साथ वह भृगुग्राम चला गया है। यह सुनकर भी वह एक शब्द तक न बोला।

सन्ध्या हो चुकने पर वह पुनः घुड़साल में गया। सुपर्ण को तैयार कर साथ लिया और उसे आश्रम के बाहर एक पेड़ से ला बाँधा।

भोजन के पश्चात् उसे नींद आने लगी और रेणुका ने सदैव की भाँति उसे सो जाने के लिए कहा। उसकी आँखों में नींद भर गयी थी।

प्रतिदिन नींद कैसे आती है इस सम्बन्ध में राम को कुछ ज्ञान था। इन्द्र ने जिस अन्धकाररूपी वृत्र को हराया था उसका निद्रासुर नाम का

एक पुत्र था। रात होते ही उसे पकड़ने के लिए वह दुष्ट आता था। इन दोनों को प्रतिदिन लड़ना पड़ता था, पर जब राम उसे मारकर हटाता था, तब पुनः प्रातःकाल होता था। आज उसने निद्रासुर को चले जाने के लिए बहुत समझाया, पर उसने एक न मानी। राम ओठ पीसकर उठा। आज उसे इस अन्धकार के स्वामी को मारकर भगाना ही था। उसे लगा कि वह दुष्ट असुर उसके बायें हाथ की उँगली पर बैठता है।

वह उठकर बाहर गया और एक काँटे से बायें हाथ की उँगली पर बैठे हुए असुर पर घाव किया। विकराल आँखों से वह उँगली की ओर देखता रहा, और उसमें से जब असुर का रक्त बह निकला तभी उसे शान्ति हुई। वह झोपड़ी में लौट आया। असुर भाग गया। राम की आँखों से नींद उड़ गयी, और फिर जब असुर आकर उसकी आँख पर बैठा तो तुरन्त उसने बायें हाथ की वह उँगली दबाकर असुर का रक्त निचोड़कर उसे हराया।

रात होने पर उसके सिर पर वात्सल्यपूर्ण हाथ फेरकर रेणुका जमदग्नि की झोंपड़ी में चली गयी। राम के साथ जो स्त्री सोती थी वह सोने लगी तब तक उँगली दबाकर वह निद्रासुर के साथ लड़ा। फिर वह उठा और कपड़े में बँधा हुआ पाथेय लिया तथा झोपड़ी से बाहर निकल आया।

उसके पैर की आहट सुनकर उसका सुपर्ण हिनहिनाने लगा। तुरन्त सुपर्ण के पास जाकर उसने उसे खोला और उस पर चढ़ गया।

"सुपर्ण, चलो भृगुग्राम। हमारे वृद्धा वहाँ हैं, उनके पास चलना है," उसने आज्ञा दी।

राम जानता था कि मार्ग में बहुत-से अन्धकारपूर्ण असुर मिलेंगे। पर उसे ज्ञात था कि उसके पूर्वज कवि उशनस शुक्राचार्य सब असुरों को वश में करके उनका पौरोहित्य करते थे, इसलिए जब वह बड़ा होगा तब वह भी उनका पुरोहित बनेगा। अभी से वह पुरोहित तो था ही, क्योंकि जब कोई उसे पहचानता नहीं था तब वह सबको भली-भाँति पहचानता था। जब दुर्दान्त भी असुरों के साथ युद्ध करते-करते अन्धकार में लीन हो जाते थे तब राक्षस अपनी माया से किसी को अपना रूप देखने नहीं देते थे।

कितने ही झोपडियो के पीछे छिपते, कितने ही मार्गो पर छिपते थे। किन्तु राम तो उन्हे रात मे अच्छी तरह देख सकता था। असुरो का वह स्वत: पुरोहित था, इसलिए वे किसलिए उससे अपना रूप छिपाते ?

चाहे जैसी अँधेरी रात हो, उसे सब दिखायी देता था, इसलिए इन सब असुरो से उसका प्रेम था। इस समय वह जानता था कि वे सब उसके लिए मार्ग बना रहे थे।

फिर वरुणदेव भी अपनी सहस्रो आँखो से उसे देख रहे थे। उस देव के साथ उसकी बहुत अच्छी पहचान थी। कोई-कोई तो कहते थे कि वह स्वत: वरुण के समान सर्वदर्शी था, पर इस बात मे उसका विश्वास न था। वरुण की तो सहस्र आँखे थी, और उसकी तो केवल दो ही थी।

घुँघरूवाला सुपर्ण आगे बढा।

बहुत रात बीतने पर राम की धाय ने उठकर सदैव की भाँति राम पर हाथ फेरने के लिए अपना हाथ बढाया, पर राम की शय्या सूनी थी। उसने थोडी देर तक प्रतीक्षा की। आज इस समय वह क्यो उठा होगा ? धीरे-से उसे पुकारा, पर कुछ उत्तर न मिला। वह स्वत खूब सोनेवाली थी, इस-लिए उसे नीद आ गयी। फिर झट से जागकर हाथ बढाया; फिर भी राम बिस्तर मे नही था। वह घबराकर उठी—"राम! राम!" कोई उत्तर न मिला। तब वह घबराकर बाहर आयी। "राम! राम!" वह चिल्लायी। राम का कोई पता न था।

वह जमदग्नि की झोपडी के पास जाकर चिल्लायी—"अम्बा! अम्बा! राम न जाने कहाँ चला गया।" चारो ओर की झोपडियो के लोग जाग गये। रेणुका घबरायी हुई बाहर आयी और धाय की बात सुनी। उसके मातृ-हृदय मे तुरन्त ही भय का संचार हुआ और वह भूमि पर गिर पडी। विवाह के दिवस से उसने अपने पतिदेव को देव से भी अधिक माना था। आज उनकी ओर वह क्रोधपूर्ण अश्रु टपकाती आँखो से देखती रही।

"ऐ···मेरे···राम···" आक्रन्दपूर्ण उसका स्वर सबने सुना, "तुम मुझे छोड़कर कहाँ चले गये ? मैं जानती ही थी कि ये सब हाथ धोकर तुम्हारे

पीछे पड़े है। ये तुम्हे सुख से शान्तिपूर्वक नही रहने देगे।"

ऋषि जमदग्नि इस विलाप का कारण नही समझ पाये—"इस प्रकार क्यो रोती हो? वह इधर-उधर गया होगा, अभी आ जायेगा।"

इन शब्दो से रेणुका को तनिक भी आश्वासन न मिला। माता की दृष्टि से ही देखी जानेवाली कितनी ही सूक्ष्म बातें उसे स्मरण हो आयी। जब राम को दूर करने की बातें होती थी, तब उसके बालमुख पर प्रकट होनेवाले फीकेपन और उग्रता का उसे स्मरण था। वृद्ध कवि का जाना सुनकर राम की आँखो में उत्पन्न होनेवाले तेज की स्मृति हो आयी। उन बड़ी-बड़ी काली आँखो के तेज की भाषा वही अकेली जानती थी। उसमे एक ही अर्थ उसने पढ़ा था—'मैं विश्वामित्र के आश्रम मे नही जाऊँगा।'

अम्बा की आँखो से आँसू बहने लगे—"मेरे बालइन्द्र! तुम मेरे पास क्यो नही रहे? तुम्हे तो सब मेरे पास से छुडा लेना चाहते थे। मेरे लाडले, मेरे तीन-तीन पुत्र मेरे पास से दूर हुए, यह तो मैंने ज्यो-त्यो सहा, पर तुम मुझ रक के रत्न, तुम भी इस प्रकार चले गये?" उसके स्वर मे हृदय को कम्पित करनेवाली करुणा भरी थी।

"तुम क्यो घबराती हो? मैं अभी उसकी खोज करता हूँ।"

"वह नही मिलेगा, मैं जानती हूँ। अपने तीन-तीन पुत्र मैंने आपको सौंपे। और यह एक मेरा श्वास और प्राण था वह भी आपने ले लिया।" अम्बा फूट-फूटकर रोने लगी, "राम···मेरे राम, यह भाग्यहीन माता तुम्हे अपने पास न रख सकी, इससे तुम उसे छोडकर चले गये।"

ऋषि की किंकर्तव्यविमूढता का पार न था। यह जानकर उन्हे विस्मय हुआ कि सप्तसिन्धु मे श्रेष्ठ ऋषिपुत्र के उपयुक्त विद्या राम को सिखाने का उन्होने जो संकल्प किया था, वह रेणुका अपराध समझती है। सुशील-से-सुशील साध्वी भी विद्या का आदर नही कर सकती, ऐसा जानकर उनका विद्याप्रिय हृदय काँप गया।

रेणका का मन तो फट ही गया था। पतिसेवा-परायणा स्त्री ने ससुराल आकर मन के सब भाव ऋषि के चरणो मे अर्पित किये थे, पर इस एक

छोटे लडके को उसने अपना सर्वस्व माना था। उसका प्रेम उसके हृदय मे मेघ-धनुष की सरसता का प्रसार करता था। उसके वियोग से वर्षों तक सेवित पति-भक्ति के बन्धन भी शिथिल हो गये।

जमदग्नि जब राम की खोज मे जा रहे थे उस समय रेणुका के विलाप ने उन्हे व्यथित कर दिया।

"मेरे राम ! मुझे छोडकर तुम क्यो चले गये ?" वियोगदग्ध माता के हृदय मे से धधकते अश्रु बहते ही रहे।

[5]

सरस्वती के तट पर भृगुओं के आश्रम मे क्रुद्ध व्याघ्र के समान वृद्ध कवि चायमान इधर-से उधर और उधर-से-इधर अकेले घूम रहे थे।

यह महाबाहु चायमान पचास वर्ष से भृगुओ की शक्ति के स्तम्भ माने जाते थे। उन्हे इस प्रकार क्रोधित और अकेले टहलते देखकर आश्रम के भृगुओ के हृदय मे कोई अकल्प्य और विपरीत घटना का भय छा गया।

महाअथर्वण ऋचीक जिस समय समुद्र के उस पार से भृगुओ को सप्त-सिन्धु मे ले आये थे उसी सत्वशाली और प्राचीन समय के वह थे। इस समय की वीरता और विद्या उन्हे व्यर्थ जान पडती थी। अगस्त्य, लोपा-मुद्रा, वसिष्ठ, विश्वामित्र और जमदग्नि ने वर्षों तक जो सस्कार और विद्या प्राप्त की थी, उन्हे वह अधोगति मानते थे।

आर्यो द्वारा प्राप्त विजय और समृद्धि से जो आनन्द और उल्लास बढा था, उनके प्रति इनका तिरस्कार समस्त सप्तसिन्धु मे ज्ञात था।

उन्हे भृगुओं पर बहुत गर्व था। भृगुओ की अथर्वण मन्त्र-विद्या उन्हे पसन्द थी। उस विद्या से घाव भर जाते थे। वसिष्ठ, विश्वामित्र और जमदग्नि की विद्या को वह समझते भी न थे, और उन्हे वह अच्छी भी नही लगती थी। इस महाअथर्वण के शिष्य की वृद्धावस्था की एक ही इच्छा थी कि भृगुओं की मन्त्र-विद्या और शस्त्र-विद्या की पैतृक सम्पत्ति वह किसी योग्य भृगु को दे।

उनकी सम्मति मे जमदग्नि भृगुश्रेष्ठ के योग्य न निकले। यह उनके हृदय मे जमा हुआ अकथित अभिप्राय था। अपने पुत्रो को उन्होने अच्छी तरह शिक्षित किया था, किन्तु फिर भी उन्हे शान्ति नही मिली थी। विमद बुद्धिशाली था, किन्तु शस्त्र-विद्या के अतिरिक्त उसे और कुछ अच्छा नही लगता था। जमदग्नि के तीनो पुत्र मन्त्र-विद्या और कर्मकाण्ड मे कुशल थे, पर इन सबमे महाअथर्वण होने योग्य एक भी नही था।

निराशा उनके हृदय मे घर करने लगी। पर बिजली की चमक, बादल की गरज और वज्राघात के साथ राम का जन्म हुआ, तब ऐसी श्रद्धा उनके हृदय मे हुई कि उनकी आशा सफल होगी।

अठहत्तर वर्ष की सब अभिलाषाएँ उन्होने राम के ऊपर केन्द्रित की थी। इस विराट् और तेजस्वी बालक पर उन्होने अपना प्रेम ही केन्द्रस्थ किया हो इतना ही नही, वरन् वह उनका पुत्र और परमेश्वर दोनो एक साथ ही बन गया था।

जिस वृद्ध को देखकर आर्यवीर काँपते थे, वह वृद्ध इस बालक को देखकर वृद्धा दादी के समान उसके पीछे पागल बन जाते थे।

वह सेनापतियो मे श्रेष्ठ, बालक राम के साथ घूमने मे ही आनन्द अनुभव करने लगे। घूमते-फिरते वृद्ध कवि इस बालक को उशनस, च्यवन और महाअथर्वण के जैसे अपने पराक्रम सुनाते थे। और जब कोई पराक्रम सुनकर राम सोत्साह पूछता, "ऐं, क्या सचमुच वृद्धा?" तब वृद्ध कवि बालक के कन्धे पर सप्रेम हाथ रखकर कहते थे, "अरे हाँ, सचमुच पुत्र।" और उस क्षण सप्तसिन्धु के इस अतुल योद्धा को अपना जीवन सार्थक जान पडने लगता था।

जब राम को विश्वामित्र के आश्रम मे पढने के लिए भेजना निश्चित हुआ तव उनके क्रोध का पार न रहा। जिस आशा के सफल होने की परिस्थिति देवो ने निर्मित की थी उसका उनके कुलपति छेदन कर रहे थे।

अठहत्तर वर्ष के अनुभवपूर्ण मस्तिष्क मे भिन्न-भिन्न विचार आये, पर भृगुकुल के स्वामी जमदग्नि की आज्ञा का उल्लघन करके कुल-मर्यादा

तोड़ने की इच्छा पर उन्होने सयम किया और वे चलते बने।

इस समय वह पागल के समान सरस्वती माता के तीर पर एक पेड के नीचे बैठे थे। जब से आये तभी से यही बैठे-बैठे पानी की ओर देख रहे थे। बहुत बार उसकी तरगो मे उन्हे राम का मुख दिखायी देता था। किसी समय गगन मे तीन पग चलते हुए देव विष्णु के दर्शन करने पर उन्हे सिंह के समान चलता हुआ उनका पुत्र, उनका बालविष्णु दिखायी देता था। और जब वायु चलती थी तब उनके कान मे सुकुमार किन्तु गम्भीर स्वर लेकर मरुत आता था, 'वृद्धा, वृद्धा, !' इस समय उनके कान मे उसी स्वर की झकार आती थी।

दो घोड़ों के टापो की ध्वनि दूर से सुनायी दी और वृद्ध कवि का ध्यान टूटा।

"कौन है ?" आहट निकट आने पर उन्होने पूछा।

"पिताजी, सेनापति हर्यश्व और मैं हूँ," विमद का शब्द सुनायी दिया। दोनो ने आकर वृद्ध कवि के पैर छुए।

"बैठो," उन्होने आज्ञा दी। उनके हृदय मे आशा का सञ्चार हुआ।

"गुरुदेव," हर्यश्व ने हाथ जोड़कर कहा, "महर्षि अगस्त्य और राजा दिवोदास ने हमे भेजा है।"

"किसलिए ?" तटस्थ वृत्ति से वृद्ध ने पूछा। उनके मुख पर अधीरता थी और क्रोध था।

"आप इस प्रकार चले आये, क्या यह आपको शोभा देता है ? इससे समस्त सप्तसिन्धु मे सबकी अपकीर्ति होगी।"

"तुम्हारी कीर्ति और अपकीर्ति से मेरा क्या सम्बन्ध है ? आज अठहत्तर वर्ष तो मैंने तुम्हारी कीर्ति बढाने मे विताये हैं। अब मेरा रक्त पानी-भर शेष रहा है।"

वृद्ध कवि को ऐसे आवेश के समय समझना बहुत कठिन था, और हर्यश्व को बालपन से इसका अनुभव था। इसलिए इस समय बात वही बन्द करने का उसने प्रयत्न किया। पर वृद्ध कवि कब माननेवाले थे।

"कह डालो, जो कुछ कहने आये हो," उन्होंने आज्ञा दी।

"आप उग्र न हो," हर्यश्व ने मृदुता से कहा, "राम के लिए..."

"राम का क्या ?"

"महर्षि अगस्त्य ने ऐसा मार्ग निकाला है कि जब राम विश्वामित्र के आश्रम मे पढने के लिए जायँ तब आप वही रहे।"

वृद्ध कवि की आँखें लाल हो गयी, "विश्वामित्र के आश्रम मे रहकर राम को भृगुश्रेष्ठ कैसे बनाया जा सकता है ?" क्या उन्हे ये सब मूर्ख मानते हैं ? ये आजकल के लोग उन्हे छोटा लड़का मानकर क्या ऐसा खिलौना देकर हँसाने का प्रयत्न करते है ?

"और यह अगस्त्य कौन है ? वृद्ध कवि और उसका राम किस प्रकार रहे, यह निश्चय करनेवाला वह कौन है ?" वृद्ध ने चिल्लाकर पूछा, और फिर दीर्घ श्वास छोडा। भृगुओ की बात मे दूसरे ऋषि जब टाँग अडाते तब उनका खून खौल उठता था। पर उनका व्यग्र हृदय इस समय अधिक बडबड करने मे अशक्त था।

वह कितनी ही देर तक आँखें फाडकर भूमि की ओर देखते रहे और फिर अश्रुपूर्ण स्वर मे उन्होंने कहा, "हर्यश्व, जाकर महर्षि अगस्त्य को मेरी ओर से कहना कि मैं अब वृद्ध हो गया हूँ। नयी बातें मैं समझता नही और पुरानी बाते मैं भूलता नही। मैने अपने पुत्र तो भृगुश्रेष्ठ को सौंप दिये और राम तो उनका अपना ही पुत्र है। उन्हे जो अच्छा लगे सो करें।"

"पर आर्य क्या कहेगे ?"

"जो कहना हो सो कहे। महाअथर्वण की विद्या भृगुओ मे सुरक्षित रख सकने की शक्ति भी देवो ने मुझे नही दी है तो सेनापति-पद से मेरे चिपटे रहने का क्या अर्थ ?" बोलते-बोलते उनकी वाणी रुक गयी। वायु की सनसनाहट मे उन्हे राम का स्वर 'वृद्धा' कहकर पुकारता हुआ सुनायी दिया। एक सिसकी लेकर अश्रुपूर्ण आँखों से सप्तसिन्धु के यह अप्रतिरथ वीर वहाँ से उठकर चले गये।

अपने गुरु की यह दशा देखकर हर्यश्व की आँखो मे आँसू आ गये।

विमद तो रोता ही रह गया।

दूसरे दिन प्रात.काल दोनों ने वृद्ध कवि को मनाने के बहुत प्रयत्न किये, पर वह टस-से-मस नहीं हुए—"मैंने बहुत से युद्ध लड़े है, बहुत-कुछ किया, अब सरस्वती के तीर पर रहकर देव और पितरो की आराधना करने का मेरा समय आया है," उन्होने उत्तर दिया।

गत चार-पाँच दिनो मे वृद्ध कवि सचमुच वृद्ध हो गये थे। उनकी आँखें निस्तेज हो गयी थी और कडी पीठ शिथिल हो गयी थी।

वृक्ष के नीचे बैठे हुए वे जब इस प्रकार बात कर रहे थे तब नदी के उत्तर तीर पर लगभग पचास घुड़सवार वेग से आगे बढते हुए उन्होने देखे। हर्यश्व और विमद पता लगाने के लिए उठे।

चुपचाप बैठे वृद्ध के कान मे पुन: ध्वनि सुनायी दी—'वृद्धा, वृद्धा, मै आया हूँ।' अधीर आँखो से वह नदी के उस पार देखते रहे।

घोड़ो को उस तीर पर छोड़कर घुड़सवारो के नायको को नाव मे बैठ-कर इस पार आते उन्होने देखा। उन्होने सोचा कि उनका राम आया होगा, पर वह नाव मे नही था। वृद्ध के हताश हृदय पर आघात हुआ, आँखो मे अंधेरा छा गया और सिर पर हाथ रखकर वह बैठ गये। राम उनका कहाँ से हो सकता है? वह तो जमदग्नि का पुत्र और विश्वामित्र का शिष्य है।

हर्यश्व, विमद और हर्यश्व का पुत्र कृशाश्व, ये तीनो उनके सामने आकर खड़े हो गये। काँपते हुए ओठो और चिन्तातुर नयनो से कृशाश्व ने वृद्ध को प्रणाम किया।

विमद आगे बढा, गला खँखारकर धीरे-से बोला, "पिताजी!"

"क्यो?" नीद मे जागे हुए के समान वृद्ध कवि ने पूछा।

"पिताजी," विमद का स्वर रुआँसा हो रहा था, "राम आश्रम से चले गये है।"

निष्फलता की मूर्ति के समान दिखायी देते हुए वृद्ध सीधे हुए और उनकी आँखो मे भयकर प्रकाश छा गया। "क्या?" वह चिल्लाये।

"हमारे निकलने के पश्चात् ऐसा जान पड़ता है कि लोमा को राम कह आये कि मुझे वृद्धा के पास जाना है। फिर जान पड़ता है कि रात को राम अकेले ही सुपर्ण पर बैठकर आपसे मिलने यहाँ आने के लिए चल पडे। भृगुश्रेष्ठ ने कृशाश्व को खोज करने के लिए भेजा है।"

"धन्य मेरे पुत्र! पर वह है कहाँ?" वृद्ध की आँखो मे प्रेमाश्रु छा गये, "कहाँ है वह? कहाँ है?"

"कृशाश्व को पता लगाने के लिए ही यहाँ भेजा है," विमद ने धीरे-से कहा।

"कहाँ है मेरा पुत्र?" वृद्ध ने पूछा, "मार्ग भूल गया होगा। वह यहाँ नही आया है।"

वृद्ध सोचने लगे—नौ वर्ष का राम अकेला छोटे घोडे पर अँधेरी रात मे चल पड़ा। ढाई दिन का सीधा मार्ग है तो भी वह अभी नही आया। मार्ग मे जंगली जीव-जन्तु है और उनसे भी अधिक रक्त के प्यासे मनुष्य हैं। मेरा पुत्र अकेला भूखा-प्यासा होगा।

उन्होने खडे होकर विमद को फटकारा। निष्फलता की इस मूर्ति मे भयानक आवेश उत्पन्न हुआ और वह बीस वर्ष छोटे हो गये—"नपुसको, तुम यहाँ खडे होकर देख क्या रहे हो?" उन्होने विमद की कमर से शख लेकर फूंका, "विमद, मेरे शस्त्र लाओ, हमारे धनुर्धारियो को ले लो। कृशाश्व, मार्ग दिखाओ।" और करुण स्वर मे इस प्रकार उन्होने उच्च स्वर से कहा मानो देव को सम्बोधित करते हो, "पुत्र राम, मैं आता हूँ—यह आया मेरे पुत्र!"

युवा पुरुष की चपलता से नाव मे बैठकर वह झटपट उस पार जाने लगे।

[6]

समस्त तृत्सुग्राम मे, उसके आसपास के आश्रमो मे और निकटस्थ अनु और द्रुह्यु लोगो के निवास-स्थानो मे इस बाल-भृगु द्वारा किये गये पराक्रमो की

बातें फैल गयी थी। सभी जातियो के योद्धा वृद्ध कवि के चले जाने से असन्तुष्ट हो गये थे। इस बालक ने बडे तपस्वियो को अच्छी फटकार लगायी थी, इससे उस पर वे प्रसन्न हो गये थे। जो स्त्रियाँ रेणुका को आश्वासन देने आती वे भी उसी की बातें करती थी। इन सबमे लोम-हर्षिणी पतंग के समान इधर-उधर घूमती और अपने राम की बातें किया करती थी।

लोमा मन मे बहुत हर्षित होती थी। उसका राम, उसका वीर राम, बडे-बडे ऋषियो को छकाकर अकेला वृद्ध कवि से मिलने गया था। अम्बा को रोती देखकर उसने छोटे मुँह से बडा उलाहना दिया। राम छोटा था, इससे क्या? वह जंगल मे से होकर गया, इससे क्या? 'मेरे राम का' कोई क्या कर सकता है?

'उसका राम' कैसे उसके पास आया, वृद्ध कवि कैसे चले गये, उसने आकर क्या और कैसे कहा, उसने स्वत क्या बात को, वह किस प्रकार और कैसे गया, सुपर्ण कितना अच्छा था और 'उसका राम' जो शस्त्र ले गया वे कितने चमत्कारी थे, इन सब विषयों पर उसने अद्‌भुत छटा से विवेचन शुरू किया। इन सब बातो के अन्त मे एक ही बात थी कि उसके राम जैसा न कोई हुआ, न आगे होगा। और यह बात भी निश्चित ही थी कि वह लौट आयेगा।

जब यह समाचार मिला-कि राम भृगुग्राम जाते हुए मार्ग मे खो गया तब अम्बा मूर्च्छित हो गयी। ज्ञान के सागर जमदग्नि भी स्वास्थ्य खोकर देवों की आराधना करने लगे। परुष्णी के तीर पर शोक छा गया।

जब रेणुका होश मे आयी तब 'मेरे राम' के अतिरिक्त उसके व्यथित हृदय से दूसरा शब्द नही निकला। उसके आँसू सूख गये। उसकी वाणी आवश्यकता पडने पर ही सुनायी देती थी।

परुष्णी पर दृष्टि जमाये वह पेड के नीचे बैठी रहने लगी। कभी-कभी 'मेरे राम' कहकर वह निःश्वास छोडती जाती थी। लोमा आकर जितनी देर तक राम की बात करती थी, उतनी ही देर तक वह ध्यान देती थी।

तपोनिधि जमदग्नि की चिन्ता का पार न रहा। पत्नी के दु.ख से वह दुखी ही थे, अब पुत्र-वियोग भी उन्हे सताने लगा। प्रातः और साय पत्नी के पास जाकर वह चुपचाप बैठे रहते थे।

वृद्ध कवि चायमान, विमद, हर्यश्व, कृशाश्य और ऋषि का ज्येष्ठ पुत्र विदन्वन्त मनुष्यो को लेकर चारो ओर राम को खोजने निकले थे। पर राम का अभी कोई पता नही चला था और भृगुओ मे शोक फैल गया था।

एक दिन जमदग्नि रेणुका के पास बैठे थे। रेणुका की निस्तेज, स्थिर और करुण आँखे भूमि पर स्थिर थी। जब धीरे-धीरे जमदग्नि ने अपना हाथ रेणुका के हाथ पर रखा तब उसके अग काँप उठे। एक सिसकी उसके कण्ठ मे रुक गयी। अस्पष्ट रीति से उसे चेत आया कि उसके पति उससे क्षमा-याचना कर रहे थे। भक्ति से उसने अपनी उँगलियाँ पति की उँगलियो मे मिला दी।

वहुत ही देर तक दोनो इस प्रकार चुपचाप बैठे रहे—"रेणुका! देव ने जो ऐसा देदीप्यमान पुत्र दिया है उसे वह लेंगे नही। चलो, देव की कृपा की याचना करें।"

जमदग्नि ने प्रेम से रेणुका का हाथ उठाया, और सिर झुकाकर दोनो ने आँसू गिराकर मूक वदन से देव की आराधना की। कितने ही दिनो से रुकी हुई अश्रु-सरिता उलटकर रेणुका की आँखो से बहने लगी।

राम के लौटने मे लोमहर्षिणी को तनिक भी शका नही थी और उसके लौट आने की तैयारी मे वह लगी रही। लोमा चौदह वर्ष की थी, इसलिए वडो से भी वह मिलती थी। वह सबसे यही वात कहती थी कि राम आये विना न रहेगे।

राजा दिवोदास की लाडली पुत्री को जहाँ इच्छा हो वहाँ जाने का स्वातन्त्र्य था, इसलिए जहाँ-जहाँ राम उसके साथ घूमा था, वहाँ-वहाँ वह भी घूमने लगी। इस पेड के नीचे उसका राम उसमे मिलता था। वहाँ वह उसके साथ लड पडा था। यहाँ वे दोनो फिर मान गये थे। वहाँ वे दोनो

तैरने के लिए कूदे थे। उस स्थान पर दोनो ने एक-दूसरे के बाल खीचे थे। यहाँ पर सुपर्ण को दाना दिया जाता था। इस प्रकार प्रतिदिन पुराने प्रसंगो का वह उद्धरण करने लगी।

सब काम छोडकर प्रतिदिन सन्ध्या को सरस्वती के तीर से आने के मार्ग की ओर वह जाती और सामने दूर तक देखती रहती थी। उसे दृढ विश्वास था कि इस मार्ग के उस छोर पर उसका राम था, इस मार्ग से ही उसका राम आनेवाला है, आ रहा है। उसके कान मे सुपर्ण के टाप की ध्वनि निरन्तर आया करती थी।

लोमा के हृदय मे श्रद्धा की ज्योति जैसी पहले थी वैसी ही आज जलती थी। उसे इतनी ही चिन्ता थी कि जब इस मार्ग से उसका राम लौटे और वह स्वत. उसके दर्शनो के लिए उपस्थित न हो तो!

राम की खोज मे वृद्ध कवि चायमान ने आकाश-पाताल एक कर दिये। मार्ग मे ध्यान से देखते-देखते वह तृत्सुग्राम की ओर आये। मार्ग से इतने घोड़े, इतनी गाडियाँ, इतने पशु और मनुष्य पाँच-सात दिनो मे आये और गये थे कि सुपर्ण के खुर-चिह्न मिलना कठिन था।

वृद्ध कवि ने तृत्सुग्राम आकर यह पता लगाया कि रेणुका और लोमा के साथ राम ने क्या-क्या बातें की, सुपर्ण को किस प्रकार पसन्द किया, कौन से शस्त्र साथ मे लिये, आदि। सुपर्ण मार्ग नही भूल सकता, इस बात का उन्हे पूरा विश्वास था।

उनके शिष्य शम्बर के पुत्र राजा भेद को सप्तसिन्धु के दास अभी तक अपना राजा मानते थे। भेद के गुरु के लिए सप्तसिन्धु के दासो के मन में सम्मान था इसलिए वे बडे मार्ग से कटे हुए छोटी-छोटी जगली पगडण्डियो से होकर दासो के निवास-स्थानो मे वे राम की खोज करने लगे। कितने दिन बीत गये, महीनो हो गये, पर राम का कोई पता न चला। जब सब प्रयत्न निष्फल होने लगे तब छोटी-छोटी-सी बात मे वृद्ध कवि साथियो से लडने लगे और जगल जलाने लगे।

विमद ने देखा कि अधिक खोज करना अब व्यर्थ है। यदि वह जीवित

होता तो मिले विना न रहता। इसी वृद्ध कवि से यह कहने पर कही आशातन्तु पर स्थिर उनके शरीर का अन्त न हो जाय, इस भय से उसने भी पिता के साथ रहकर राम की व्यर्थ खोज की।

वृद्ध कवि ने अभी आशा छोडी नही थी। अनुभवी सेनापति की कुशलता से उन्होने दोनो ओर के सव जगलो मे खोज की, चारो ओर पता लगवाया, और अन्त मे सरस्वती-तट की ओर मुडे। उन्हे कुछ ऐसी आशा थी कि यह पवित्र माता उनके राम को अवश्य लौटा ला देगी।

सरस्वती-तीर पर के आश्रमो और निवास-स्थानो मे निष्फल खोज करते-करते अन्त मे वृद्ध कवि चायमान मृगुग्राम के सामने के किनारे पर जहाँ से वह खोजने निकले थे उस स्थान पर आ पहुँचे।

विमद ने धीरे-से कहा, "पिताजी, अव हम लोग आश्रम मे जायँ। आप थोडा विश्राम कीजिए।" वृद्ध कवि ने ऊपर देखा— पृथ्वी के छोर पर। वह रीते हाथो लौटे थे।

निराशा के हिम से उनका हृदय गल गया। अठहत्तर वर्षों मे जो किसी ने नही देखा था, वह आज विमद और उसके साथियो ने देखा। वृद्ध कवि के कन्धे उछलते हुए दिखायी दिये, और जिनकी ललकार से सप्तसिन्धु काँपता था, उनका दयनीय आक्रन्द और अश्रु से सिंचित स्वर सुनायी दिया—"माँ! माँ! तप और वल की जननी! इतने वर्षों की मेरी सेवा भी तुझे स्मरण न आयी! कृतघ्नी! इस अवस्था मे मुझे इस प्रकार दुखी किया।" उनकी आँखो से अश्रुधारा वह रही थी। वह घोडे से किसी प्रकार उतरे।

"विमद!" उन्होंने विमद के कन्धे पर हाथ रखा, "मुझे ले चलो।"

जैसे छोटे वच्चे को ले चलते हैं वैसे ही इस अप्रतिहत सेनापति-श्रेष्ठ को विमद और कृशाश्व हाथ पकड़कर आश्रम मे ले गये।

[7]

अँधेरी रात मे वरुणदेव की टिमटिमाती आँखें देखता हुआ राम सुपर्ण पर

सवार होकर वृद्ध के पास जाने के लिए चल पड़ा। वह अकेला ही जानता था कि सुपर्ण के पंख थे, पर वे दिखायी नहीं देते थे। वह पक्षी के समान उड़ता था। दूसरे घोड़े दौड़ते अवश्य थे, पर उन्हें सुपर्ण के समान उड़ना नहीं आता था।

उसके मन में विचार-तरंगें उठ रही थीं। वह आश्रम में नहीं होगा तो अम्बा रोयेंगी पिता क्रोधित होंगे। ये दोनों क्रोधित होते तब पिता आँखें बन्द कर लेते और अम्बा रोने लगती थीं, यह उसे स्मरण हो आया। वह लौट आयेगा तो इन दोनों की आँखें पुनः जैसी अच्छी थीं वैसी ही हो जायेंगी, ऐसा मानकर वह आगे बढ़ने लगा। उसने विचार किया कि वृद्धा इस प्रकार अकेले चले गये, यह उन्होंने ठीक न किया। उसे साथ ले गये होते तो कैसा आनन्द आता! पर विश्वामित्र ने ना कर दी होगी। विश्वामित्र क्यों उसे पढ़ाना चाहते हैं? उसे तो सब आता है। और वृद्धा कहते थे कि उनके दादा ऋचीक को सब आता है, फिर उसे विश्वामित्र के पास पढ़ने की क्या आवश्यकता है?

घोड़े के टाप की ध्वनि ठीक चल रही थी। मुँह से 'खबड़क', 'खबड़क' बोलें तो घोड़ा वेग से चलता है, यह वह जानता था। उसने 'खबड़क', 'खबड़क' कहना प्रारम्भ किया।

दोनों ओर जंगल में छिपे हुए अँधेरे के असुर 'राम-राम,' 'राम-राम' कहकर उससे बात करते थे। उसे वृद्ध कवि के पास शीघ्र जाना न होता तो वह अवश्य उनके साथ बैठकर बातें करता।

उसे ज्ञात था कि प्रातःकाल वायु को मरुत लाते हैं और रात को उनकी स्त्रियाँ लाती हैं। मरुत की स्त्रियाँ नदी से पानी भरने आती थीं, इसलिए वायु पर पानी गिर जाता था। इसी से शीतल वायु बहता था। उसने दाँत खोलकर वायु मुँह में खींचना प्रारम्भ किया। थोड़ी देर में वह सीटी बजाने लगा। सीटी बजाने से भूत-पिशाच भाग जाते हैं, यह भी वह जानता था। पेड़ों पर जुगनू की पंक्तियाँ उड़ रही थीं और वह जैसे-जैसे आगे बढ़ रहा था वैसे-वैसे वे यहाँ-से-वहाँ और वहाँ-से-यहाँ उड़ती थीं।

जब गन्धर्व पृथ्वी पर आते है तो जुगनू बनकर आते है। उन्हे जो हाथ मे पकड रखे उसे गाना आ जाता है। उसने एक-दो जुगनू पकडने का यत्न किया, पर वह सफल नही हुआ।

वृद्धा उनकी प्रतीक्षा करते हुए बैठे होगे। वह पहुँचकर आनन्द से चिल्लायेगा, 'वृद्धा !' और वृद्धा उठकर उसे गले लगा लेगे। फिर वृद्धा की दाढी उसके कण्ठ मे लिपट जायेगी। ऐसी दाढी उसे कब उगेगी ? सब कहते थे कि अभी तो उसे दाढी उगने मे देर लगेगी। किसी ने उसे कहा था कि अमुक पेड के बीज खाने से दाढी निकल आती है। उसने एक बार बीज भी प्राप्त किये थे, पर उसे अश्विनो का शाप था, इसलिए उसे दाढी नही निकली।

नदी भी कलकल करती बढ रही थी। ऐसा भास होता था मानो उसके पानी पर श्वेत फूल टपकते हो। उसके मन मे ऐसा विचार आया कि यदि वे फूल हो तो चुनकर लोमा को जाकर दे आऊँ। लोमा लडकी थी। यह उससे बडी थी, तो भी कितनी छोटी थी ! वृद्धा बहुत बार कहते थे कि लडकियाँ बहुत बकवाद करती है। लोमा कभी-कभी सिर खा जाती थी। वृद्धा मिलेंगे, और फिर लोमा, अर्थात् फिर लोमा को बुलाना पडेगा। उसके बिना कही काम चल सकेगा ?

राम ने लोमा से अनेक बार कहा था कि यदि तुम अप्सरा होती तो कैसा आनन्द आता ? यदि उसने माना होता और अप्सरा बन गयी होती तो इस समय उसके साथ उडती हुई आती।

आकाश मे तारे आँख-मिचौनी खेल रहे थे। वास्तव मे वे वरुणदेव की आँखें थी। इन्ही आँखो से वह सबको देखते है और यदि कोई पाप करता है तो उसे ठीक कर देते है। वरुणदेव की कितनी आँखें हैं ? और मुझे तो दो ही हैं। पीछे तीसरी आँख हो तो पीछे का भी देखा जा सकता है।

सुपर्ण सशक्त था। राम के समान अँधेरे मे उसे भी सब-कुछ दिखायी देता था। लोमा को अँधेरे मे दिखायी नही देता था। वह लडकी थी, क्या इसलिए ? नही। विमद भी कहता था कि उसे भी रात मे दिखायी नही

देता।

वे सब असुरो के गुरु नही है, इसलिए दिखायी नही देता था। उसे सब दिखायी देता था, क्योकि वह कवि उशनस का पुत्र था और असुरो का गुरु था। पिताजी को भी नही दीखता था। असुरो ने उन्हे पुरोहितपद पर नही रखा था, इसी से ऐसा होगा।

भृगु के आश्रम मे उसके समान कितने ही लड़के थे, पर सब उससे कितने छोटे दिखायी देते थे! वृद्धा कहते थे कि एक दिन सबको लेकर वह स्वतः भी युद्ध मे जायेगा। वे सब उसके थे, उसके थे या उसके बड़े भाई विदन्वन्त के।

उसने बहुत देर तक फिर सीटी बजायी। सुपर्ण अब धीरे-धीरे चल रहा था। उसके पैर मे बँधे हुए घुंघरू बजते चल रहे थे। पिछली बार तो तीन दिन मे सब भृगु के आश्रम मे पहुँच गये थे। तब तो अम्बा साथ थी, इसलिए बैलगाडियाँ जोती गयी थी और रात मे विश्राम लिया गया था। विमद कहता था कि घोडे पर भृगुग्राम डेढ दिन मे पहुँच सकते है, पर वह किसी दिन रात मे नही जाता था। वह स्वत. तो रात मे चला था, इसलिए वृद्धा से प्रात मिलेगा, या दोपहर को, या सन्ध्या-समय।

दोनो ओर वृक्षावलियाँ वेग से दौडने लगी। आकाश मे नक्षत्र आगे बढे। पिछली रात का वायु बहने लगा। पर नौ वर्ष के उस निर्भय बटुक के हृदय मे एक ही धुन थी—वृद्धा कब मिलेंगे?

प्रात. होने पर बडे-बडे वृक्षों के बीच ठहरने का एक स्थान आया, सुपर्ण रुक गया। इसी स्थान पर पिछली बार वे सब रात मे टिके थे, यह बात उसे स्मरण हो आयी। पास मे ही पानी का झरना झर-झर करता बहता था; वह भी आज उसी प्रकार बहता दिखायी दिया।

राम घोडे पर से उतरा, उसे छोड दिया, स्वत. एक बडे-से पेड़ के नीचे जाकर बैठा, शस्त्र निकाल लिये और पेड के तने से टिककर बैठ गया। नीद के असुर के आने का ज्ञान होने से पहले ही उसकी आँखें बन्द हो गयी और वह खर्राटे भरने लगा।

राम सपने देखने लगा। उनमे दौडते हुए घोडे और गिरते हुए तारे दिखायी दिये। प्रत्येक स्वप्न मे वृद्धा का मुँह भी दिखायी देता था। किसी समय लोमा हँसती हुई आती थी। अम्बा चरखा कात रही थी, क्योकि राम के लिए सुन्दर ओढ़ना बनाना था। इतने मे सुपर्ण पागल हो गया। उसके पेट पर नीद का असुर आकर बैठ गया। यह उसे स्मरण ही न रहा कि कौन-सी उँगली दबानी चाहिए।

'ऊँ हुँहुँहुँहुँहुँहुँ' सुपर्ण की हिनहिनाहट सुनायी पडी। वह चौककर जागा।

इस समय दो-तीन काजल-जैसे काले व्यक्ति सुपर्ण को बाँधने का प्रयत्न कर रहे थे, और वह इधर-उधर कूद-फाँद कर रहा था।

"यह तो मेरा घोडा है," वह चिल्लाया और शस्त्र लेने को हाथ बढाया। पर वे मिले नही। वह सीधा होने लगा, पर पीछे गिर पडा। किसी ने रस्सी से उसे पेड के साथ बाँध दिया था।

रस्सी से छूटने के उसने बहुत प्रयत्न किये, पर छूट न सका। पास मे कोई ठठाकर हँस पड़ा। उसने सिर घुमाकर देखा तो पास मे एक काला वृद्ध बैठा हुआ उसकी ओर देखकर हँस रहा था। उसने लँगोटी लगा रखी थी और सिर तथा शरीर पर बकरे का चमड़ा लपेट रखा था। उसके पूरे शरीर पर कौडियों के गहने थे। राम को ऐसा लगा कि वह अभी सपना ही देख रहा है।

राम विकराल आँखो से सुपर्ण को बाँधे जाते हुए देखता रहा। दासो ने सुपर्ण के अगले और पिछले पैर एक-दूसरे के साथ बाँध दिये और उनकी टापो पर पत्ते लपेट दिये। फिर आकर उन्होने राम के बन्धन खोले।

उस बूढे सहित सब आठ व्यक्ति थे। बूढे के हाथ मे त्रिशूल था। शेष व्यक्तियो की कमर मे लोहे के फरसे लटक रहे थे और उनके हाथ मे भाले थे। वे व्यक्ति उसे घेरकर खडे हो गये। ज्योही उसके बन्धन शिथिल हुए त्योंही राम व्याघ्र के समान कूदा और उस बूढे को गिराकर उस पर मे

होकर भाग निकला। वे काले आदमी उसके पीछे-पीछे दौड़े।

हरिण के समान छलाँगें भरता हुआ राम आगे बढ गया। वे दास भी उसके पीछे-पीछे दौडते आ रहे है, यह उसने जान लिया। वह जीवन मे कभी इस प्रकार नही दौडा था जैसा इस समय दौड रहा था।

पीछे से एक दास ने एक भाला फेंका। वह राम के पैर मे लगा। तुरन्त ही वह पैर चूका और राम गिर पडा। दासो ने आकर उसे बहुत पीटा और बाँधकर लौटा ले गये।

राम के मुँह से 'सी' तक न निकली। वह जानता था कि रोना लडकियो और नपुसको का काम है, फिर वह तो भृगु था।

दासो ने राम को ले जाकर सुपर्ण की पीठ पर बाँध दिया। वह बूढ़ा भी उसके पीछे घोडे पर बैठा और जगल की पगडण्डी पर वे आडे-टेढे चलने लगे। सुपर्ण के पीछे दो दास इस प्रकार चलतेथे कि उसके खुर-चिह्न मिट जायँ।

मार पडने से राम के शरीर मे पीड़ा हो रही थी। वृद्धा से मिलने मे देरी हो रही थी, इसका उसे विशेष दुख था। वह भाग निकलने का मार्ग वहुत सावधानी से चारो ओर खोज रहा था।

जगल-ही-जगल मे वे दास आगे बढ़ते गये। राम चारो ओर ध्यान देने लगा। बूढा कुछ बोलता चलता था। उसके बहुत से शब्द उसकी समझ मे भी आ रहे थे। दूसरे सब लोग बिना बोले सुना करते थे। बालपन मे ऋषि विश्वामित्र को दास लोग किस प्रकार उठा ले गये थे, यह बात उसने अपने पिता से सुनी थी। विश्वामित्र को उन लोगो ने इसी प्रकार बाँधा होगा या नही, इस प्रकार विचार करते-करते उसे नीद के झोके आने लगे।

जगल मे एक स्थान पर दासो का निवास-स्थान था। वहाँ दोपहर के पश्चात् इन सबने विश्राम किया। राम को उन्होने घोडे पर से खोला और उसके पैर इस प्रकार बाँध दिये जिससे वह भाग तो न सके, पर धीरे-धीरे चल सके। उसके हाथ भी पीछे बाँध दिये और उसकी कमर मे रस्सी बाँध-

कर उसका दूसरा छोर बूढे ने अपनी कमर मे बाँध लिया।

उस निवास-स्थान के लोग विचित्र थे। उन्होने नाचते-कूदते हुए उस बूढे को घेर लिया और 'ईईई ऊऊऊ' की किलकारी मारने लगे। फिर उन्होने बूढे की पूजा करके उसे तथा उसके साथियो को भोजन कराया। बूढे ने राम को भी भोजन दिया और ठठाकर हँसने लगा। राम को देखकर बूढा बहुत प्रसन्न हो रहा था और बहुत-कुछ कह भी रहा था, जिसे सुनकर सब दास भी ठठाकर हँस रहे थे।

राम की हड्डियाँ पीडा दे रही थी। उसकी आँखे भी जल रही थी। उसे बडी भूख लगी थी, इसलिए सब भूलकर उसने पेट-भर भोजन किया। उधर वे सब दास भोजन करने और बात करने बैठे, इधर राम धरती पर सिर रखकर सोने लगा। उसे सपने मे मार-पीट, दौड-धूप और रेणुका, लोमा, जमदग्नि तथा विश्वामित्र के उल्टे-सीधे चित्रो मे वृद्ध कवि के दर्शन हुए। 'मुझे वृद्धा के पास जाना है,' यह विचार बार-बार उसे नीद मे आ रहा था।

सूर्य का तेज कुछ कम होने पर बूढे ने यात्रा करने की आज्ञा दी। आज राम को पैदल चलाने का उन लोगो का विचार था, इसलिए बूढ़ा सुपर्ण पर बैठा और रस्सी से राम को खीचने लगा।

राम जहाँ खडा था वहाँ से हटना उसे स्वीकार नही था, । बूढे ने घोड़े को दौडाने के लिए उसे डण्डे से मारना प्रारम्भ किया, पर सुपर्ण ने पैर न उठाया और सखेद राम को देखता रहा।

अन्त मे वृद्ध की सहायता के लिए दो व्यक्ति आये और रस्सी पकडकर राम को खीचने लगे। दाँत पीसकर स्थिर आँखो के तेजस्वी प्रकाश से खीचनेवालो का तिरस्कार करता हुआ राम तनिक भी डिगा नही और फिर रस्सी के खिचने से जब वह सरकने लगा तब धरती पर गिरकर घसीटा जाने लगा। बूढे की आज्ञा से तीसरे व्यक्ति ने आकर राम को कोडे लगाना प्रारम्भ किया। राम को कष्ट होने लगा, इसलिए वह धूल मे लोटने लगा। कही गले से 'सी' न निकल जाय, इसलिए राम ने दाँत और

ओठ जकड लिये।

उस मारनेवाले व्यक्ति को बूढे ने रोका और उसे राम को उठाने के लिए कहा। उस व्यक्ति ने राम को उठाया और बूढे ने रस्सी खीचकर राम को फिर से चलाने का प्रयत्न किया।

राम की आँखो मे आँसू भर आये। उसकी पीठ पर पडे हुए कोडे के घावो से खून निकलने लगा था। उसके पैर थर-थर काँपने लगे थे। उसका गला सूज आया था, पर उसके ओठ और दाँत जैसे थे वैसे ही जकड़े रहे। आँसुओ से भरी हुई उसकी दोनो आँखो का अग्निवत् प्रदीप तेज स्थिर और एकाग्र था।

वह पैर पटककर चिल्लाया, "मैं नही हटूंगा, बस नही हटूंगा।" वह जहाँ खडा था वहाँ से डिगा नही। दो व्यक्ति उसे ढकेलने को बढे तो उनमे से एक के हाथ मे राम ने काट खाया। बूढे ने सुपर्ण को फिर से हाँकना प्रारम्भ किया, किन्तु वह टस-से-मस नही हुआ।

जब इस बालक से अपनी मनचाही वे न करा सके तब अन्त मे थक-कर दासो ने राम को उठाकर घोडे पर बिठा दिया और बूढ़े की सवारी आगे बढ चली।

उस दिन से बूढे और उसके साथियो ने राम को सताना छोड दिया और उसे सुपर्ण पर ही बैठाये रखने लगे।

आठ दिन तक बूढा और उसके साथी आगे-ही-आगे जगल मे बढते गये, तब सामने पर्वत मिले। उसकी उपत्यका मे दासो के बहुत से गाँव थे जहाँ बूढे का बहुत आदर-सम्मान हुआ। बूढे की सवारी पहुँचते ही जहाँ उसके एक साथी ने श्रृङ्ग फूंका कि उसकी गूँज सुनते ही सैकडो काले-कलूटे, नाटे पुरुष, स्त्री और बच्चे इकट्ठे होकर नाचते और 'ईईई ऊऊऊ' की किलकारी से उसका स्वागत करते। बूढा 'उग्रकाल प्रसन्न' कहता और कभी-कभी स्वत. नाचता भी था। फिर सब 'ईईई ऊऊऊ' की प्रचण्ड किलकारी करते और पशु पकाकर खाते थे। इस प्रकार एक-एक गाँव मे रात्रि को विश्राम करती हुई बूढे की सवारी आगे बढती थी।

जहाँ यह सवारी जाती, वहाँ बूढा राम को सबसे आगे रखता था और सब उसे देखकर बहुत आनन्दित हो जाते थे। कभी-कभी लडके इसके सामने आकर घुटनो के बल बैठ जाते और कभी-कभी स्त्रियाँ भी आकर उसे छोटे बच्चे दिखा जाती थी।

राम ने अपने पिता और विश्वामित्र के आश्रम मे बहुत से दास देखे थे। वे सब राजा भेद के आदमी थे, यह वह जानता था। ऋक्ष के आश्रम मे ऐसे कितने ही नृत्य भी उसने देखे थे। उनकी भाषा भी वह कुछ-कुछ समझता था। किन्तु जो दास उसने देखे थे उनकी अपेक्षा ये विशेष गन्दे और कुरूप थे। इनकी भाषा भी विचित्र थी। उनकी भोजन करने की रीति भी बड़ी बेढङ्गी थी और जब वे सडा हुआ मास पकाते थे तब राम का माथा घूम जाता था।

वह समझने लगा कि जो कोई उसे देखता है उसकी प्रशसा करता है। वह बहुत अच्छा है, सुन्दर है, योग्य है, इससे उग्रकाल प्रसन्न होगे, ऐसे कुछ-कुछ समझ मे आनेवाले वाक्य सुनकर उसे लगा कि ये सब उसे गुरु बनाना चाहते है। किन्तु उस समय तो वह बूढा ही सबका गुरु था।

एक दिन वह बूढा उसे गोदी मे लेकर बैठा और उसके सिर पर त्रिशूल घुमाने लगा और न जाने कितनी देर तक वहाँ के लोग उनके आस-पास नाचे। राम समझा कि इन सबके देव उग्रकाल पर्वत पर रहते है और यह बूढा वहाँ यात्रा के लिए जाता है। जब सब वेग से नाचने लगे तब बूढ़ा खडा हो गया और त्रिशूल हिला-हिलाकर सिर झटकाने लगा। अन्य सब लोग धरती पर मुँह के बल लेटकर 'ईईई ऊऊऊ' कहते हुए उस पर ताल देने लगे। भृगुओं के गौरव के उत्तराधिकारी को यह सब असंस्कृत क्रिया देख-कर बडी हँसी आने लगी।

उनकी यात्रा आगे बढती ही रही। वह भी इनके बीच से भाग निक-लने का मार्ग खोजता रहता। किन्तु वे दिन-रात उसे बूढे की कमर से बँधी हुई रस्सी के छोर से बाँध रखते थे। रात को भी उसके हाथ-पैर दोनो बाँध देते थे। वह तनिक भी हिले तो सब व्यक्ति जाग उठते थे।

कई दिन तक बूढे का दल पर्वत पर चढता रहा। अब तो बहुत से लोग साथ मे हो लिये, इसलिए यात्रा बहुत धीरे-धीरे होती थी। ज्यो-ज्यो सँकरे मार्गो से होकर वे ऊपर चढने लगे त्यो-त्यो लोगो का उत्साह बढने लगा। स्त्रियाँ निरन्तर गाती ही जा रही थी।

राम को अब सदा जगली फूलो की माला पहनायी जाती थी और उसे अच्छा-अच्छा भोजन दिया जाता था। बूढा प्रात -साय कुछ मन्त्र पढ-पढकर उसके सिर पर त्रिशूल घुमाया करता था। लडके तो उसे देख-देख-कर बहुत ही नाचते थे। उसका भी मन कभी-कभी हँसने को करता था, किन्तु वृद्धा के पास जाना अभी शेष है, यह स्मरण होते ही उसकी हँसी रुक जाती थी।

राम उन लोगो के व्यवहार से उकता गया। उसका बस चलता तो लकडी लेकर चारो ओर घुमाता, नही तो वृद्धा के समान सेना लेकर उन्हे मार ही डालता। वह यही सकल्प करके सन्तोष मनाने लगा कि किसी दिन उन सबको ठीक करना ही पडेगा।

अन्त मे जब बूढे की सवारी पर्वत के शिखर पर पहुँची तब सन्ध्या हो गयी थी। एक टेकडी के नीचे सब ठहर गये। ऐसा जान पडता था कि यात्रा पूरी हो गयी है और राम समझा कि इसी टेकड़ी पर उग्रकाल रहते हैं। \

पूरा दल आनन्दमग्न था। चाँदनी रात मे अँधेरे के असुर पेड के नीचे छिप गये थे। स्त्रियो ने ताने छेडी। बीच मे बडी-सी आग सुलगायी गयी और उसके चारो ओर लडके नाचने लगे।

हाथ-पैर बाँधकर राम को एक पेड के नीचे बिठा दिया गया था। राम ने निश्चय किया कि यदि वह इन सबका गुरु बने तो पहले इन्हे नहला-धुला-कर स्वच्छ करे और फिर जो भी चिल्लाये उसे डाँटकर चुप कराये। ऋषियो के आश्रम मे लोग जैसी शुद्ध और संस्कारयुक्त वाणी बोलते थे, वैसी ही बोलना वह अपने शिष्यो को सिखायेगा।

सुलगायी हुई आग मे पकड़कर लाये हुए पक्षी पका-पकाकर सबने

खाये और साथ मे लायी हुई सुरा पी। बूढे ने भी भरपेट खाया और सुरापान किया। राम की पूजा करके उसे माला पहनाकर भरपेट खिलाया। फिर सब लोग कुछ राग अलापते हुए ढोलक के साथ जी भरकर नाचे।

जिस समय यह नृशस उत्सव मनाया जा रहा था, उस समय राम पेड के नीचे प्रगाढ निद्रा मे सो रहा था। रात हो चुकने पर थक जाने के कारण वह दल आग के आसपास ही सोने के लिए व्यवस्थित हो गया।

कुछ रात बीतने पर दूर सुपर्ण का हिनहिनाना सुनायी दिया—एक बार, दो बार और तीन बार। वह हिनहिनाहट बहुत देर तक रही। उसमे त्रास और दुख भरा था। राम जाग गया। मानो घोडा पुकारकर चिल्लाया हो ऐसी आक्रन्दपूर्ण प्राणान्तक हिनहिनाहट आरम्भ हुई। एक झटके की ध्वनि हुई···और ध्वनि मन्द पड गयी। राम उठ बैठा। उसका हृदय वेग से धडक रहा था। उसे ऐसा जान पडा मानो उसके सुपर्ण को किसी ने मार ही डाला हो। उसके सब अग काँप उठे। उसका मन हुआ कि चिल्ला उठे, पर ज्यो-त्यो उसने अपने मन पर नियन्त्रण रखा।

थोडी-ही देर मे दस-बारह व्यक्ति एक बडा-सा बोझा उठाकर ले आये और उसे आग पर रख दिया। राम आग की ओर देख न सका। उस पर क्या है, उसकी समझ मे आ गया था, पर अपनी शका का निवारण करने के लिए जब उसने प्रयत्नपूर्वक उधर देखा तो सुपर्ण का सुन्दर शरीर वह पहचान गया। उसने आँखें फेर ली। उसकी आँखो मे आँसू भर आये और वह धरती मे मुंह गाडकर सिसकियाँ भरने लगा।

रोते-रोते भी राम सब समझ गया—उसकी पूजा क्यो की जाती है, उसे अ घक क्यो खिलाया जा रहा है, उसे देखकर सब क्यो प्रसन्न होते है! उसे झट एक बात सूझी। विश्वामित्र ऋषि जब छोटे थे तब भी दासो ने तैयारी की थी कि उन्हे जलाकर अपने उग्रदेव पर बलि चढा दें। उसके सुपर्ण को भी ये दास इसलिए पका रहे थे···और कल प्रातः उसे भी पका-कर अपने देव को भोग चढा देंगे।

यह कैसे हो सकता है? उसे तो अभी वृद्धा से मिलने जाना है। अभी

तो उसे अम्बा और लोमा के पास भी जाना है। और फिर वह तो बडा गुरु होनेवाला है। उसकी आँखे विकराल बन गयी, उसके आँसू सूख गये, उसके शरीर की पीडा वन्द होगयी और वह भाग निकलने का मार्ग खोजने लगा। कुछ देर मे जव सब दास सो गये तो राम धीरे-धीरे लेटे-लेटे ही आग के पास सरकने लगा।

सुपर्ण का एक पैर आग के बाहर पड़ा था। उसकी चरबी जल रही थी और उसमे एक स्थान पर अग्नि की ज्वाला निकल रही थी। राम सरकता हुआ उसके पास गया और साहस करके अपने बँधे हुए हाथ उस पर रख दिये। थोडी देर मे बन्धन की रस्सी जल गयी और उसके हाथ खुल गये।

उसने सोने का ढोंग बनाये रखा और धीरे-धीरे करवट लेकर पैर के बन्धन भी आग पर रखकर जला डाले। हाथ-पैर खुल जाने पर उसने अपनी कमर पर बँधी हुई वह रस्सी भी दाँत से काट डाली जिसका दूसरा छोर वूढे की कमर से बँधा था।

राम छूट गया।

भयकर ठण्ड से सिकुडकर सब आग के पास सो रहे थे, इसलिए वह धीरे-धीरे सरककर दूर हटने लगा।

चन्द्र अस्त हो गया था। अग्नि शान्त हो गयी थी। केवल जलते हुए कोयलो का प्रकाश थोडी दूर तक प्रसार किये हुए था।

जहाँ तक अँधेरा था वहाँ तक वह लुढ़कता हुआ गया और फिर उठ वैठा।

राम की आँखे अँधेरे मे सबकुछ देख सकती थी। एक ओर नीचे जाने का मार्ग था, दूसरी ओर सीधी टेकडी पर जाने की पगडण्डी थी। यदि वह नीचे जाय तो दास उसे पकड़े बिना न रहेंगे, ऐसा विचार करते ही वह चार पग मे टेकडी के पास पहुँच गया। फिर वह खडा होकर वेग से दौडने लगा। अपने सर्वदर्शी नयन चारो ओर चमकाता हुआ वह कभी पैरो से चलकर, कभी हाथ-पैर दोनो के वल सरककर ऊपर जा पहुँचा।

वेग से दौड़ने के कारण उसके हाथ-पैर छिल गये, पर भाग निकलने

के लिए उसका शरीर और मन दोनो एकाग्र हो गये थे। इसके अतिरिक्त उसे और किसी बात की सुध ही नही थी।

टेकडी के सिरे पर एक छोटा-सा खुला मैदान था। वहाँ बीच मे पत्थर का एक बडा लिंग था। उसके आसपास से चढावे की असह्य दुर्गन्ध आ रही थी। श्मशान से भी अधिक भयानक दुर्गन्धयुक्त इस स्थान मे वह छिप-छिपकर हाथ-पैर के बल आगे बढने लगा। एक बार एक बडा-सा पक्षी पख फडफडाकर उड गया। दो-चार गिद्ध सिर पर मँडराने लगे। राम की विकराल आँखे चमकती हुई चारो ओर घूम रही थी। मार्ग खोजने के अतिरिक्त उसकी अन्य सब शक्तियाँ कुण्ठित हो गयी थी।

ठण्डी हवा की साँय-साँय उस पर कोडे के समान आघात करती थी, पर इसकी उसे सुध नही थी।

उसे ऐसा जान पडा कि टेकडी तीन ओर से तो ढालदार है किन्तु एक ओर सीधी खाई तक जाती है। वहाँ से बहते हुए पानी की कल-कल ध्वनि आ रही थी। तीन ओर से नीचे उतरा नही जा सकता था और उस मार्ग से नीचे उतरने मे दास मिले बिना न रहेगे। चौथी ओर से उतरने का प्रयत्न करने से चकनाचूर होने का भय था।

वह फिर टेकडी पर घूमा, पर खाई के अतिरिक्त उसे बचने का कोई मार्ग दिखायी नहीं दिया। टेकडी पर लेटकर एक पेड की शाखा पकडकर उसने सिर बढाकर नीचे खाई की ओर देखा। उसे ऐसा जान पडा कि पानी का प्रवाह वेग से बह रहा है।

टेकडी की खाईवाली ओर एक बडा-सा पेड खडा था, जिसकी मोटी-मोटी शाखाएँ नीचे खाई मे लटक रही थी।

अचानक टेकडी के नीचे उसे कोलाहल सुनायी दिया। बिल्ली की चपलता से राम ने टेकडी पर के पेड की शाखा पकडी और एक पैर टेकडी से नीचे लटका दिया। नीचे की शाखा को बोझ सह सकने के योग्य जानकर वह उस पर कूदा। फिर उसने ऊपर की शाखा से हाथ छोडकर नीचे की शाखा पकड ली।

ऊपर आकाश चमक रहा था। नीचे पानी बह रहा था जिसमे तारों का स्वच्छ प्रकाश प्रतिबिम्बित हो रहा था। इन दोनो के बीच राम पर्वत की खाई मे खड़े हुए पेड पर शाखा पकडकर बैठा हुआ था।

सवेरा हुआ। वह जिस शाखा पर बैठा था, वहाँ से उसने दूर से बहकर आता हुआ जल-प्रवाह देखा। उसके उस ओर मैदान था। उस ओर दृष्टि डाली। बहुत दूरी पर गाँव मे से धुआँ निकल रहा था। ठण्ड से थर-थर काँपता हुआ वह झुककर ध्यान से नीचे देखने लगा। वह जिस पेड पर बैठा था वैसे ही बहुत से पेड खाई मे नीचे तक फैले हुए थे। नदी की चौडाई परुष्णी से अधिक नही थी। इस समय यदि वृद्धा होते तो उनके साथ नदी मे तैरने मे बड़ा आनन्द आता। यदि वृद्धा उसे इस प्रकार लटकता हुआ देखें तो क्या कहेंगे? और हठी लोमा ने अप्सरा बनना अस्वीकार न किया होता तो इस समय वह उसके साथ ही होती।

टेकडी पर से पुकार और कोलाहल सुनायी दे रहा था। उसकी खोज करते हुए मनुष्यो का स्वर उसके पास तक सुनायी दे रहा था। धीरे से राम वहाँ से नीचे के पेड पर उतरा।

ऊपर टेकडी पर से फिर कोलाहल सुनायी दिया, इसलिए वह श्वास रोककर शाखाओं मे छिप गया। थोडी देर मे कोलाहल कम हुआ और वह नीचे के दूसरे पेड पर उतरा।

सूर्योदय होने पर राम ने पेड पर बैठे-बैठे सूर्य को अर्घ्य दिया और तेज के नाथ उसकी ठण्ड भगाने लगे। अन्त मे कोलाहल बन्द हो गया और वह मार्ग खोजने लगा।

उसकी चमकती हुई आँखो ने टेकडी की ऊँचाई नापी, नीचे की गहराई नापी और नदी की चौडाई भी नापी। ओठ चबाकर हाथ और पैर दोनो का उपयोग करके वह एक के पश्चात् दूसरे पेड़ पर से उतरने लगा।

एक बार पुन. ऊपर चढने का उसने विचार किया, किन्तु उस बूढे का क्रूर हास्य उसे स्मरण हो आया, इसलिए यह विचार उसने छोड़ दिया।

वह नीचे के पेडो पर बहुत सावधानी से उतरने लगा। अन्त मे जब पेड़ समाप्त हो गये और छोटी कोमल झाडियाँ आने लगी, तब उसने सविता देव को आँखो से ही नमस्कार करके गायत्री-मन्त्र से उन्हे अर्घ्य दिया और नीचे पानी मे कूद पडा।

[8]

सरिता के शीतल जल से राम के गात्र हरे हो गये। नदी के बहाव के साथ ही तैरने की आवश्यकता होने से उसे अधिक कठिनता नही हुई, और सूर्य ज्यो-ज्यो ऊपर आने लगा, त्यो-त्यो ठण्ड भी कम होने लगी।

सामने का तट निर्जन था, इसलिए उधर जाने की अपेक्षा आगे बढना ही उसे ठीक लगा। थोडी-थोडी देर पर नदी मे बडे-बडे पेड बहते चले आते थे। उनमे मे एक बडे पेड़ पर बैठकर वह विश्राम लेने लगा।

वह इस पेड को घोडा बनाकर बैठा, और आनन्द से आगे बढने लगा। विकराल रक्त-पिपासु बूढे और दुर्गन्धमय निवास-स्थान मे रहनेवाले उनके देव उग्रकाल से मुक्ति पाने के कारण उसे बहुत शान्ति मिली। उसे यह विश्वास हो गया कि अब वह वृद्धा के पास जा सकेगा।

उसे सुपर्ण का स्मरण हुआ। उसने सकल्प किया कि जहाँ उसके प्रिय घोडे को उन दासो ने मार डाला है, वही एक दिन जाकर वह उस बूढे का मुँह तोडेगा। दोपहर होने पर उसे भूख लगने लगी और बहुत देर तक उसने वृद्धा, रेणुका और लोमा का विचार करके भूख शान्त करने का प्रयत्न किया।

अपराह्न के समय उसने किनारे पर दो बडी नावें खडी देखी। ऊँचे स्वर से पुकारकर उसने उनमे बैठे हुए व्यक्तियो का ध्यान आकृष्ट किया। दो व्यक्ति उसे देखकर चिल्ला उठे और पेड पर से उतरकर राम तट की ओर तैरने लगा।

तट के पास आने पर उसने देखा कि नाव मे से चार पुरुष, दो स्त्रियाँ व तीन लड़के उसकी ओर देख रहे थे। वे लोग दासो के समान काले नही

थे, यह देखकर राम को शान्ति हुई। नाव मे जो पुरुष खडे थे, उनमे से जो अवस्था मे बडा था वह पिता था, और अन्य तीन उसके पुत्र थे। राम को पास आते देखकर नावो का स्वामी तैरकर आगे आया और उसे तट पर ले गया। अन्य सब लोग तट पर उतर पडे और राम को देखकर सब लडके हँसने और तालियाँ बजाकर कूदने लगे।

उसे देखकर बडी नाववाला भी हर्षित होने लगा। वह लम्बा और पतला था।

"बहुत अच्छा हुआ, बहुत सुन्दर है। दो सौ गाये तो कम-से-कम मिलेंगी," उसने आँखें बन्द करके हाथ मलते हुए कहा।

"पिताजी, दो सौ क्या," बडे लडके ने कहा, "चार-पाँच सौ तो सहज मे ही मिल जायेंगी। इसकी आँखें तो देखो, और पैर भी कितने अच्छे हैं!"

"चार सौ मिले तो तुम मेरे सच्चे पुत्र," कहकर पिता ने पुत्र की पीठ ठोकी।

राम ने दोनो की ओर देखा। उनका अर्थ वह नही समझा। अपनी स्वाभाविक सरलता से उसने कहा, "मुझे भूख लगी है, भोजन दो।"

"ओह ओ," नाववाले के बीस वर्ष के छोटे लडके ने आगे आकर कहा। यह लडका आकार मे छोटा, साहसी और क्रोधी था। फिर राम की आँखो का भयकर तेज देखकर उसका बोलना एकदम बन्द हो गया।

नाववाला बीच मे बोल पडा, "हाँ भाई, ठहरो, भोजन देता हूँ। तुम आये कहाँ से?"

"वहाँ से," राम ने कहा।

नाववाले के कहने से लडके की स्त्री ने उसे रोटी और मिर्च लाकर दी और राम खाने लगा। जब वह खा रहा था, तब नाववाले का छोटा लडका उसके पास आया और जीभ निकालकर बोला, "ओह ओ! बडे तुर्वसु महाजन के बेटे बने बैठे है! क्या ऐंठ है!"

तुर्वसु जाति के इन भ्रमणशील नाववालो के विचार मे तुर्वसु महाजन

ही सबसे बडा महाजन था। सब हँसने लगे और राम की नसों मे आवेश भरने लगा। उसने रोटी खाना छोड दिया और सबकी ओर क्रोध से देखने लगा। उसका क्रोध देखकर सब फिर हँस पडे।

"मैं तुर्वसु महाजन नही हूँ," राम ने गर्व से कहा।

"नही, नही, तुम तो मानो तुर्वसु राजा के साले हो," उस विभु नामक लडके ने तिरस्कारपूर्वक कहा। फिर सब हँस दिये।

राम खडा हो गया और कमर पर हाथ रखकर आगे बढा, "नही, वह तो मेरे भाई विदन्वन्त का साला होता है।"

विनोदी विभु आँखे नचाता हुआ पास आया और राम की ठोडी हिलाकर कहने लगा, "यह कहो न कि ऋषि विश्वामित्र का साला है।"

सब फिर हँस पडे और राम क्रुद्ध हो गये। उसने चिल्लाकर कहा, "झूठी बात, विश्वामित्र तो मेरे दादा के साले होते है।"

"वाह, वाह!" कहकर सब हँस पडे। ऐसा अभिमानी लड़का उन्होने देखा नही था।

"धत्तेरे की, महर्षियो के साले के साले!" कहकर विभु ने राम की ठोडी पकडकर ऊँची की।

राम के हाथ मे बिजली-सी चमक गयी। उसने रोटी फेक दी, उछला और विभु को उठाकर भूमि पर पटक दिया। आवेश मे आकर वह उसके सीने पर चढ गया। सबकी हँसी रुक गयी। नाववाला दौडकर राम से लिपट गया और उसे खीचकर अलग करने लगा। राम ने भी इतना बल दिखाया कि नाववाले को कुछ क्षण के लिए उसे अलग करना कठिन हो गया।

विभु ज्यो-त्यों धूल झाडता हुआ, मुँह से गालियो की वर्षा करता हुआ धरती पर से उठा। विनोद करने की उसकी वृत्ति तो लुप्त ही हो गयी।

हाथ की मुट्ठियाँ बाँधे तेजपूर्ण आँखो से सबको डराता हुआ राम खडा रहा। नाववाला उसकी पीठ ठोकने लगा, "हाँ भाई, तुम तो बृहस्पति के पुत्र हो, अब तो ठीक है?"

"नही," राम चिल्लाया, "मैं भृगु हूँ, ऋषि जमदग्नि का पुत्र।"

सब लोग फिर हँसने ही वाले थे, पर नाववाले ने उन्हे रोका, "हाँ भाई, हाँ, तुम तो हमारे गुरु हो। अब तो ठीक है न?"

जब सब शान्त हो गये तब नाववाले ने राम को रोटी खा लेने को कहा।

"धरती पर पडी हुई रोटी मैं नही खाऊँगा।"

"लडकी, जा इसे दूसरी रोटी लाकर दे," कहकर नाववाले ने मधुरता से पूछा, "भाई, तुम्हारा नाम क्या है?"

"राम भार्गव।"

"अच्छा. अच्छा, शान्ति मे भोजन करो। लो थोडा पानी पी लो।"

रात होने पर तट पर आग सुलगाकर पूरा परिवार भोजन करने बैठा। राम को भी उन्होने थोडी दूर पर बिठा दिया और विभु जाकर नाव के बीच मे रखे हुए एक पिटारे मे से दो लडको को बाहर ले आया, उन्हे नहलाया और राम के साथ बिठाकर तीनो को भोजन दिया। एक लड़का लगभग चौदह वर्ष का और दूसरा राम की अवस्था का, छोटे डील का, पर मोटा था। दोनो के पैरो मे रस्सी बँधी थी, जिसे विभु हाथ मे पकड़े था।

चौदह वर्ष का लडका पतला-दुबला, सुन्दर और रूपवान था। उसका मुख चचल किन्तु म्लान था। उसके छोटे-छोटे बालो से ज्ञात होता था कि उसका सिर थोडे दिन पहले मूँडा गया है। उसने भोजन से पहले धीरे से अग्नि का आवाहन किया और आहुति दी। प्रिय और परिचित मन्त्र सुन-कर राम को ऐसा हर्ष हुआ मानो कोई स्वजन मिल गया हो, और वह हँसा। वह लड़का भी सकोच से हँस पडा और इस पारस्परिक हास्य से वे दोनो मित्र बन गये। नाववाले का परिवार भोजन करने और गप्पें हाँकने मे लगा था, इसलिए दोनो पास-पास आ गये।

"तुम कहाँ से आये हो?" उस लडके ने राम से पूछा। उसका स्वर मीठा था।

"मैं नदी से तैरकर आया हूँ," राम ने कहा।

"तुम्हारी जाति क्या है ?" उस लडके ने पूछा।

"मै भृगु हूँ। तुम कौन हो ?"

उस लड़के का मुँह मन्द पड़ गया—"मै···मै अगिरा हूँ," उसने हिच-किचाते हुए कहा।

"हम दोनो तो एक ही है," राम ने उत्तर दिया, "तुम्हारा नाम क्या है ?"

"मेरा नाम शुन.शेप," उसने नीची दृष्टि करके लज्जित होकर कहा।

राम हँसा, "कुत्ते की पूंछ के वाल ! कैसा विचित्र नाम है !"

तीसरा लडका तो भोजन करके सो गया था। नाववाले का परिवार जव भोजन कर चुका और वायु वहने लगा, तब विभु ने शुन शेप और राम को नाव मे जाने की आज्ञा दी और तीसरे का हाथ पकडकर स्वत ही उसे नाव की ओर घसीट ले गया।

नाव मे जाकर विभु ने शुन.शेप और उस मोटे लडके के पैर मे वँधी रस्सी एक कील मे वाँध दी। फिर वह राम के पैर मे रस्सी बाँधने आया। पहले तो राम ने टण्टा करने का विचार किया, पर शुन शेप ने आँख से सकेत किया, इसलिए उसने पैर वांघने दिये।

फिर वडी नाववाले ने दोनो नावो के लगर खोल दिये और नाव वेग से आगे वढने लगी। शुन शेप से विभु ने रात-भर रस्सी खीचने का काम करवाया, और वहुत दिन का थका हुआ राम कई रातो की नीद एक ही रात मे पूरी करने लगा।

प्रात. होने पर विभु ने राम को लात मारकर जगाया। राम विगडे हुए घोडे के समान हिनहिला उठा। वह एकदम विभु के पैर से इस प्रकार लिपटा कि विभु नाव मे घडाम से गिर पडा। विभु इतनी जोर से चिल्लाने लगा कि उसके वाप और भाई दौडते हुए वहाँ आये।

"यह लड़का तो भेडिये जैसा है," विभु ने कहा, "मुझे इसने गिरा दिया।"

"मुझे इसने लात मारी," राम ने आवेश से कहा—"मुझे—जमदग्नि के पुत्र को—लात लगानेवाला तू कौन होता है ?" उसने गर्व से पूछा। वह मुट्ठी बाँधकर लड़ने को तैयार हो गया। उसकी आँखो मे ऐसी ज्वाला थी कि नाववाले भी सकपका गये।

"विभु !" बडी नाववाले ने अधीरता से कहा, "तुम इस लडके को यदि फिर से छेडोगे तो मैं तुझे मारूँगा। उसके मूल्य का भी तुझे कुछ विचार है ?" विभु सिर खुजलाता हुआ खडा रहा। उसकी आँखो मे द्वेष था।

"चलो लडको, नहा लो भाई," बड़ी नाववाले ने राम से कहा, "शान्त हो जाओ, अब तुम्हे विभु नही छेडेगा, समझे !"

राम जब शुन.शेप के पास गया तब उसने प्रेम से राम का हाथ दबाया। शुन शेप का हाथ छोटा और कोमल था। ऐसा अनुभव राम को हुआ, मानो वह लोमा का ही हाथ हो।

तीनो वन्दी लडके ज्यो-त्यो करके नहाये। फिर बडी नाववाले ने ही उन्हे खाने को दिया और फिर नाव मे रखे पिटारे मे उन्हे जाने के लिए कहा। राम ने शुन शेप की ओर देखा, उसने संकेत किया और राम भी चुपचाप पिटारे मे घुस गया। शुन.शेप और कद्रू—तीसरा लडका—भी उसमे उतर गये।

"लो लडको, ये मूलियाँ खा लेना," कहकर बहुत ही उदारता से नाव-वाले ने पाँच-छ. मूलियाँ पिटारे मे डाली और ऊपर का ढकना वन्द कर दिया।

पिटारा तीनो लडको के लिए बहुत वडा था। उसके छिद्रो मे से पर्याप्त प्रकाश भी आता था। उसमे तीनो के वैठते ही कद्रू ने रोना प्रारम्भ किया। शुन शेप उसे गोदी मे लेकर प्रेम से उसकी पीठ पर हाथ फेरने लगा।

"मैं अपनी माँ के पास जाऊँगा," कद्रू फूट-फूटकर रोने लगा। नाव-वाले ने ऊपर के ढकने को ठोका और शुन.शेप ने कद्रू का मुँह अपनी छाती से लगा लिया—"चुप रह, चुप रह। रोयेगा तो वह मारेगा," उसने कहा। कद्रू ने ज्यो-त्यो करके अपनी सिसकियाँ दवायी।

"इसकी माँ कहाँ है ?" राम ने पूछा।

"ये लोग इसकी माँ के पास से कद्रू को चुरा लाये हैं," शुन शेप ने राम के कान मे कहा।

"ये लोग, अर्थात् ?"

"ये ही नाववाले।"

"क्यो ?"

"ये तो पणि है। हम लोगो को दूसरे गाँव मे वेचने के लिए ले जाते हैं," शुन शेप ने कहा।

"तव यहाँ ये सव लोग क्या करते है ?"

"स्वर्ण, रत्न, कस्तूरी, कपूर आदि इन्होंने जो नावो में भरा है उसे निकटस्थ गाँवो मे वेचने जायेंगे।"

"हम लोगो को वेचकर क्या करेंगे ?"

"स्वर्ण या रत्न लायेंगे।"

"पर मुझे तो अपने वृद्धा के पास जाना है।"

"ये लोग नही जाने देंगे, बाँध रखेंगे," शुन.शेप ने कहा।

"क्या तुम्हे भी बेचेंगे ?" राम ने आश्चर्यपूर्वक पूछा।

शुन शेप खेदपूर्वक हँसा, "हाँ, यदि वे मुझे पकडे रख सके तो अवश्य बेच देंगे।"

"तुम्हे पणि कहाँ से ले आये ?"

"मेरे पिता ने मुझे इस नाववाले के हाथ वेच दिया।"

"क्या मुझे भी वेचेंगे ?"

"अवश्य, पर रात मे जव सव सो जायेंगे तव हम वातें करेंगे," शुन-शेप ने कहा, "अभी उनमे से कोई सुन रहे होंगे। चलो, सो जायें।"

थोडी देर तक कोई कुछ वोला नहीं।

"राम, तुमने उस विभु को अच्छा ठीक किया। वह मुझे नित्य मारा करता था," शुन शेप ने कहा।

थोड़ी देर तक तो कोई कुछ वोला नहीं। कद्रू सो गया, इसलिए

शुनःशेप ने उसे गोदी मे से उतारकर नीचे सुला दिया।

"राम, तुम वीर हो। तुम्हारी आँखें तो मानो अग्नि के समान चमकती है।"

"मेरी अम्बा कहती है कि मैं इन्द्र हूँ," राम ने हँसकर कहा।

फिर से दोनो चुप हो गये।

"राम!" थोडी देर मे शुन शेप ने घबराते हुए धीरे से पूछा। उसका स्वर क्षोभ से काँप रहा था, "क्या तुम देव हो?"

"कौन जाने? लोमा कभी तो कहती है कि मै देव हूँ और कभी कहती है कि नही हूँ।"

शुन.शेप ने नि श्वास छोडा—"राम, तुम्हारे पिता का नाम जमदग्नि है तो तुम्हारे दादा का नाम क्या है?" किसी गहरे विचार मे वह व्यग्र था।

"महाअथर्वण ऋचीक।"

शुन शेप सरककर पास आया—"राम, क्या मै तुम्हे छू सकता हूँ?" शुन शेप ने इस प्रकार पूछा मानो उसे वेदना हो रही हो।

"हाँ, क्यो?" राम ने पूछा।

"तुम मुझे फिर मारोगे तो नही?"

"अरे, यह क्या कहते हो?" कहकर राम ने शुनःशेप का सिर अपने पास खीच लिया।

डरते-डरते शुन शेप पास आया और राम ने शुन.शेप का सिर अपने हाथ मे ले लिया। शुन.शेप की आँखो मे जो आँसू बह रहे थे, वे राम के हाथ पर गिरे।

"क्यो रोते हो?" उसने पूछा।

"कुछ नही," कहकर राम के हाथो मे सिर छिपाकर शुनःशेप रो दिया।

दिन-भर विमु का बडा भाई नावो की देखभाल मे रहा और इस बीच तट पर स्त्रियाँ भोजन बनाने लगी। नाववाले के लडके भी वही खेलते रहे। बड़ी नाववाला और उसके दोनो लडके सिर पर टोकरे रखकर आसपास के

गाँवो मे माल लेने-बेचने चले गये।

जव सन्ध्या हुई और तट निर्जन हुआ, तव पहले दिन के समान ही तीनो लडको को पिटारे से वाहर निकाला गया। आज उन्हे नहाने दिया गया और नाववाले का परिवार भोजन करने बैठा। फिर वडी नाववाले ने लडको को पास बैठने के लिए कहा और स्वत: उन्हे खाने को दिया। भोजन करते-करते और भोजन के पश्चात् भी सदा वडी नाववाला देश-विदेश की लम्बी-चौडी गप्पे हाँका करता था और चाहे जैसी भी वात वह कहे, उसे सुनकर उसका परिवार हँसने लगता था।

रात हुई और धीरे-धीरे वढती गयी। पणियो ने नाव चलाना प्रारम्भ किया। नाववाले का वडा लडका नाव चलाने लगा और शुन शेप आवश्यकता पडने पर उसे सहायता करने के लिए उसके पास जा बैठा। राम कद्रू के पास बैठकर उसे सान्त्वना देने के लिए रुक गया। रोकर जव कद्रू सो गया तव राम उठकर शुन शेप के पास आ बैठा। उस समय वह अकेला ही कुछ वडवडा रहा था। राम ने शुन शेप का हाथ पकडा, पर शुन.शेप ने उसे चुप रहने का सकेत किया और वडवडाता रहा। यह लड़का सुडौल, रूपवान् और कोमल था। उसका मुँह उदास था, उसकी आँखें जैसी तेजस्वी थी, वैसी दैन्यपूर्ण थी। उसके हाथ भी लोमा के हाथ के समान सुन्दर थे। राम को यह लडका वहुत अच्छा लगा। शुन.शेप की वडवडाहट जव वन्द हुई तव उसकी वडी-वडी आँखो मे आँसू भरे थे। फिर उसने राम से पूछा, "राम, क्या सचमुच तुम ऋषि जमदग्नि के पुत्र हो?"

"क्या मैं कभी झूठ वोल सकता हूँ?"

"और तुम सचमुच ऋषि विश्वामित्र को पहचानते हो?"

"अरे वे तो पिताजी के मामा होते हैं। मैं तो नित्य उनसे मिलता हूँ। और वे मन्त्र भी ऐसे ही वोलते हैं।"

"क्या तुम्हे आते हैं?"

"थोडे-से।"

"क्या तुमने महर्षि अगस्त्य और लोपामुद्रा को देखा है?"

"मैंने ? अरे लोमा तो भगवती के ही पास पढती है।"

"क्या मुझे इन सबकी बातें बताओगे ?"

"हाँ अवश्य बताऊँगा। इसमे क्या बात है ?"

राम को यह लडका बहुत आनन्दी प्रतीत हुआ। पर वृद्धा की बात के अतिरिक्त इन सबकी बातो मे उसे कैसे आनन्द आयेगा, यह विचार उसके मन मे हुए। शुन शेप तो राम की ओर देख ही रहा था। उसने डरते-डरते पूछा, "राम, क्या मै तुम्हारा हाथ पकड़ूँ ?"

"हाँ, लो यह हाथ।"

शुन शेप ने क्षण-भर आँखे बन्द करके राम का हाथ पकड रखा और फिर पूछा, "क्या मै यह हाथ आँख से लगा सकता हूँ ?" यह प्रश्न पूछते समय शुन शेप के स्वर मे इतनी नम्रता थी कि राम तो उससे लिपट ही गया—"तुम तो बडे विचित्र हो।"

शुनःशेप जड-सा बन गया और राम के कन्धे पर सिर रखकर रोने लगा।

"क्या है ? बात क्या है ?"

"कुछ नही, फिर बताऊँगा।" शुनःशेप ने देखा कि नाव चलानेवाला खर्राटे भर रहा है, इससे उसने कहा, "तुम यहाँ कहाँ से आये ?"

"मुझे वृद्धा के पास जाना है ?"

"वृद्धा कौन है ?" शुन·शेप ने पूछा।

राम ने आदि मे अन्त तक सब कथा सुना दी। बात करते-करते उसकी वाणी उग्र हो गयी और आँखे चमक पडी। जब दासो के देव के पास से नदी मे कूदने की बात उसने कही तब शुनःशेप की आँखो मे आँसू आ गये। उसने हाथ जोड़कर पूछा, "राम, क्या तुम देव हो ?"

"मै क्या जानूँ ?" राम ने कहा।

शुन शेप ने नि श्वास छोड़ा।

प्रात.काल होने पर दोनो लडके एक-दूसरे से लिपटकर नाव मे सो रहे थे—एक मस्त, निर्भय और विराट्; दूसरा क्षोभग्रस्त, सुन्दर और उदास।

पहले दिन के समान ही दूसरे दिन भी ये लड़के प्रात काल उठे, नहाये और सूर्योदय होने पर उन्हे पिटारे मे वन्द कर दिया गया। दोपहर तक वे सोते रहे। सन्ध्या-समय उन्हे पुनः बाहर निकाला गया और सवने साथ बैठकर भोजन किया। रात होने पर जब वायु चलने लगी तब फिर नावें आगे बढने लगी। वे चलते-चलते दूसरी वडी नदी के सगम तक पहुँच गये। सब नाव-वाले जागे। नावो की पाल खोल दी गयी और नावो को वडी नदी मे मोड दिया गया।

वडी नदी का पानी वेग से वह रहा था। उसके दोनो ओर पेडों की घटा छायी हुई थी। आकाश के तारे भी उसमे वरसते-से दिखायी देते थे।

इस नदी मे नाव वरावर चलने लगी, इसलिए नाववाले फिर सो गये और शुन.शेप ने पुनः वडवडाहट प्रारम्भ की।

राम ने उत्सुकता से पूछा, "शुन.शेप, यह क्या वड़वड़ कर रहे हो?"

"मैं माता की आराधना करता हूँ।"

"माता?"

"जानते नही, यह सरस्वती माता है," वडी नदी का शुन.शेप ने परि-चय दिया।

राम हर्षित हो उछला, "सरस्वती माता! तव तो भृगुग्राम आ गया।" उसकी आँखें उत्साह से नाचने लगी।

"धीरे-से, धीरे-से..." शुन.शेप ने कहा।

"क्यो?"

"यदि ये लोग जानेंगे कि तुम सचमुच ऋषि जमदग्नि के पुत्र हो तो तुम्हे लौटा ले जायेंगे।"

"क्यो?"

"ये लोग तो तुम्हे वेचने के लिए ले जा रहे है। उस दिन तुमने अपने पिता के सम्बन्ध मे जो वात कही थी उसे ये लोग झूठ मानते हैं, नही तो नावो को इस ओर लाते ही नही। ये लोग वडे पक्के है।"

"पर मुझे तो वृद्धा के पास जाना है।"

"अभी भृगुग्राम तो बहुत दूर है। चुप रहोगे तो यह नाव वही पहुँच जायेगी," शुन शेप ने कहा।

"कितने दिन मे पहुँचेगी ?"

"यह तो मैं नही जानता।"

"क्या तुम भी चलोगे ?"

"हाँ," शुन.शेप ने नि श्वास छोडा, "मेरा ऐसा भाग्य कहाँ ?" म्लान वदन पर वेदना छा गयी। वह निराश और दयनीय बना खड़ा रहा।

"क्यो ? मेरे साथ चलना न ?"

"मैं कौन हूँ, यह तुम नही जानते। अब ग्राम आने पर मुझे चला जाना पडेगा।"

"तुम कौन हो ?"

"मै कहूँ तो तुम मेरे साथ बोलना तो बन्द न कर दोगे।"

"बोलूंगा, बोलना क्यो बन्द कर दूंगा ?"

"वचन देते हो ? मैं चाहे जैसा होऊँ, फिर भी क्या तुम मुझे छुओगे ? क्या तुम अपनी बात बताओगे और मुझे मन्त्र सिखाओगे ?"

"क्यो नही ? इसमे क्या है ?"

"है इसमे···" बोलते-बोलते शुन.शेप की आँखो मे आँसू आ गये। राम उसे छोड न जाय, इस विचार से उसके ओठ काँप रहे थे।

"रोओ मत !" इस रोते हुए लडके पर दया करके राम ने कहा, "मैं तुम्हे छोडकर नही जाऊँगा। अब तो ठीक है न ?"

शुन.शेप ने डरते-डरते अस्थिर स्वर मे पूछा, "यदि मैं पतित होऊँ, मुझे शाप मिला हो, तो भी ?"

राम कुछ हिचका और विचार मे पड़ गया—"ऐसे के साथ कैसे रहा और बोला जा सकता है ?"

शुन.शेप रो पडा—"राम, क्या तुम भी मुझ पर दया न करोगे ?" इतना कहकर शुनःशेप दोनो हाथो मे मुँह डालकर हृदय-विदारक रूप से सिसकियाँ लेने लगा।

राम के हृदय मे इस दुखी सुकुमार लडके के प्रति प्रेम की ऊर्मि जागरित हुई। उसने शुन शेप को हृदय से लगाकर कहा, "रोओ मत, रोओ मत। लोमा लडकी है, पर वह भी इतना नही रोती। मैं तुम्हे नही छोडूंगा, वस अब ठीक है न? यदि तुम पतित हो तो मैं तुम्हे पवित्र करूँगा। मेरे पिताजी भी जब यही करते है तो मैं क्यो न करूँ?"

फिर शुन.शेप ने राम के कन्धे पर सिर रखकर हृदय शान्त किया—"राम, मै बहुत दुखी हूँ। तुम्हे मैं अपनी बात कल कहूँगा।"

फिर हाथ-मे-हाथ डालकर दोनो सो गये।

[9]

दूसरे दिन सबके सो जाने पर शुन शेप ने अपनी बात प्रारम्भ की।

"मेरे पिता का नाम अजीगर्त है। उनके तीन पुत्र है। उनमे मैं बिचला हूँ। मेरे पिता भृगुकुल के है। जब वे छोटे थे तब वे पहले महर्षि अगस्त्य के और फिर भगवती लोपामुद्रा के शिष्य थे और बडे तपस्वी माने जाते थे। किन्तु फिर उन्होने महर्षि अगस्त्य और भगवती लोपामुद्रा से द्रोह किया और उन्होने क्रोधित होकर शाप दे दिया। तभी से मेरे पिता की दुर्दशा प्रारम्भ हुई।

"इस शाप से मेरे माता-पिता पतित हो गये और उन्हे गाँव से बाहर निकाल दिया गया। पतित होने के कारण मेरे पिता जटा धारण नही कर सकते, किसी ग्राम मे नही जा सकते, मन्त्रोच्चार नही कर सकते और न किसी के सम्पर्क मे रह सकते हैं। पतित तो रोगी और दुबले कुत्ते के समान रहता है। जो देखता है, वह उसे मारने दौडता है।

"जब से मुझे समझ आयी तभी से हम लोग इसी प्रकार भटक रहे हैं। खाने को मिल जाता है तो खा लेते हैं। बहुत दिन तक तो वन के फल-फूल ही मिल गये तो खाकर रह जाते थे, नही तो भूखे पेट ही दिन काट देते थे। शाप और आपत्तियो के कारण मेरे पिता का स्वभाव बहुत बिगड गया। वह मुझे और मेरी माता को नित्य पीटते थे और कभी-कभी तो इतने

क्रोधित हो जाते थे कि हमे रक्त-रञ्जित करके ही विश्राम लेते थे। ऐसी हमारी दशा है।

"मैं जब छोटा था तब कितनी ही बार व्याकुल होकर मेरी माता ने हमे लेकर नदी मे डूब मरने का विचार किया था, पर इसी आशा से वह मन को मना लेती थी कि किसी-न-किसी दिन ये महर्षि लोग मेरे पिता को या कम-से-कम हम लोगो को शाप से अवश्य मुक्त करेंगे। यही सोचकर वे दुःख के दिन चुपचाप व्यतीत करने का दृढ सकल्प कर लेती थी। बहुत बार वे मेरे पिता से विनय करती थी कि महर्षियो के पास चलिये वे अवश्य कृपा करके हम पतितो का उद्धार करेंगे। किन्तु पिता टस-से-मस न हुए। वे तो हँसते ही रहते थे और कहते थे कि एक दिन वे स्वय ही महर्षियो के मुँह मे कालिख लगायेंगे।

"मेरे पिता को सुरा का बडा भारी व्यसन पड़ गया। उन्हे यदि सुरा न लाकर दे तो वे हमे मारते थे, और नही तो अपना सिर फोड़कर अपने प्राण देने की धमकी देते थे। इसलिए मेरी माता और मेरे बडे भ्राता सदा उनके लिए सुरा प्राप्त करने की विभिन्न युक्तियाँ करते रहते थे।

"किन्तु जब मेरे पिता सुरा पीते तब उनका व्यक्तित्व पूर्णतया बदल जाता था। उस समय उनकी आँखो मे अपूर्व तेज आता था। उनकी झुकी हुई कमर सीधी हो जाती थी। अगिराओ का तेज उनके मुख पर विराजता था। और तब वे देव की आराधना करने के लिए मन्त्रों का उच्चारण करते थे—इतने सुन्दर, मीठे और मधुर स्वर मे और इतने अच्छे ढंग से कि उसमे तल्लीन होकर सुनने को ही मन होता था। मैं बहुत छोटा था, तभी से मुझे मन्त्रो की मोहिनी लगी। जब मेरे पिता मन्त्र बोलते तब मेरा मन उनसे भर जाता था। मैं देवो के भी दर्शन करता। मुझे सपने मे जब देवों के साथ बात करने का अवसर मिलता था तब मेरे आनन्द का पार नही रहता था।

"मेरे पिता जिन-जिन मन्त्रो का उच्चारण करते थे वे सब मुझे तुरन्त ही स्मरण हो जाते थे। जब वे मन्त्रो का उच्चारण नही करते थे तब मुझे

छन्दों और देवों के दर्शन नहीं होते थे और दर्शन न होने पर मैं पागल-सा बन जाता था।

"मैं अपनी माता का बहुत लाडला था। जब-जब वे देखती कि मन्त्र सुनकर मैं पागल होता हूँ और वे मन्त्र तुरन्त मेरे कण्ठ में स्थिर हो जाते हैं, तब उनके हर्ष का पार नहीं होता था। और जब उन्होंने जाना कि मेरे मन्त्र सुनकर देव मुझे दर्शन देते हैं तब तो वे मुझे हृदय से लगाकर रोया करती थीं। वे तपस्वी की पुत्री थीं और मेरे पिता तो भृग्वङ्गिरस थे ही। मुझे मन्त्र-मुग्ध होते देखकर मेरी माता मुझे कहने लगीं कि मैं समस्त परिवार का उद्धार करनेवाला बड़ा ऋषि होनेवाला हूँ, और इस आशा से हमारे जीवन में उषा का उदय होने लगा।

"लगभग दो वर्ष पूर्व मेरे कुल को छिपाकर मेरी माता ने मुझे एक तपस्वी के पास विद्याध्ययन के लिए रखने की व्यवस्था की। मैं उस तपस्वी के यहाँ जाकर रहा। मैं आठ दिन ही वहाँ रहा होऊँगा कि गाँव के लोगों को मेरे कुल का परिचय मिल गया। उन्होंने आकर मुझे बहुत मारा और आश्रम के बाहर निकाल दिया।

"मेरी माता को भी उन्होंने बहुत पीटा। मार के कारण बहुत दिन तक मैं बिस्तर में पड़ा रहा, और मार खाने की अपेक्षा मैं इसी बात के दुख से अधिक तिलमिलाने लगा कि अध्ययन के द्वार मेरे लिए सदा के लिए बन्द हो गये। चाहे कितना ही पाप हो, देव चाहे कितने ही कुपित हों, तो भी पिता के पास यथाशक्य विद्या सीख लेने का मैंने निश्चय किया। किन्तु इस योजना को कार्य-रूप देना सरल बात नहीं थी। जब तक मद नहीं चढ़ता था, तब तक मेरे पिता मन्त्र नहीं बोलते थे, और मद चढ़ाने योग्य सुरा प्राप्त करना सरल नहीं था। यदि कोई यह जान जाय कि पिता या मैं दो में से कोई भी मन्त्रों का उच्चारण करता है तो हमारे प्राण चले जायँ। किन्तु विद्या प्राप्त करने की अपनी तृषा छिपाने के लिए मैं कोई-न-कोई मार्ग खोजा ही करता था।

"मेरी माता और बड़े भ्राता मेहनत करके, भीख माँगकर, कभी-कभी

तो चोरी करके सुरा प्राप्त करते और छिपाकर रखते थे, और किसी निर्जन स्थान मे मेरे पिता को पीने के लिए देते थे। सुरा पीते ही उन्हे मद चढ़ जाता था और वे मन्त्रो का उच्चारण करने लगते थे। कभी-कभी उन्हे बहुत पीने को मिलती तो वे नये मन्त्रो का भी दर्शन करते थे और तब मैं उनके पास बैठकर विद्या प्राप्त करता था। पतित होने के पहले मेरे पिता कैसे सुन्दर मन्त्रो का उच्चारण करते होगे इसका विचार मेरे मन मे बार-बार आता था। मेरे पिता ज्योही मन्त्र का उच्चारण करते कि वह तुरन्त ही मुझे कण्ठाग्र हो जाता था। फिर मैं उसको रटता था। उसका प्रत्येक स्वर साधता था। आवश्यकता पडने पर अपने पिता से मद की अवस्था मे उन मन्त्रो को फिर से बोलने के लिए कहता था और वे समर्थ अध्यापक की कला से मुझे सब मन्त्र सिखाते जाते थे।

"मुझे अपने पिता से सभी विद्या प्राप्त करनी थी, किन्तु इसके लिए तो बहुत सुरा की आवश्यकता थी। वह कहाँ से प्राप्त की जाय, यही विचार मुझे चिन्तित कर रहा था।

"एक बार बहुत दिन तक मुझे भोजन नही मिला। जहाँ जाते वहाँ लोग हमे अपमानपूर्वक निकाल देते थे। इसी स्थिति मे हमे पेड से पक्षी पकड-पकडकर खाने की अवस्था आ गयी। जब भोजन ही नही मिलता था तब सुरा कहाँ से लायी जाय, कैसे लायी जाय? सुरा न मिलने से मेरा अध्ययन रुक गया और मेरे पिता हमे बहुत मारने-पीटने लगे। एक दिन तो मेरे पिता इतने क्रोधित हुए कि मुझे और मेरी माता को अधमरा कर डाला और फिर नदी-तट पर, जहाँ पणि लोग ठहरे थे, जा मुझे बेचकर मेरे बदले मे सुरा मोल ले आये। मुझे पणि नाव मे बिठाकर ले गये।

"मेरे पिता तो विद्या के दाता थे। उस विद्या के बिना मैं पागल हो गया। मैं तो दिन-रात रोता रहता था। इससे क्रोधित होकर पणि मुझे मारने लगे। अन्त मे पाप करने का साहस करके भी मैंने देव वरुण की मन्त्रो द्वारा आराधना की। पणियो के हृदय पिघले और उन्होने नाव तट पर लगाकर मुझे छोड दिया।

"मैंने लौटकर सब बातें अपनी माता से कहीं। हम पर वरुण देव की कृपा हुई है, यह जानकर वे बहुत हर्षित हुईं और मेरे बदले में मोल ली हुई सुरा जब तक रही, तब तक अपने पिता के पास बैठकर मैंने विद्या प्राप्त की। मेरे सुख का पार नहीं रहा।

"जब सुरा समाप्त हो गयी तब पुनः हमारी दुर्दशा का आरम्भ हुआ और विद्या प्राप्त करने के साधन न रहने से मैं पुनः तिलमिलाने लगा। अन्त में किसी भी प्रकार मुझे पूर्ण विद्या प्राप्त कराने के लिए मेरी माता और मेरे भ्राता ने एक नया मार्ग खोज निकाला। किसी नये पणि के हाथ मुझे बेचकर बदले में सुरा ले लेते थे और वह सुरा छिपाकर रखते थे। पणियों के साथ मैं एक-दो दिन रहता, मन्त्र पढ़ता और देवों का आवाहन करता था, और पणि भी इस भय से मुझे छोड़ देते थे कि कहीं देव स्वतः न आ जायें। मैं लौटकर जब अपनी माता के पास जाता, तब छिपायी हुई सुरा वह मेरे पिता को देने लगती थी और मैं फिर पढ़ने लगता था।"

शुनःशेप ने म्लान-वदन यह बात कही। बात कहते हुए उसकी आँखें आँसुओं से भर जाती थीं। किन्तु अन्तिम बात पूरी करते समय उसके हृदय की श्रद्धा उसके मुख पर चमक उठी।

"इस प्रकार मैं बहुत से मन्त्र सीख गया हूँ। अब मेरे पिता भी सच्चे अध्यापक बनकर मुझे सिखाने लगे हैं। कभी-कभी मुझे भी नये मन्त्रों के दर्शन होते हैं। थोड़े वर्षों में मैं सब सीखकर, महर्षि अगस्त्य के पास जाकर सबको शाप से मुक्त कराऊँगा और फिर मैं किसी ऋषि के आश्रम में रहकर पूर्ण विद्या का सम्पादन करूँगा।"

विद्या प्राप्त करने के लिए अपने को बेचने की उत्कट इच्छा इस लड़के में देख राम उस पर मोहित हो गया—"पर तुम मेरे साथ क्यों नहीं चलते?" राम ने कहा, "मैं महर्षि से कहूँगा तो वे इस शाप से तुम्हें अवश्य मुक्त कर देंगे।"

खेदपूर्वक शुनःशेप ने सिर हिलाया। बहुत ही कठिन अनुभव से उसे अपनी अधम स्थिति का ज्ञान हुआ था—"नहीं, मुझे कोई नहीं रखेगा।

मैं पतित हूँ। मुझे कोई नही पढायेगा।" इतना कहकर आँखो पर हाथ रखकर वह रो दिया।

राम ने प्रेमपूर्वक उसके हाथ-मे-हाथ डाला—"अगिरा, रोओ मत। मुझे बडा हो जाने दो, मै ऋषि हो जाऊँगा तब तुम्हे अवश्य शाप से मुक्त करूँगा।"

"राम, क्या तुम्हे मन्त्र आते है ?"

"हाँ, थोडे-से आते है।"

यह सुनकर शुन शेप को पुनः विचार आया कि राम देव ही हैं; पर वह कुछ बोला नही।

"तुम्हारे पिता को महर्षि ने शाप क्यो दिया ?" राम ने पूछा।

शुन शेप हिचका। यह कैसे कहा जा सकता है ? "राम, यह बात मै तुम्हे फिर बताऊँगा।"

दूसरे दिन सन्ध्या-समय पणि लोग अच्छी कमाई करके आये थे, इसलिए उनका परिवार प्रसन्न था। इन लडको को भी उन्होने वहुत खाने को दिया। बडी नाववाला तो राम को देखकर बहुत प्रसन्न होता था और एक बार तो उसने प्रेम से उसका मुँह अपने दोनो हाथो मे दबा लिया। "अरे मेरे बेटे!" उसने प्रेम के उभार मे कहा। राम को उसके हाथ हटा देने की इच्छा हुई, पर शुन.शेप ने सकेत किया इसलिए उसने अपने मन को रोक लिया।

जव सब भोजन करने बैठे तब पणियो की बातचीत मे दो-चार बार जमदग्नि का नाम उनके सुनने मे आया, इसलिए वे चौकन्ने हो गये। शुन.शेप इन लोगो की सब बातें समझता था, इससे वह ध्यान से सुनने लगा और उसने राम का हाथ दवाकर खीचा।

भोजन के पश्चात् सदैव की भाँति नाव चलाने की तैयारी करने के वदले बडी नाववाला वाहर जाने की तैयारी करने लगा। अँधेरा होने को आया था, पर नाव चलाने का किसी का विचार नही हो रहा था।

"यह वडा पणि प्रातःकाल गाँव मे जानेवाला है। जान पडता है, यह

नाव तो लौट जायेगी," शुन शेप ने राम के कान मे कहा।

"लौट जायेगी, क्यो ?" राम ने पूछा।

"किसी महाजन का लडका खो गया है। यह पणि दस हजार गायें लेकर लडका लौटाने जा रहा है।"

"कद्रू तो नही है ?" राम ने पूछा।

"तुम हो, तुम। क्योकि इन लोगो की बातो मे ऋषि जमदग्नि का नाम दो-तीन बार आया है।"

राम चुप रहा। थोडी देर मे उसने शुन.शेप से पूछा, "पर इस ओर नाव यदि जाय तो मृगुग्राम पडेगा न ?"

"हाँ।"

"कितने दिन लगेंगे ?"

"आठ-दस।"

"पर यदि नाव लौट जाय तब मृगुग्राम नही पड़ेगा न ?"

"नाव लौट जायेगी तब कैसे पडेगा ?"

राम ने थोड़ी देर चुप रहकर कहा, "ये लोग सो जायें तब मैं तो चल दूंगा।'

"उस समय ? ऐसी रात मे ? उस जगल मे ?" शुन.शेप ने चकित होकर पूछा।

"इसमे क्या ? मैं चलकर मृगुग्राम पहुंच जाऊंगा।"

"चलकर ? अकेले ? यह कैसे हो सकता है ?" शुन शेप ने राम की आंखो मे इन्द्र के वज्र की चमक देखी।

'क्या तुम चलते हो ? ' राम ने पूछा।

"ऐं ! मुझे तो अपनी माता के पास जाना है।"

"अच्छा, तो मैं अकेला जाऊंगा।"

व्याघ्र, भेडिये आदि मिलेंगे तो ?'

"पर मुझे तो वृद्धा के पास जाना है।" पुन राम की आंखो मे तेज चमकने लगा। शुन शेप यह देखकर प्रभावित हुआ।

शुन.शेप को इस छोटे-से लडके मे वड़ी श्रद्धा हुई। उसको विश्वास हो गया कि यह देव ही होना चाहिए।

"तुम चलो मेरे साथ। फिर जहाँ तुम्हारा मार्ग आये तुम चले जाना," राम ने शुन.शेप से कहा।

"क्या मुझे मन्त्र सिखाओगे?" शुन.शेप के दैन्य पूर्ण स्वर मे कम्प था। उसके ओठ काँपते थे। क्या उसी के कुलपति का लडका उसके समान पतित को मन्त्र सिखायेगा?

"तुम पतित कहाँ हो, पतित तो तुम्हारे पिता हैं," राम ने निश्चय-पूर्वक कहा, "मैं मन्त्र सिखाऊँगा। वस न?"

शुन.शेप राम के पास तक वढ गया और उसका हाथ लेकर आँखो से छुआकर आँखें वन्द करके खडा रहा।

"तुम सचमुच मे वरुणदेव हो!"

राम हँसा—"यह मैं क्या जानूँ?"

"मुझे वहुत वार देवो ने आकर कहा है कि मैं तुमसे आकर मिलूँगा। क्या तुम्ही तो वह देव नही हो?" यह वोलते-वोलते शुन.शेप का स्वर करुणा से परिपूर्ण हो गया।

राम ने हाथ वढाकर शुन.शेप का सिर फिर अपनी ओर खीच लिया। "अम्वा कभी-कभी कहती है कि मैं देव हूँ," उसने आश्वासन दिया।

"तव तो तुम अवश्य होगे," शुन.शेप इस प्रकार वड़वडाने लगा मानो नीद मे हो और दोनो हाथ-मे-हाथ डालकर खड़े रहे।

मानो अभी तक स्वीकार न किया हो, इस भाव से शुन शेप ने फिर पूछा, "तुम्हे जितना आता है क्या उतना सव मुझे सिखाओगे?"

"हाँ, हाँ, अवश्य," राम ने कहा।

"राम, तुम देव-जैसे ही जान पडते हो," मानो शंका का समाधान करता हो, इस प्रकार शुन.शेप वोला।

"यह मैं नही जानता," राम ने सरलता से उत्तर दिया।

"मैं तुम्हारे साथ चलूँगा," शुन शेप ने कहा।

"पर गाँवो के पास मैं नही जाऊँगा।"

"ठीक है। सामने तट पर वह ऊँची-ऊँची घास खडी है वही हम लोग यहाँ से भागकर छिप जायेगे। यदि नाव भृगुग्राम की ओर गयी तो हम लोग लौट आयेंगे, नही तो नही आयेगे।"

"पर अँधेरे मे मुझे घास दिखायी नही देती।"

"मुझे अँधेरे मे सबकुछ दिखायी देता है।"

"क्या साँप हो तो भी?"

"वृद्धा ने जो मन्त्र सिखाया है, उसे पढते ही सॉप भाग जायेगा," महाअथर्वण के पौत्र ने आश्वासन दिया।

"कद्रू का क्या होगा?" राम ने पूछा।

"वह नही चलेगा," शुन शेप ने कहा, "और यदि हमारे साथ चलेगा भी तो अवश्य हम लोगो को पकडवा देगा।"

निश्चय करते ही चपल राम ने तुरन्त उसे कार्य-रूप दिया। दोनो के पैरो से बंधी हुई रस्सी उसने दाँतो से चबाकर काट डाली, और नाव मे से ही वह नीचे उतरा। नाव के पीछे छिपकर तैयारी करने मे लगे हुए पणियो की दृष्टि बचाकर वह थोडी दूर पर पानी के डबरे मे उगी हुई घास मे छिप गया। शुन शेप डरते-डरते उतरा और थोडी देर मे वह काँपता हुआ राम से जाकर मिला। उसे भयभीत देख राम ने उसके गले मे हाथ डाला।

थोडी देर पश्चात् नाववाले के बडे लडके को यह ज्ञात हुआ कि शुन.शेप और राम नाव मे नही हैं। पहले उसने शुन शेप को पुकारा और उत्तर न मिलने पर उसने नाव मे आकर दीया जलाकर पिटारा देखा। दोनो के न मिलने पर उसने हल्ला-गुल्ला मचाया। वडी नाववाला भी दौडकर आया। उसने फिर चारो ओर देखा, पर शुन शेप और राम कही भी दिखायी नही दिये। इसलिए अपने लडके को चपत लगाकर उसने स्वत· ही रोना-धोना मचा दिया।

"वाप रे वाप···मेरी सहस्र गायें!" नाववाला आक्रन्द करने लगा।

घास मे छिपे हुए दोनो लडके हँसने लगे।

वहुत देर तक नाव मे कोलाहल और खोज चलती रही। लडके नदी मे डूब गये या तट पर चले गये, इस विषय मे भी भिन्न-भिन्न कल्पनाएँ की गयी।

अन्त मे वड़ी नाववाले ने तट पर खोज करने की आज्ञा दी। पहले तो इसके किसी वेटे का साहस न हुआ, किन्तु जव नाववाले ने वहुत-सी गालियाँ सुनायी तव उसके दो वडे लडके लूक जला हाथ मे लाठी लेकर तट पर उतरे। घवराते हुए वे आगे वढे और धरती पर लाठी ठोक-ठोककर साहस धारण करने का उन्होने प्रयत्न किया।

कही वोल न निकल जाय इससे शुन.शेप मुँह पर हाथ धरे खडा था और भय से थर-थर काँप रहा था। राम पणि के उन लडको को अनिमेष आँखो मे देख रहा था। वे जहाँ छिपकर खडे थे उस घास की ओर पणि आये। डवरे मे उतरने का उनका साहस नही था, इसलिए वे पुकार-पुकार-कर घास मे लाठी घुमाने लगे।

शुन.शेप ज़रा खाँसा और घास हिली। पणियो ने समझा कि घास में से कोई हिंसक प्राणी निकला। वस वे चिल्लाये, लूक उनके हाथ से गिर पड़ी और घवराहट से वे नाव की ओर प्राण लेकर भागे।

नाव पर फिर कोलाहल हुआ। नाववाले ने दस सहस्र गायो की वात कहकर फिर आक्रन्द किया। पर अन्त मे थक जाने के कारण सव सो गये। सव शान्त होने पर राम शुन.शेप का हाथ पकड़कर वाहर निकला और गाँव की ओर जानेवाले रास्ते से उसे आगे वढाने लगा।

"अव वृद्धा के पास पहुँच जायेंगे," उसने हर्षित होकर कहा।

[10]

भृगु के आश्रम में अकेले हृदयभग्न कवि इस प्रकार इधर-से-उधर चक्कर लगा रहे थे मानो अपनी मृत्यु की खोज कर रहे हो। जमदग्नि ने, उनके पुत्रो तथा शिष्यो ने उन्हे वहुत आश्वासन दिया, पर वह सव व्यर्थ गया।

उनकी सृष्टि मे सूर्यास्त हो गया था और सूर्योदय की पुन. आशा न थी।

वहुत बार 'वृद्धा'-'वृद्धा' शब्द कोमल कण्ठ से उच्चरित किया गया हो ऐसा उन्हे सुनायी देता था, और वे उठकर उसी ओर जाते थे जिधर से वह ध्वनि आती सुनायी देती थी, और शब्द की ध्वनि बन्द होते ही वे ऐसे आघात का अनुभव करते मानो राम का वियोग पुन हुआ हो, और इस प्रकार हताश होकर लौट आते थे। उनकी आँखे निस्तेज हो गयी थी, कन्धे सिकुड गये थे, पैर घिसते हुए वे अपनी कुटी पर लौट आते थे। उनके चिन्तातुर पुत्र और शिष्य यह नित्य की दु.खचर्या देखकर हताश हो चले थे। वृद्धा का शरीर वज्र-जैसा था, पर जिस तन्तु से उनका जीवन बुना गया था, वह टूट गया था। अपने राम का प्रतिक्षण स्मरण करके वे यमलोक की ओर बढते जा रहे थे।

रात अँधेरी थी। सहस्रवी बार वृद्धा आश्रम की सीमा पर पहुँचकर, कान देकर अपने हृदय मे खेलती हुई मधुर कण्ठ की झकार सुनने का निष्फल प्रयत्न करके लौट आये थे।

वे थक गये थे, अत्यन्त थक गये थे। उनके जीवन का अन्त निकट आ गया था, मानो वे प्रतीक्षा करते हो कि रहा-सहा अन्तिम श्वास कब निकल जाय।

आज उनका मन विचार-सागर मे डूबा था। जब से उन्होने महा-अथर्वण के साथ आनर्त देश से प्रयाण किया तब से उनके अनुभव उनकी कल्पना मे हरे हो रहे थे। महाअथर्वण चले गये। अथर्वांगिरसो मे श्रेष्ठ उनके पिता वामदेव गये। जमदग्नि बडे ऋपि हुए। स्वत उन्होने युद्ध मे विजय प्राप्त की। इन सबसे भरतो और तृत्सुओ की कीर्ति बढी, पर भृगु निर्वीर्य और निस्तेज बने रहे।

वे रात-भर पीसते रहे पर एक चुटकी-भर आटा भी हाथ न लगा। और जिस पर उन्होने नयी आशा बाँधी थी वह—वह राम···। आत्मसयम गँवाकर वृद्ध फूट-फूटकर रोने लगे।

जहाँ बैठे थे वही वे खडे हो गये। मध्य-रात्रि की नीरवता मे भेडिये

का भयानक शब्द सुनायी दिया, और साथ ही अपने प्राणो से सयुक्त शब्द—कोमल रहते हुए भी उग्र और विकराल—दूर, अत्यन्त दूर से शान्ति भंग कर रहा था—'वृद्धा'''वृद्धा !'

वृद्ध कवि की हताश स्थिति जाती रही। भग्न हृदय मे नवजीवन का सञ्चार हुआ। उनकी निस्तेज आँखो से प्रकाश मे अग्नि-स्फुलिग निकलने लगे। एक छलाँग मारकर उन्होने बहुत दिनो से अस्पृष्ट खड्ग और भाला लिया और उछलकर बाहर आये।

"विमद'''दौडो'''दौडो !"

आश्रम मे चारो ओर हल्ला-गुल्ला सुन लोग उठे और लूक जलाकर तैयार हो गये। फिर गगन-भेदी रव हुआ। 'वृद्धा'''वृद्धा' बाल-स्वर की भयंकर झकार अधीर, रुद्ध होते हुए श्वासोच्छ्वास से कम हो रही थी। भेडिये की भी वैसी भयकर और दबी हुई गुर्राहट सुनायी दी। सबके हृदय थर्रा उठे। जिस ओर से स्वर आता था उसी ओर वृद्ध कवि दौडे—पचास वर्षो मे कभी जितने वेग से नही दौडे थे उतने वेग से। विमद तथा अन्य सब लोग भी जिसके हाथ मे जो शस्त्र आया वह लेकर उनके पीछे-पीछे दौड़ पडे।

'वृद्धा'''वृद्धा'''वृद्धा !' अवरुद्ध होता हुआ श्वास स्वर को कम्पित और भग कर रहा था। मरते हुए व्यक्ति की इसमे निराशा थी। 'घरररररर' भेडिये का अवरुद्ध शब्द भी सुनायी दिया।

दोनों स्वर एक के पश्चात् दूसरा सुनायी दिये। वृद्धा आगे दौडे—वायुवेग से। उनका श्वास बहुत वेग से चल रहा था।

बालक और भेडिये का भग्न होता स्वर एक साथ सुनायी दिया और बन्द हो गया।

जब वे आश्रम के बाहर के जगल मे पहुँचे तब भयानक शान्ति प्रसारित हो रही थी। वृद्धा का हृदय निराश हो गया। लूक आयी। तब चारो ओर खोजने लगे। अत्यन्त वेदनापूर्ण एक बाल-स्वर सुनायी दिया—"ऊँ'''ऊँ'''ऊँ !'''"

वृद्धा उछलकर वहाँ पहुँचे। चारों ओर से लूकों का प्रकाश वहाँ पड़ा। राम रक्त मे भीगा हुआ अचेत पड़ा था। उसके दोनों हाथो की उँगलियाँ इस अवस्था मे भी दम घुटने से मरे हुए भेड़िये के गले मे गड़ी हुई थी।

"ऊँ ऊँ ऊँ" पीड़ा के कारण अचेत राम के मुँह से फिर शब्द निकला। वृद्धा ने मरे हुए भेड़िये को दूर फेंका और राम को हाथ मे उठा लिया।

"मेरे राम!"

तीसरा खण्ड

शुनःशेप

[1]

राजा हरिश्चन्द्र की यज्ञशाला से दूर पत्तो की एक झोपडी मे शुन.शेप पत्तो के बीच से आती हुई सूर्य-किरणो को म्लान-वदन होकर देख, रहा था। उन्नीस वर्ष के इस सुकुमार युवक की तेजस्वी आँखो मे गम्भीर विचार-शीलता थी।

उस झोपडी के चारो ओर वाढ घिरी हुई थी, और उसके बाहर नगी तलवार लेकर सैनिक पहरा दे रहे थे। उसे 'इसी बात पर हँसी आ रही थी कि उसे भागने से रोकने के लिए इतना वडा पहरा रखा गया था। क्या वह भागेगा ? क्यो ?

यह जीवन उसके लिए पूर्णतया निरर्थक हो गया था। पतित अजीगर्त का पुत्र होने के कारण उसने कहाँ-कहाँ दु ख नही झेले ? इतने वर्षो से विद्या प्राप्त करने की अपनी तृषा अतृप्त रहने के कारण वह वहुत ही दु खित और निराश रहता था, और जो-जो कष्ट वह झेल रहा था, उनकी अपेक्षा विद्या-निधि ऋषियो द्वारा उच्चरित मन्त्र सुनते-सुनते अग्नि मे आहुति वनना उसने अधिक अच्छा समझा था।

आज उसके हृदय मे आनन्द-सागर उमड रहा था। अब ऋषियो के दर्शन करने के लिए उसे चोर के समान वाढ के पीछे छिपे नही रहना

पडेगा। इन महात्माओ द्वारा उच्चरित मन्त्र सुनने का वह अधिकार उसे प्राप्त होगा जो उत्कट इच्छा रहते हुए भी उसके लिए असाध्य रहा था। पहली बार जब वह यज्ञ-स्तम्भ मे बाँधा जायेगा तब जिन विश्वामित्र और जमदग्नि ऋषियो के दर्शनों के लिए वह तडपता था, उन्हें अपनी आँखो से देखेगा। उसे एक ऊँचे यूप से बाँधा जायेगा। उसके निकट ही यज्ञकुण्ड मे अग्निदेव विराजमान होगे। चारो शृंगो से शोभित तीन चरणो पर स्थिर दो सिर झुकाकर उसका अर्घ्यं स्वीकार करते हुए और सात हाथो से उसे बुलाते हुए अग्निदेव दृष्टिगोचर होगे। अपने पिता द्वारा उसने अग्निदेव को पहचाना था—'चत्वारि शृंगा त्रयोऽस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासोऽस्य।' और वे वृषभ के समान चिल्लाते होगे।

उसने अग्निदेव को बहुत बार देखा था। पर कल तो उन्हे यथार्थ मे यज्ञकुण्ड के सिंहासन पर विधिपूर्वक स्थापित हुए देखेगा। उसके सामने भृगुओ मे श्रेष्ठ और यदि वह पतित न होता तो उसके कुलपति, जमदग्नि बैठे होगे। राम ने इन्ही के विषय मे जो कुछ कहा था, वह उसने कण्ठाग्र कर रखा था। सामने विश्वामित्र बैठे होगे। राम के मामा, भरतो मे श्रेष्ठ मुनि विश्वामित्र का नाम सुनते ही उसका हृदय सदैव हर्ष से परिप्लावित हो जाता था। राम ने उसके विषय मे बहुत बातें की थी। इसके अतिरिक्त बहुत-से मनुष्यो के मुख से इन अधमोद्धारक के गुणगान उसने सुने थे। वरुण, अग्निदेव और सूर्यदेव के प्रिय विश्वामित्र की उसने बालपन से ही भव्य-कल्पना-मूर्ति रची थी। सुवर्णमय मेघ से सुसज्जित, उदित होते हुए सूर्य के समान प्रेरक उस मूर्ति को वह देखेगा। बहुत बार उसे स्वप्न मे और जागृति मे वे दिखायी दिये थे। किन्तु कल पहली और अन्तिम बार वह उन्हे अपनी आँखो से देखेगा। उसके पिता—महर्षि अगस्त्य और लोपामुद्रा के शिष्य—यदि पतित न हुए होते तो आज वे भी···

उसने नि.श्वास छोडा, और कदाचित् वह विराट् बटु-बटुक बने हुए देव के समान उसके ही कुलपति भृगुश्रेष्ठ जमदग्नि का पुत्र राम भी वहाँ हो तो···

शुन.शेप ने आँखे बन्द कर ली। राम ने ही जंगल के भयंकर अन्धकार मे से उसे प्रकाश के मार्ग पर प्रेरित किया था। उसने ही विद्या के बिना तडपते हुए पतित को ऋषियो के सस्कार का पय पान कराया था। शुन शेप की कल्पना बारह दिन के राम के साथ के साहचर्य पर कुण्ठित हो गयी थी। राम का स्मरण तो उसके लिए तृषित चातक के मुख मे पडते हुए जलबिन्दु के समान था।

यदि वह हो तो…

फिर सब उसे अग्नि मे होमेगे—अर्घ्यार्ह महर्षियो के देखते हुए। उनके मन्त्रो का स्वर उसके कानो मे गुञ्जायमान होगा। तब असुर वरुणदेव—देवाधिदेव—उसका, एक अधम का—दो हाथ फैलाकर सत्कार करेंगे और वह परम तेज के स्वामी के चरणो मे बैठेगा।

[2]

राम से अलग होकर शुन शेप ने अपने माता-पिता के पास जाने का विचार किया, पर ऐसा करना उसे अच्छा नही लगा। वह धीरज खो बैठा और रोने लगा।

अपने क्षुद्र जीवन के प्रति उसकी आसक्ति राम के संसर्ग से चली गयी थी। वह ऋषि-कुमार नही, वरन् पतित का पुत्र था। जिन उन्नत अभिलाषाओ का उसने सेवन किया था वे उसने राम मे मूर्तिमान् हुई देखी। राम कैसा था ? रूपवान्, तेजस्वी, निर्भय, कभी उग्र और भयकर, छोटा होते हुए भी वडे की निर्बलता दूर करता था, राजा, ऋषि और देवो के सहवास मे विचरण करता था, विद्या, तप और विनय से परिपूर्ण था, अन्धकार मे से उसे प्रकाश मे ले जाता था, उसका जीता-जागता देव था।

भृगुग्राम तक वह राम के साथ ही आया था। भृगुग्राम थोडी ही दूर पर रह गया था कि रात हो गयी, इसलिए रात को साथ ही सो रहने की तथा प्रात अलग होने की सूचना शुन.शेप ने दी।

पर वृद्धा से मिलने के लिए अधीर राम ने स्वीकार नही किया और

उसे मृगुग्राम की ओर जाते देखकर शुनःशेप अकेला ही लौटा। जहाँ उसके माता-पिता थे, वही उसे जाना था। अश्रुपूर्ण आँखो मे उसने भृगुग्राम की ओर दृष्टि डाली। जिस सृष्टि को अन्धकारपूर्ण कल्पना की आँख से उसने देखा था और जिसकी रमणीयता राम के शब्दो के प्रकाश मे स्पष्ट हुई थी, उसी सृष्टि को उसने यहाँ देखा—परुष्णी का तट, ऋषि जमदग्नि का आश्रम और ऋषि जमदग्नि—वह यदि पतित न होता तो उसके कुलपति विद्याविलासी राम को पढाने के लिए आतुर पिता और अम्बा उसको भी प्यार करते।

आश्रम के घोडे, कुत्ते, हिरण, वृद्ध कवि चायमान 'वृद्धा', विमद जो सबकुछ सिखाता था और मामा विश्वामित्र, जो दूसरे आश्रम मे रहते थे, जिनके चरणो मे जमदग्नि के अतिरिक्त और सब अध्ययन करने के लिए बैठते थे और जिनकी कृपादृष्टि पर राजाओ के राज्य निर्भर रहते थे, और मुनि अगस्त्य तथा लोपामुद्रा, जैसा उसके पिता ने कहा था, वैसे दुष्ट नही वरन् भव्य, जिनके विषय की बात राम भी धीरे से सम्मानपूर्ण स्वर मे करता था और लोमा, जिसके सम्बन्ध की बात राम बार-बार करता था, जो गडबड करती थी, किसी के दबाव मे नही आती थी, राम को बहुत सताती थी, उसके बाल खीचती और उसके साथ घोडे पर बैठकर घूमती थी। शुनःशेप को ऐसा भास होने लगा मानो उसके हाथ भी उन सुन्दर हाथो से खीचे जा रहे थे।

शुनःशेप ने आँखें बन्द करके राम की सब बातें सुनी थी। अपने वास्तविक ससार की अधमता भूलकर वह इस समय राम के शब्दो की स्मृति द्वारा सृजित मेघ-धनुष की सृष्टि मे विहार कर रहा था।

राम से अलग होने पर वह समझा था कि उसके चारो ओर अन्धकार ही था। वह स्वत. अधम, पतित व जन्तु से भी अधिक क्षुद्र था। वह राम के समान सुन्दर बाल नही रख सकता था, वह किसी शुभ कार्य मे भाग नही ले सकता था, कोई उसका स्पर्श करे तो उसे स्नान करना पडता था। वह किसी ऋषि के आश्रम मे नही जा सकता था, चोरी-छिपे से यदि

मन्त्रोच्चार सुन ले तो महर्षि अगस्त्य के शाप के प्रताप से वह मर जाय या कोई मार डाले। वह तो अभिशप्त अजीगर्त का पुत्र था—पतित, अधोगत, बहिष्कृत।

उसका मन हुआ कि किसी ऐसे दूर प्रदेश मे भागकर चला जाय जहाँ नाम बदलकर किसी ऋषि के पास वह अध्ययन के लिए रह सके। किन्तु जाति-बहिष्कृत पतित के भटकते हुए पुत्र को कौन अपने पास रखेगा ? और उसके पिता और उसकी स्नेहमूर्ति माता का क्या होगा ?

रोते-रोते वह घर की ओर मुडा। जब बहुत दिन भटकने के पश्चात् वह माता-पिता से मिला तब वह अपनी नयी आँखो से पुराना ससार देख न सका। एक गाँव के श्मशान से थोडी दूर डोम की झोपडी के पास ही उसका ससार था। दुबला, मद और द्वेष से परिपूर्ण आँखो से उसकी ओर देखनेवाला, मैला, निस्तेज एक पुरुष जो उसका पिता था; उसे लिपटकर रोनेवाली, फटे हुए वल्कल और रूखे बालवाली अभागी स्त्री, जो उसकी माता थी, और उसे देख-देखकर नाच उठनेवाले दो लडके, जो उसके भाई थे—यह था उसका ससार। उसके माता-पिता और भाई श्मशान-भूमि मे अपना जीवन बिता रहे थे। दिशाएँ उसकी भयकर जीवन-सृष्टि थी। राम के साहचर्य से कल्पना मे स्रजित सृष्टि और इस वास्तविक सृष्टि के भेद का विचार करके उसे आघात लगा और घायल मृग के समान वह तडफडाने लगा। इस प्राणवेधक ज्ञान से उसके आँसू सूख गये। स्वत तटस्थ प्रेक्षक के समान उसे अपने ऊपर किये अत्याचार का भी ज्ञान नही रहा। वह बहुत दिन के पश्चात् आया, इस अपराध के लिए उसके पिता ने उसे बहुत मारा। उसने क्या-क्या देखा और क्या कष्ट सहे, यह सब कहने का उसकी माता ने बार-बार आग्रह किया, पर राम जिस सृष्टि मे विहार करता था और जो उसकी कल्पना मे व्याप्त थी, उसमे माता को पैर रखने देकर अधम बन जाने के भय से वह चुप रहा। उसकी माता ने उसे गालियाँ दी, पर उसने कोई ध्यान न दिया। उस सृष्टि मे सुवर्ण रग का प्रकाश सदा प्रसारित होता था। एक स्नेहमयी, सौन्दर्यमयी 'अम्बा' थी। परिणामत. उसकी माता के

और उसके बीच जो एक तार था वह भी टूट गया।

शुन.शेप का मानस बदल गया। ऋषियो के जीवन से उसकी कल्पना ओत-प्रोत हो गयी थी। वह निरन्तर उन्ही चित्रों का ध्यान करता रहता था, और उस ध्यान मे से जागना उसे अच्छा नही लगता था। इससे उसका रहन-सहन बदल गया। वह जब चुपचाप घूमता तब राम की बोलचाल की रीति का स्मरण करके अपनी रीति भी वैसी ही बनाने का प्रयत्न करने लगा। उसने योग्य रीति से नियमपूर्वक स्नान करना प्रारम्भ किया, और यथासमय चुपचाप देव को अर्घ्य देने लगा। कल्पना का आश्रम बनाकर उसने यथासम्भव बाल-तपस्वी का जीवन व्यतीत करने का प्रयत्न प्रारम्भ किया। पिता और राम द्वारा सिखाये हुए मन्त्रो को वह घोट-घोटकर गाने लगा। वह जब मन्त्रो का उच्चारण करता था तब उसकी आँखो के सामने राम की मूर्ति आ खड़ी होती थी और वह उसे देव मानकर अर्घ्य देता था।

फिर एकाएक उसके पिता ने उत्तर की ओर जाने का निश्चय करके प्रयाण प्रारम्भ किया। वे ज्यो-ज्यो उत्तर दिशा मे आगे बढ़ने लगे, त्यों-त्यो आर्यों के ग्राम कम होते गये और दासो के निवास-स्थान आने लगे। ज्यो-ज्यो सरस्वती का तट दूर होने लगा, त्यो-त्यो अजीगर्त का ढंग बदलता गया। पहले वे पैदल चलते, भीख माँगते और कभी-कभी चोरी भी करते थे, परन्तु अब अजीगर्त दासो के आवास मे जाकर ऋषि का ढोग करने लगा। अज्ञानी दास उनका सत्कार करने लगे। यदि पतित मुक्त कण्ठ से मन्त्र बोलेंगे तो देव रूठेंगे, ऐसा मानकर शुन.शेप और उसकी माता दोनो दुखी होते थे, किन्तु अजीगर्त और भी अधिक निर्लज्ज होता गया।

वितस्ता नदी को पार करके पर्वतो मे से होकर कुम्भा नदी की ओर वे आगे बढने लगे। फिर अजीगर्त ने पतित के सब चिह्न छोड़ दिये। उसने गाडी रखी, खुलकर दासो के आवास मे जाने लगा और उनका आतिथ्य स्वीकार करने लगा।

आर्यों की बड़ी और गन्दी बस्तियाँ दूर रह गयी। सरस्वती माता का तट भी पीछे रह गया। अजीगर्त को पहचाननेवाला अब कोई मिल भी नही

सकता था। इस प्रकार इस निर्लज्जता मे अजीगर्त ने पाँच वर्ष व्यतीत किये।

इस सब समय मे शुन शेप का दुख बढता जाता था। उसका मन आर्ष जीवन मे लगा था। उसके लिए व्रत रखने की अधीरता उसके मन मे तीव्र होती जा रही थी। अगस्त्य के शाप का निराकरण करने का वह सदा विचार किया करता था। और कही स्वत पाप करके शाप का विशेष भाजन न बन जाय, इस भय से वह काँपता रहता था।

जब उसके पिता ने निर्लज्जता से देव और ऋषियो की आज्ञा का उल्लंघन करना प्रारम्भ किया तब उसकी आत्मा को तीव्र वेदना हुई। उसके पिता उसके विषय मे कुछ-कुछ कहकर लोगो का आतिथ्य माँग लेते थे, यह देखकर पिता के प्रति उसका मान कम हो गया और उनके साथ रहना उसके लिए कठिन हो गया। अन्त मे उसने इस असत्य जीवन का अन्त कर डालने का सकल्प किया। प्राण भले ही जायँ किन्तु ऋत का लोप न हो, इस सकल्पानुसार वह अजीगर्त के पास से दूर जीवन विताने लगा। अपने कुटुम्बीजनो के सामने मन्त्रोच्चार न करने का उसने प्रण कर लिया, आर्यो के साथ बोलना बन्द कर दिया। इस प्रकार महर्षियो ने जो शाप दिया था उसका बराबर पालन करना वह अपना धर्म मानने लगा। उसके निर्लज्ज कुटुम्बीजन उसे शत्रु जान पडने लगे। प्रात काल उठकर उन्हे देखने और उनके साथ रहकर क्षुद्र व्यवहारो का अनुसरण करने की अपेक्षा मृत्यु का आलिंगन करना उसने ठीक समझा। किन्तु वह स्वत. अधम था, पतित था, अभिशप्त अजीगर्त का पुत्र था। यमदेव के भयकर सर्वदर्शी कुत्ते उसे पितृ-लोक मे भी जाने नही देंगे, यह भी उसे भय लगा। मृत्यु पाकर भी वह पितरो के साथ—भृगु, अगिरा, उशनस, च्यवन आदि परम तेजोमय पितरो मे भी वह नही मिल सकेगा। इस प्रकार न उसे जीने की आसक्ति रही और न मृत्यु का आलिंगन करने की। इस उलझन के कारण उसका प्रतिक्षण विषमय हो गया।

इतने मे जहाँ वे रहते थे वहाँ एक नयी, विचित्र बात हो गयी।

सिन्धु-नदी के उत्तर तट पर बसे हुए इक्ष्वाकु वंश के राजा हरिश्चन्द्र नरमेध यज्ञ करनेवाले थे, और ऋषि विश्वामित्र तथा जमदग्नि ने नरमेध यज्ञ करवाना स्वीकार किया था। राजा हरिश्चन्द्र के पुत्र नही था। वरुण से उन्होने पुत्र माँगा और देव ने पुत्र दिया, किन्तु इस शर्त पर कि जब वह बडा हो जाय तब देव को बलिदान कर दिया जाय। पिता ने वचन दे दिया। उन्हे पुत्र हुआ। उसका नाम रोहित रखा गया। वह जब बडा और रूपवान् हुआ तब देवो ने उसका बलिदान माँगा। ऐसे सुन्दर पुत्र को जीवित होमने के लिए असमर्थ राजा ने उसका बलिदान देना अस्वीकार कर दिया। देव क्रोधित हुए, शाप दिया, हरिश्चन्द्र को भयकर व्याधि हुई और उनका पेट फूलने लगा।

देव के शाप से काँपते हुए राजा ने अन्त मे वरुणदेव को प्रसन्न करने के लिए पुत्र की आहुति देने की तैयारी की। किन्तु रोहित को जब इस बात का पता चला तब वह मृत्यु के भय से जगल मे भाग गया और छ वर्ष तक छिपता-घूमता रहा। किन्तु जिसकी दृष्टि पर्वतो और नदियो के पार जा सकती है उस सर्वदर्शी वरुणदेव से कुछ अज्ञात या छिपा नही रह सकता था। प्रतिज्ञा पालने के लिए हरिश्चन्द्र को तैयार न देखकर वरुण ने उन्हे दण्ड देने का दृढ निश्चय कर लिया और हरिश्चन्द्र की पीडा बढती गयी।

रोहित को जब पता चला कि उसकी कायरता के कारण उसके पिता असह्य पीडा भोग रहे है, तब अपने प्राण देकर भी पिता को बचाने का उस पितृभक्त ने सकल्प किया। वह वन से लौट आया और नरमेध यज्ञ आरम्भ करके उसने अपनी आहुति देकर देव को प्रसन्न करने के लिए प्रार्थना की। हरिश्चन्द्र ने देव की आराधना की और कृपालु देव ने अन्त मे हरिश्चन्द्र से कहा कि रोहित के बदले मे यदि वह किसी अन्य लड़के की आहुति दे तो भी देव उन्हे शापमुक्त करेगे।

दासो के भयकर गुरुओ के समान नरमेध यज्ञ करने के लिए कोई आर्य-ऋषि तैयार न थे। अन्त मे राजा हरिश्चन्द्र ने विश्वामित्र की शरण ली और जब इन महाभाग ने नरमेध यज्ञ करवाना स्वीकार किया तब

समस्त आर्यावर्त चकित हो गया।

अपने पुत्र रोहित के बदले यज्ञ मे होमने के लिए राजा हरिश्चन्द्र एक युवक खोजने लगे। चारो ओर उनके दूत उसकी खोज करने लगे। अजीगर्त जहाँ रहता था, उसके निकट के ग्राम मे हरिश्चन्द्र के बहुत-से ऐसे दूत ठहरे हुए थे। यह बात जब शुन शेप ने सुनी तब उसे ज्ञात होने लगा कि उसकी निराश अधमता का अब अन्त आ गया।

अँधेरी गुफा मे बन्धनो से जकडे हुए मनुष्य को प्रकाश दीखने पर जैसा उल्लास होता है वैसा ही शुन शेप को हुआ। यज्ञ के यूप पर चढकर कभी न देखी हुई वेदी मे, सपने मे देखे हुए और केवल सज्ञा-स्मृत ऋषियो का मन्त्रोच्चार सुनते हुए अग्नि मे होमे जाने की अपेक्षा, जीवन की इस असह्य दशा से मुक्त होने का अन्य कौन-सा सुन्दर मार्ग उसके लिए हो सकता है ? वह महर्षि विश्वामित्र और जमदग्नि के दर्शन पायेगा, उनकी वाणी सुनेगा, और उनके आह्वान से आये हुए वरुणदेव के दर्शन करेगा।

दूसरे दिन सवेरे ही उठकर वह पास के गाँव मे हरिश्चन्द्र के नायक से मिला। ऐसा सुन्दर और विनयशील युवक यज्ञ मे होमे जाने के लिए स्वेच्छा मे आता है, यह देखकर वह नायक बहुत प्रसन्न हुआ। शुन शेप ने उसे अजीगर्त से मिलने के लिए कहा।

जब अजीगर्त ने नायक और शुन शेप की बातें सुनी तब वह बहुत गम्भीर बन गया। उसने पूरा दिवस विचार मे बिताया। दूसरे दिन वह प्रसन्नचित्त दिखायी पड़ रहा था, उसकी आँखें लोभ से चमक रही थी और वह बडबडा रहा था—"विश्वामित्र ऋषि आते है।"

अन्त मे अजीगर्त नायक के साथ जाकर राजा हरिश्चन्द्र से मिला और सौ गायो के बदले उसने शुन शेप को बेच दिया। और राजा हरिश्चन्द्र ने बड़े ही भक्तिभाव से नरमेध यज्ञ का समारम्भ प्रारम्भ किया।

[3]

सिन्धु-तट पर राजा हरिश्चन्द्र का नगर था। राजा हरिश्चन्द्र राजगृह मे

बिस्तर पर पडे थे। उनको देखने से ऐसा स्पष्ट जान पड़ता था कि उनकी मृत्यु अत्यन्त निकट ही है। उनका पुत्र रोहित बिस्तर के पास बैठा हुआ वरुणदेव के क्रोध की बलि बने हुए पिता की इस स्थिति को साश्रुनयन देख रहा था।

राजा हरिश्चन्द्र की नाडी हाथ मे थामे ऋषि जमदग्नि बिस्तर के पास बैठे थे। उनका गम्भीर मुख भावरहित था।

जमदग्नि के लम्बे-चौडे शरीर के सामने विश्वामित्र अत्यन्त छोटे जान पडते थे। उनके अत्यन्त गौरवर्ण भाल पर चिन्ता की रेखाएँ व्याप्त थी। अपना गठीला और सुकुमार दाहिना हाथ वे अधीरता से घुटने पर इधर-से-उधर फेर रहे थे। कभी-कभी अपनी सुन्दर दाढी पर भी वे अपना हाथ फेर लेते थे। उनकी ममतामय सुन्दर आँखे बाट जोहते-जोहते थक गयी थी और दयनीय जान पड रही थी।

वे इस समय व्याकुल थे। देवों ने उनके लिए तेज के द्वार बन्द कर दिये थे। ऋषि जमदग्नि ने सिर हिलाकर विश्वामित्र से कहा, "भामा, राजा का स्वास्थ्य बिगडने लगा है। थोडी देर मे उनके प्राण चले जायेंगे।"

"राजा वरुण को मेरे हाथ से यज्ञ की पूर्णाहुति करानी ही है।" विश्वामित्र की आँखें ऐसी लगती थी मानो दूर स्तब्ध हो गयी हो।

"हाँ, कल पूर्णाहुति करानी ही पडेगी." रोहित ने कहा। ऋषि विश्वामित्र यज्ञ की पूर्णाहुति करने में क्यों विलम्ब कर रहे थे, यह उसकी समझ मे नही आ रहा था।

गम्भीरवदन से विश्वामित्र ने आकाश की ओर देखा।

"हाँ," उन्होने धीरे से कहा—"कल प्रातः मृगा के उदित होने पर। देव, आपकी जैसी आज्ञा!" उन्होने कहा।

"शुन.शेप का वध करनेवाला क्या कोई मिला ?" जमदग्नि ने पूछा।

"मैं अभी खोज निकालता हूँ," रोहित ने कहा।

जब दोनो ऋषि अपने निवास-स्थान पर जाने लगे तब दोनो के हृदय भारी थे। मार्ग मे बहुत देर तक कोई एक शब्द भी नही बोला।

जब से विश्वामित्र भरतो का राज्य-सिंहासन छोडकर ऋषि बने और सुदास राजा का पुरोहित-पद स्वीकार किया तब से देवो ने उन पर कृपा-दृष्टि की थी। राजा उनके चरणोमे आकर झुकते थे। आर्य और दस्यु विशुद्ध बनकर उनकी प्रेरणा प्राप्त करते थे। उनके प्रताप से तृत्सु और भृगु जातियो ने उत्तरोत्तर वृद्धिगत होकर शक्ति प्राप्त की थी। दस्यु भी उनके प्रयत्न से सस्कारी बनते जाते थे।

गत बीस वर्षों मे वे कभी-कभी अपने निश्चित ध्येय की प्राप्ति मे असफल नही हुए थे। उन्होने सरलता से आर्य ऋषियो मे श्रेष्ठत्व प्राप्त किया था। अधमोद्धारक के रूप मे सब उनकी पूजा करते थे। सूर्य भगवान् की किरणो के समान उन्होने सब दिशाओ मे अपने सस्कार प्रसारित किये थे। जहाँ-जहाँ अश्रुपात होता था वहाँ-वहाँ उनका स्नेहमय हृदय दुख दूर करने के लिए दौड जाता था।

उनसे आर्यावर्त को जो प्रेरणा प्राप्त हुई थी उसका मूल यज्ञ था। उन्होने सिखाया था कि यज्ञ ही देवो को पृथ्वी पर लाने का परम समर्थ साधन है। यज्ञ ही सुख और शान्ति का दाता है, वही मानवो और धेनुओ का रक्षक है, वही इन्द्र को बल देकर वृत्र का सहार करनेवाला साथी है, वही सृष्टि को नवपल्लवित करनेवाले पर्जन्य का परम सखा है, यज्ञ ही राजा वरुण के ऋत को समझानेवाला और प्रवर्तित करनेवाला है।

ये सब रहस्य बीस वर्ष तक तपस्या करने के पश्चात् विश्वामित्र स्वय समझे थे और उन्होने सबको समझाये थे। उनके असख्य शिष्यो ने यही रहस्य प्रत्येक जनपद मे सिखाये थे।

समस्त सप्तसिन्धु मे विश्वामित्र की घोषणा गुञ्जायमान हो रही थी कि मनुष्य-मनुष्य मे भेद नही है; आर्य और दास भिन्न नही है; सच्चा भेद तो यज्ञ करनेवाले और यज्ञ न करनेवाले मे ही है।

जव वरुणदेव ने राजा हरिश्चन्द्र से उनके पुत्र का वलिदान माँगा और जव हरिश्चन्द्र विश्वामित्र के पास नरमेध कराने की प्रार्थना करने आये, तभी विश्वामित्र की सच्ची कसौटी प्रारम्भ हुई। यदि वे नरमेध यज्ञ

कराते हैं तो इतने वर्षों से उनके सिखाये हुए सत्यो और रहस्यो का वे स्वतः ही द्रोह करते है। और यदि वे नही कराते है तो उनके रहस्यो, सत्यो तथा स्वत उन्ही को असत्य ठहराने के लिए मानो देव ने नरमेध यज्ञ की माँग की थी। इस प्रकार दोनो प्रकार से उनके किये-कराये पर पानी फिरने की सम्भावना थी।

ऋषियो मे श्रेष्ठ विश्वामित्र को यह धर्म-सकट अपनी कठिन कसौटी के समान दिखायी दिया।

विश्वामित्र ने विनयपूर्वक देव की प्रार्थना की, किन्तु देव टस-से-मस न हुए। नरमेध के बिना हरिश्चन्द्र को ठीक करना उन्होने स्वीकार नही किया और राजा हरिश्वन्द्र का स्वास्थ्य दिन-पर-दिन गिरता चला जा रहा था।

अन्त मे अपनी स्त्री और पुत्र, रेणुका और जमदग्नि, शिष्य और राजा सबको लेकर व्रत मे निश्चल ऋषि दृढव्रत होकर राजा हरिश्चन्द्र के यहाँ आ ही गये।

जब यह बात चली कि राजा हरिश्चन्द्र के यहाँ विश्वामित्र नरमेध यज्ञ कराने जा रहे है, तब समस्त आर्यावर्त मे खलबली मच गयी। वसिष्ठो के आश्रमो मे उनका उपहास किया जाने लगा। इस यज्ञ कराने मे उन्हे विश्वामित्र का अध पतन स्पष्ट दिखायी देने लगा।

किन्तु विश्वामित्र अपने निश्चय पर अटल थे। यदि देवता भी मनुष्य की वलि लेते है तो विश्वामित्र का उपहास होता है। यदि देवता बलि लिये बिना ही हरिश्चन्द्र को जिला देते है तो यह निश्चित है कि वरुणदेव से जो विश्वामित्र ने करा लिया वह कोई भी ऋषि नही करा सका।

इस विचित्र नरमेध यज्ञ को देखने के लिए गाँव-गाँव से राजा, तपस्वी और सामान्य जन हरिश्चन्द्र के यहाँ आ गये।

यहाँ आकर ऋषि विश्वामित्र ने उग्र तप आरम्भ किया। उपवास, जप, यज्ञ, मन्त्रोच्चार इत्यादि द्वारा उन्होने देव की प्रार्थना की, किन्तु हरिश्चन्द्र का स्वास्थ्य नहीं सुधरा।

यज्ञ-कार्य मे एक और कठिनाई उपस्थित हुई। शुन.शेप को यज्ञ के यूप मे बाँधने के लिए कोई तैयार नही था। क्या देव सहायता के लिए आयेंगे ? क्या देव राजा को रोगमुक्त करके विश्वामित्र की टेक रखेंगे ? किन्तु देव की इच्छा कुछ ओर ही जान पडी। उन्हे ज्ञात हुआ कि जिस दुष्ट पिता ने यज्ञ मे होमने के लिए पुत्र को वेचा था वह स्वय सौ गाये अधिक लेकर पुत्र को यज्ञ-स्तम्भ से बाँधने को तैयार था।

विश्वामित्र इस बात से और भी अधिक गम्भीर वन गये। एक ओर राजा हरिश्चन्द्र का स्वास्थ्य दिन-पर-दिन गिरता जा रहा था और दूसरी ओर यज्ञ की पूर्णाहुति का दिन भी आ पहुँचा था। अब तो बीच मे केवल एक रात ही बची थी और ऐसा स्पष्ट ज्ञात होता था मानो देव नर-वलि लेने के लिए अधीर हो गये हो।

विश्वामित्र और जमदग्नि चुपचाप आश्रम के मार्ग पर चल रहे थे। सामने से दो स्त्रियाँ आयी। एक थी विश्वामित्र की पत्नी रोहिणी—महर्षि अगस्त्य की पुत्री। भरतो की माता के उपयुक्त उसका तेज और गर्व था। अकल्प्य आचार और संकल्पवाले पति का सेवन करके उनके द्वारा उत्पन्न की हुई कठिनाइयो को दूर करके उसके स्वभाव मे काठिन्य आ गया था और उसके चिन्तातुर मुख पर इस समय भी वह स्पष्ट दिखायी दे रहा था। दूसरी थी जमदग्नि की स्त्री रेणुका—छोटी-मोटी, रूपवती और हँसमुख। उसके गोल मुख पर अम्वा का—आँसू पोछती हुई, सहलाती हुई, स्नेह से हृदय वश मे करती हुई माता का—सर्वविजयी भाव स्पष्टतया दृष्टिगोचर होता था।

ऋषियो के मुख पर गाम्भीर्य देखकर दोनो स्त्रियाँ विना वोले साथ-साथ चलने लगी।

थोडी देर मे प्रेम से जमदग्नि ने विश्वामित्र के कन्धे पर हाथ रखकर उनके हृदय मे उठते हुए प्रश्नो का उत्तर दिया।

"यदि देव की ऐसी ही इच्छा है तो हम क्या कर सकते है ?"

विश्वामित्र ने निःश्वास छोडा—"जमदग्नि ! इसका यही अर्थ होता

है कि मेरे तप की इतिश्री हो गयी।"

"ऋषिवर !" रोहिणी ने कहा, "देव की इच्छा के अधीन होने मे तप की इतिश्री कैसे होती है ?"

"रोहिणी !" विश्वामित्र ने खिन्न स्वर मे कहा, "तुम सब मेरे मन को फुसलाना चाहती हो। पर मैं सबकुछ स्पष्ट समझता हूँ।"

"मामा !" जमदग्नि ने कहा, "इस प्रकार आत्म-श्रद्धा गँवाने की क्या आवश्यकता है ? इस प्रकार भी देव को कोई नया उत्कर्ष साधना हो तो !"

"जमदग्नि !" विश्वामित्र ने चारो ओर दृष्टि डाली। मार्ग निर्जन था, इसलिए वे खड़े हो गये और वोले, "सच्ची बात बताऊँ ?"

"अवश्य वताइये," रेणुका ने हँसकर कहा। उसके कण्ठ मे आश्वासन की सरिता वह रही थी।

"मेरी आत्म-श्रद्धा न जाने कब की चलायमान हो गयी है। रेणुका, देव मुझे छोड़ गये है," विश्वामित्र ने गद्‌गद कण्ठ से कहा।

"यह क्या कहते है ? देवो ने हमे क्या-क्या नही दिया है ?" रोहिणी ने पूछा।

थोडी देर तक विश्वामित्र चुप रहे। उनका हृदय इस समय भावोर्मि से व्यथित हो गया था।

उन्होने कहा, "रोहिणी, देवो ने बहुत-कुछ दिया है, यह ठीक है। भरतो-जैसी महान् जाति का राजपद दिया, अगस्त्य और लोपामुद्रा जैसे गुरुजन दिये, आर्याओ मे अद्वितीय तुम-जैसी स्त्री दी, जमदग्नि और रेणुका जैसे स्वजन दिये, जब राजपद छोड़ा तब तृत्सुओ का पुरोहितपद दिलाया, राजा दिवोदास जैसा यजमान दिया, शिष्य दिये, धेनुएँ दी, अश्व दिये, विजय दी। शेष क्या वचा ?···पर यह सब क्या मुझे दिया है ? ऋषि भरद्वाज की विद्या तक मैं कहाँ पहुँचा हूँ ? मुनियो मे श्रेष्ठ वसिष्ठ के तप का मैं कहाँ स्पर्श कर सका हूँ ? यह सब मुझे अपने लिए नही मिला, यह सब राजा वरुण ने अपना सत्य स्थापित करने के लिए प्रदान किया है।" धीरे-

धीरे मानो अन्तःकरण का मन्थन करते हुए वाक्य निकालते हो, इस प्रकार ऋषि बोले।

"और आपने भी सत्य की स्थापना करने के लिए क्या कुछ कम तप किया है? आपने तो तप से नयी सृष्टि का सृजन किया है। आपके कारण तो कितने ही तर गये?" जमदग्नि ने कहा।

"और आज कितनो ही ने आपके ही प्रताप से नया आर्यत्व प्राप्त किया है।" रोहिणी ने कहा।

अपने पति के हृदय मे उठनेवाली भावोर्मि के झझावातो से रोहिणी अपरिचित थी। उसका विचार था कि यह समझ मे न आनेवाले प्रतापी व्यक्ति का कोरा पागलपन है। हृदय की ऊर्मियो के प्रचण्ड झझावात मे स्थित ऋषि की महत्ता के मूल को वह नही समझती थी। इन बवण्डरो को बन्द करने योग्य सहृदय हो नही सकती थी। कड़े पर्वत के ऊपरी छोर को भिगोये बिना ही जिस प्रकार उछलता हुआ जल उस पर से बह जाता है, उसी प्रकार विश्वामित्र का हृदय-मन्थन उसके व्यवहार-कुशल स्वभाव पर से बह जाता था।

"रोहिणी!" विश्वामित्र खिन्न स्वर से बोलने लगे, "इन सबका यश मुझे न दो। सब यश उस ऋत के स्वामी का है जो आज मुझसे नरमेध करवा रहे है।"

"तो फिर इस प्रकार खिन्न क्यो है?" जमदग्नि ने पूछा।

"जमदग्नि, तुम क्या नही जानते? मै जिस सत्य का आचरण कर रहा था, वह आज असत्य प्रमाणित हुआ है। देव ही मेरे द्वारा नरमेध करा रहे हैं। उग्रकाल के सामने बलि देने के लिए भैरव ने मुझे यूप से बाँधा था, और आज शुन.शेप की बलि देने के लिए मैं तैयार हुआ हूँ। हम दोनो मे क्या अन्तर है? मेरा आर्यत्व कहाँ रह गया है? और वरुणदेव तथा उग्र-काल के बीच अन्तर क्या रह गया है? आज तक यज्ञ के जो-जो रहस्य मैंने देखे और जिनके विषय मे मैं बोला, वे सब असत्य ही प्रमाणित हुए न?"

"सब आर्य आपकी आज्ञा शिरोधार्य करते है," रोहिणी ने कहा, "एक

मुनि वसिष्ठ के अतिरिक्त।"

"मेरे मन को समझाने का श्रम न करो। दो मार्ग अलग ही रहते है, एक नही हो सकते। या तो आर्य और दास—मानव-मात्र—यज्ञ करने के अधिकारी, देव का आवाहन करने मे समर्थ हो, या मानव भी पशुओ के समान बेचे जाने और होमे जाने योग्य हो। यदि मनुष्य और पशु समान हो तो मानव की अबध्यता जो मैंने सिखायी है, झूठी है, कायरता है, मेरा ऋषित्व ढकोसला-मात्र है।" विश्वामित्र के स्वर मे व्याकुलता थी। कोई कुछ बोला नही।

"आज राजा वरुण शासन कर रहे है, मानव होम किये जाने योग्य है। मैं ऋषि नही हूँ," उन्होने काँपते हुए दयनीय स्वर मे कहा, "अब पृथ्वी को अपने भार से पीडित करने का मेरा कोई अधिकार नही है।"

ये भयकर शब्द सुनकर सब स्तब्ध हो गये। ऋषि आकाश की ओर सजल-नयन देखते रहे। रोहिणी ने आँसू पोछे। रेणुका बहुत दुखित ई।

विश्वामित्र के सस्कार-शुद्ध स्वर मे वही अवर्णनीय वेदना थी जो मरणोन्मुख प्राणी के स्वर मे होती है। यथार्थ मे, ऋषि सबकुछ भूलकर केवल अन्तर के उद्गारो को ही शब्दरूप दे रहे थे।

"मुझे तो अनुभव से जो सत्य प्राप्त हुआ उसका मैने प्रसार किया। मानव-मानव मे भेद असत्य है। आर्यत्व वर्ण मे नही है, सस्कार मे है। मानव-मात्र यज्ञ द्वारा देवो को तृप्त कर सकते हैं।"

"कौन कहता है कि यह असत्य है?" आँसुओ से क्षुब्ध स्वर मे रोहिणी ने पूछा।

"वरुणदेव स्वत· कहते है। मैं इस आशा से यहाँ आया था कि अपने सत्य और तप से मैं हरिश्चन्द्र को शापमुक्त करूँगा, और नरमेध रुकवाऊँगा, किन्तु···किन्तु मैं नो अल्प हूँ। देव ही केवल महान् है। अपनी अशक्ति का, अपने दम्भ का, अब मुझे भास हो रहा है।"

"यदि वरुणदेव स्वत ही यह सब करना चाहते है, तो फिर आप खिन्न किसलिए होते है? जो देव अकेले ही महान् है, उनकी आज्ञा शिरोधार्य

करें।" रोहिणी ने कहा।

"हॉं, हॉं, मैं देव की आज्ञा का अनुसरण करूँगा। मै देव का दास हूँ। पर···फिर···फिर देव की आराधना करने योग्य मैं नही रहूँगा···।"

"तो फिर ?" मानो भयपूर्ण चिन्ता से भरे स्वर मे रोहिणी ने उद्गार निकाला।

"तो···तो···रोहिणी, तुम भगवान् अगस्त्य की पुत्री हो—तपस्विनी। हमारे तीन पुत्र है, उनकी देखभाल करना और उन्हे भरतो की कीर्ति बढाने का पाठ पढ़ाना···और जमदग्नि को···वे तो हैं ही ऋषियो मे श्रेष्ठ।"

"मामा, आप क्या करना चाहते हैं ?"

"विश्वामित्र के लिए एक ही मार्ग है जमदग्नि, राजपद पर रहूँगा या भटकता रहूँगा। यदि वरुणदेव मुझसे नरमेध करायें तो···तो जीवित या मृत मै तो शव ही हो जाऊँगा।"

"ऋषिवर···" बोलते-बोलते रोहिणी का कण्ठ रुँध गया।

"रोहिणी, इस प्रकार साहस क्यो खोती हो ? मुझे प्रेरणा प्रदान करो। मैं क्या करूँ ? भरत-पुरोहित विश्वामित्र ! ···नही···नही," और विश्वामित्र के स्वर मे आक्रन्द सुनायी दिया, "नही, नही, मै तो मानव-गौरव का तेज देखनेवाले देव की आँख हूँ। यदि यह तेज न हो तो आँखे अन्धी ही अच्छी है।"

किसी के पैर की आहट सुनकर सबने ऊपर देखा। सेनापति जयन्त सबके आगे आकर खडा हो गया। वह भरतो के वृद्ध सेनापति प्रतर्दन का पुत्र था; विश्वामित्र के ऋषि होने से वह भरतो का नेतृत्व धारण करता था।

"गुरुदेव," विश्वामित्र को प्रणाम करके उसने कहा, "राजा रोहित ने मुझे आपके पास भेजा है।"

"क्या शुन.शेप का वध करनेवाला कोई मिला ?" जमदग्नि ने पूछा।

"हॉं।"

"ऍं !" विश्वामित्र के मुख से उद्‌गार निकल पड़ा।

"जी हाँ, शुन शेप का पिता अजीगर्त ही तीसरी बार सौ गायो के बदले अपने पुत्र का वध करने के लिए तैयार हुआ है।"

विश्वामित्र की खिन्न आँखे चमक उठी।

"क्या वह राक्षस है ?" जमदग्नि बोल उठे।

"जमदग्नि, देव की इच्छा के बिना यह सब सरल कैसे हो सकता है?" विश्वामित्र का स्वर दीन और भक्तिपूर्ण था—"मैं ऐसा कौन हूँ कि अपने तपोबल से देव की इच्छा को रोक सकूँ ? राजा वरुण, आप देवो मे महान् है।" अपनी आँखें उन्होने आकाश की ओर उठा ली। विश्वामित्र के शब्द सुनने के लिए सब आतुर हो गये। सबके प्राण विश्वामित्र के शब्दो पर निर्भर थे। विश्वामित्र ने नि श्वास छोडा व गला खोलकर कम्पित स्वर से वे बोले—"जमदग्नि, कल प्रात यज्ञ की पूर्णाहुति करनी है।"

सब काँप उठे। सबको ऐसा जान पडा मानो विश्वामित्र अपने ही मुख से अपना जीवन बटोर लेने की आज्ञा दे रहे हो। उनके स्वर मे ऐसी निश्चलता थी कि फिर कोई एक शब्द तक बोल नही सका। रोहिणी की एक अकल्पित सिसकी से वह क्षण आर्द्र बन गया।

चाँदनी के प्रकाश मे विश्वामित्र की मोहक मुखाकृति भव्य दर्शन कराती रही, मानो देव वरुण का तेज उन पर एकाग्र हो गया हो।

[4]

अजीगर्त ऋषि विश्वामित्र से मिलने आया था। विश्वामित्र का सुन्दर लावण्ययुक्त देह और शोकग्रस्त आँखे देखकर दुबले अजीगर्त की पाखण्डी आँखो मे द्वेष छा गया। उसने विश्वामित्र को साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम किया। "गुरुदेव, अजीगर्त प्रणाम करता है," उसने कहा।

विश्वामित्र को यह स्वर और यह आकृति कुछ परिचित जान पडी, पर वे इस व्यक्ति को पहचान न सके।

"क्यो भाई, क्या काम है ?" ममतापूर्वक स्वर मे ऋषि ने पूछा।

"भगवन्, यदि आप नदी की ओर चलें तो मैं अपनी बात कहूँ। कोई इसका एक शब्द भी सुन लेगा तो परिणाम अच्छा न होगा।" अजीगर्त के स्वर मे तिरस्करणीय चाटुकारी भरी थी।

"तुम्हे मुझसे क्या कहना है? तुम्हारी वृत्ति तो पशु से भी बुरी दिखायी दे रही है।"

"गुरुवर्य!" कृत्रिम दीनता से हँसकर अजीगर्त ने कहा, "विश्व के मित्र! दीनो के नाथ! क्या मुझसे बात भी नही कीजियेगा? क्या मेरी बात भी नही सुनियेगा? देव, क्या मैं इतना अधिक अधम हूँ? किन्तु नही, मेरा विश्वास है कि ऋषि विश्वामित्र अपने एक सहाध्यायी का इस प्रकार तिरस्कार नही करेंगे।"

"सहाध्यायी?" विश्वामित्र ने चकित होकर पूछा, "क्या तुम भगवान् अगस्त्य के शिष्य हो?"

अजीगर्त चालाकी से हँसा—"क्या मुझे भूल गये? मै अजीगर्त अङ्गिरा हूँ। मैंने आपको मन्त्रोच्चारण सिखाया था।"

विश्वामित्र इस प्रकार दूर हट गये जैसे साँप ने डक मार दिया हो—"अजीगर्त अङ्गिरा? जिसे महर्षि अगस्त्य ने शाप दिया था? पतित! इस प्रकार क्यो घूमता है? शाप से अभी तुम मुक्त नही हो पाये, क्यो?" विश्वामित्र के स्वर मे करुणा थी।

"कृपानिधि!" पुनः मिथ्या हँसी हँसकर अजीगर्त ने कहा, "क्षमा करना, मैं इस शाप से मुक्त होने के लिए ही तो इस वेप मे यहाँ आया हूँ। आपसे मिलने के लिए मैंने पुत्र बेचा और उसी कारण आज उसका वध करने का भी वचन मैंने दिया है। प्रभु! प्रभु! मेरा उद्धार करो।"

अजीगर्त के ये शब्द और अनुपयुक्त कटाक्षमय उच्चार सुनकर विश्वामित्र ने तिरस्कारपूर्वक उसकी ओर देखा। किन्तु इस रहस्य के पीछे सम्भवतः देव वरुण ने नरमेध रुकवाने का कोई उपाय ही निश्चित कर रखा हो, ऐसा सोचकर उन्होंने बात चलाये रखी।

"तो तुम महर्षि अगस्त्य के पास जाओ। मेरे पास क्यो आये हो?"

उन्होने कहा।

"गुरु की अनुपस्थिति मे उनके आप-जैसे तेजस्वी शिष्य के अतिरिक्त मुझे कौन मुक्ति दे सकता है, मेरे कृपानिधि ?" पुन. अजीगर्त कृत्रिम स्वर मे विनय करने लगा।

"अजीगर्त, तुम्हारे बोलने की रीति मुझे अच्छी नही लगती।"

"मैं क्या नही समझता प्रभु ? बीस वर्ष से मैं वनचरो से भी बुरी दशा भोग रहा हूँ। मैंने मार खायी है, दुत्कार सही है, मैं और मेरे बाल-बच्चे भूखे भटकते फिरे है। एक ऋषि-सन्तान की, अगस्त्य के शिष्य की दशा एक दुर्बल और रोगी कुत्ते-जैसी हो गयी है। मेरा व्यवहार किस प्रकार संस्कार-युक्त रह सकता है ?"

"ठीक-ठीक कहो, तुम्हे क्या चाहिए ?"

"आप जैसे के हाथ से यह नरमेध न हो, बस यही।" इतना कहकर वह हाथ मलने लगा।

"यह कैसे हो सकता है? तुम ही अपने पुत्र का वध करने को तैयार हुए हो।"

"प्रभु, मुझे एक मार्ग ज्ञात है।"

"कौन-सा मार्ग ?"

"गुरुदेव, मै तो अधम दशा मे हूँ। आप मुझ शाप से मुक्त कीजिए और एक सहस्र धेनुएँ दीजिए तो मैं आपका काम कर दूँ।"

"एक सहस्र धेनुएँ ?" विश्वामित्र अजीगर्त की ओर देखते रहे।

"हाँ, एक भी कम न लूँगा। इतने वर्ष दुख भोगकर प्रतीक्षा की तो क्या कम धेनुएँ लेने के लिए ?" अजीगर्त इतना कहकर दुष्टतापूर्वक हँसा।

विश्वामित्र ने उसके प्रति तिरस्कार का भाव ज्यो-त्यो दबाकर कहा, "महर्षि ने तुम्हे क्यो शाप दिया था, मैं यही नही जानता, तब मैं तुम्हे शाप-मुक्त कैसे कर सकता हूँ ?"

"मैंने स्वयं ही शाप माँग लिया था।"

"क्यो ?" आश्चर्य से विश्वामित्र ने पूछा।

"मैं अपने दुख की बात किससे कहूँ ?" विचित्र प्रकार के भाव मुख पर लाकर मन्द-मन्द हँसते हुए अजीगर्त ने कहा, "एक दिन भगवती लोपा-मुद्रा ने मुझे अपना विश्वसनीय शिष्य मानकर एक सद्य.जात बालक दिया और एक वर्ष तक वनवास मे रहकर उस बालक को लौटा लाने की आज्ञा दी।"

"सद्य जात बालक ?" विश्वामित्र ने मस्तक पर आये हुए बाल ऊपर किये। भगवती इस प्रकार सद्यःजात बालक को गुप्त रीति से भिजवायें ! किसका बालक और क्यो ? वे काँपने लगे। बीस वर्ष का ढकना खोलकर यह दुष्ट व्यक्ति न जाने क्या-क्या दिखाना चाहता था।

"हाँ, मैं बारह महीने वन मे फिरा। उस लडके पर मुझे इतनी प्रीति हो गयी कि मैं उसे अलग न कर सका, और मैं भगवती के पास नही गया।"

"तब ?"

"उन्होने मुझे खोज निकलवाया। पर मै उस लडके को छोडने के लिए तैयार नही था। अपनी सन्तान की अपेक्षा भी वह लडका मुझे अधिक प्रिय था। भगवती से मैंने असत्य भाषण किया और कहा कि वह लडका तो मर गया। महर्षि ने यह असत्य समझ लिया और क्रुद्ध होकर मुझे शाप दे दिया।"

"तुम्हारी बात मेरी समझ मे नही आती। तुमने भगवती को सत्य क्यो न कहा ? वे तुम्हे और उस लडके को; दोनो को साथ रखती।"

"वह बात बनती जो नही थी। यदि उस समय मैंने उस लडके का कुल बता दिया होता तो परुष्णी रक्त मे वहने लगती," अजीगर्त ने स्वार्थपरता मे धीरे-धीरे कहा। उसकी पाखण्डी आँखे विश्वामित्र के मुख के भाव देख रही थी।

विश्वामित्र स्थिर-नेत्र अजीगर्त की ओर देखते रहे। इस व्यक्ति की बात यद्यपि सत्य जान पडती थी, किन्तु फिर भी उसका विश्वास नही किया जा सकता था।

"ऐसी क्या बात थी ?" उन्होने पूछा।

"उस समय तृत्सुओ के और आपके बीच वैर था, यह क्या भूल गये ? और भरतो को भी आपका दस्यु-प्रेम अच्छा नही लगता था, यह भी आप जानते है। यदि इस लडके को मैंने छिपाया न होता तो आपकी, भरतो की और दासो की क्या दशा होती ?"

"पर इसमे इस लडके से क्या सम्बन्ध ?" भ्रूभग द्वारा ऋषि ने पूछा। उन्हे सत्य का धुँधला प्रकाश दिखायी देने लगा था।

"वह लडका शम्बर और आपका, दोनो का उत्तराधिकारी था।" जैसे किसी सिद्धहस्त बाण छोडनेवाले ने लक्ष्य साधकर बाण चलाया हो, उसी प्रकार अजीगर्त द्वारा सफलतापूर्वक युक्ति से फेंके हुए बाण ने ठीक जाकर विश्वामित्र का हृदय बेध दिया।

राजर्षि विश्वामित्र को पृथ्वी कम्पित होती हुई जान पडने लगी। बीस वर्ष का ढकना हट गया। शम्बर की पुत्री उग्रा प्रणय के सत्व के समान प्रत्यक्ष हो गयी। वह दुखी थी। भरतो के राजा विश्वरथ का गर्भ धारण करती हुई वह निराधार आश्वासनविहीन पडी-पडी रोती रही थी, पर फिर···भगवती ने उन्हे कहा था कि उसे मृत बालक जन्मा है। कौन-सी बात सत्य थी ? भगवती ने जो कही थी वह या जो अजीगर्त कहता है वह ?

"क्या कहा ?" विश्वामित्र ने गर्जना की।

"गुरुदेव, वह पुत्र आपका और शम्बर-पुत्री उग्रा का था," धीरे से क्रूरतापूर्वक पुन. अजीगर्त ने घाव किया—"यदि मै उस बात को खोल देता तो आर्यावर्त मे आपका चिह्न भी भरत या तृत्सु न रहने देते। और इसी विचार से मैंने आपका पुत्र लोपामुद्रा को लौटा देने की अपेक्षा पतित होना अधिक अच्छा समझा। भले ही यह मेरी भूल हो, किन्तु उस समय तो मुझे वही मार्ग उचित जान पडता था।" अजीगर्त ने कृत्रिम परोपकार का भाव दरसाते हुए शब्द धीरे से कहे और फिर इस प्रकार वह हँसा मानो स्वय अपना ही अभिनन्दन कर रहा हो।

विश्वामित्र के मस्तिष्क मे वज्राघात के समान गड़गडाहट हो रही थी।

क्या यह व्यक्ति स्वप्न मे बात कर रहा है या अपना राक्षस-स्वरूप प्रत्यक्ष कर रहा है ? उसके मनश्चक्षु के आगे चित्रावली उपस्थित हो गयी। शम्बर की मृत्यु, अगस्त्य की प्रतिज्ञा, उग्रा का पाणिग्रहण, उग्रा के गर्भ से निर्जीव बालक का जन्म, उग्रा की मृत्यु, भरत और तृत्सुओ का द्वेष—ये और ऐसे अनेक विस्मृत, अर्ध-विस्मृत और समय-समय पर स्मरण मे आते हुए कितने ही दृश्य उनकी आँखो के सामने उपस्थित हो गये और उनके मस्तिष्क मे घूमने लगे। विस्मृत छाया के आवरण से ढके रहने के कारण अस्पष्ट रहने पर भी वे दृश्य प्रत्यक्ष हुए और वास्तव से भी अधिक मूल के अनुरूप अधिक सुन्दर और अधिक सजीव हो गये। किन्तु क्या भगवती लोपामुद्रा असत्य भाषण करेंगी ? क्या यह नीच, पतित, अधम ब्रह्मराक्षस उन्हे धोखा देकर, बनावटी बात बनाकर उनसे एक सहस्र गाये लेने आया था।

विश्वामित्र ने अजीगर्त का कण्ठ पकडा, "झूठे !"

उनके सशक्त पञ्जे मे अजीगर्त तडपने लगा। उसने आधी चिल्लाहट और आधी विनयशीलता मे कहा, "लो देखो, देखो यह।" उसने कमर मे से कोई छिपायी हुई वस्तु निकालकर आगे रखी।

विश्वामित्र को ऐसा लगा मानो यह सब स्वप्न मे ही देख रहे हो। उन्होने अजीगर्त को छोड दिया और कमर से चकमक निकालकर दीपक जलाया और अजीगर्त के आगे रखी हुई चमकती वस्तु देखी।

मिट्टी की पक्की छोटी मुद्रा और एक छोटा-सा कुण्डल सूत्र मे पिरोया था।

"देखो, देखो, क्या मैं झूठ बोलता हूँ ? यह है राजा शम्बर की मुद्रा और यह है तुम्हारा कुण्डल। है न, पहचाना ? ये उस बालक के गले मे थे।" और भयकर द्वेष से अजीगर्त हँसा।

विश्वामित्र की आँखो मे अँधेरा छा गया। यही उग्रकाल की छापवाली मुद्रा थी जो उग्रा गले मे बाँधती थी और यही उनका कुण्डल था जो शम्बर के गढ मे उग्रा ने माँग लिया था। उनका मन स्थिर न रह सका, मस्तिष्क चक्कर खाने लगा। इसी मुद्रा और कुण्डल का उन्होने न जाने

कितनी ही वार चुम्वन लिया था। उग्रा, जिसने सर्वस्व होम करके उन्हे वचाया था, उनका स्मित जिसका प्राण और श्वास था वह उग्रा···यह मुद्रा और कुण्डल···

थोडी देर मे उन्हे सवकुछ स्मरण हो आया। उग्रा के शव का जव अग्निदाह किया गया था तव ये कुण्डल और मुद्रा साथ ही थे।

"चाण्डाल, यह उस लड़के के गले मे रह ही नही सकता," उन्होंने कहा।

उत्तर मे फिर अजीगर्त ठठाकर हँसा।

कुछ क्षण तक ऋषि विश्वामित्र पागल के समान स्थिर-नयन अजीगर्त की ओर देखते रहे—"कहाँ है वह लडका?"

अजीगर्त कुछ देर तक चुप रहा।

"वही लडका तो शुन.शेप है जिसे आप कल अग्नि मे होमनेवाले हैं," उसने अन्त मे दुष्टतापूर्वक हँसते हुए कहा।

विश्वामित्र ने इस प्रकार ऊपर देखा मानो उनका स्वर अवरुद्ध होता हो और अपना सिर हिलाया। उनका श्वास रुँधता जा रहा था।

"शुन.शेप?" वे वडवडाये।

"हाँ. गुरुदेव," उपहास के स्वर मे अजीगर्त ने कहा, "वही शुन.शेप।"

"असम्भव···असम्भव···" विश्वामित्र के मस्तिष्क में शब्द उत्पन्न हुए। वे समझ गये। उस दुष्ट की दुष्टता उन्होंने पहचान ली। वे कुछ स्वस्थ हुए।

"नराधम, तेरे असत्य की कोई सीमा है या नही? क्या तू मुझे ठगने आया है? दूर हट दुष्ट, यदि तू सच्चा था तो इन वीस वर्षों तक कहाँ छिपा रहा? जा पतित, जा, अगस्त्य के शाप से तू पृथ्वी पर भटका और अव विश्वामित्र के शाप से···"

तलवार की धार के समान तीक्ष्ण और क्रूर स्वर से अजीगर्त ने विश्वामित्र का वाक्य वीच मे ही काट दिया, "शाप देने के पहले विचार कर लेना। मैं जा रहा हूँ। आप कल अपने ज्येष्ठ पुत्र को यज्ञ मे होमने का

पुण्य कर्म कीजिए।" इतना कहकर वह चलने लगा।

कुछ पग चलकर वह फिर लौटा—"और आज वीस वर्षों से मैने यह वात प्रकट क्यो नही की, यह पूछते हो न ? तो स्मरण रखिए कि इस लडके का मूल्य केवल दो सहस्र गायें नही है।" वह दुष्टतापूर्वक हँसा और वोला, "आपकी मृत्यु के पश्चात् वह भरतो का सिंहासन माँगेगा—यह उसका मूल्य है ?"

इस लडके को भरतो का राजा बनाने के लिए अजीगर्त ने उसे पाल रखा था। उन्हे वह यथार्थ मे ब्रह्मराक्षस जान पडा। विश्वामित्र के मस्तिष्क मे विचार घूमने लगे।

"पर कल तो उसकी आहुति दी जानेवाली है," असमजस मे पडे हुए ऋषि ने कहा।

"जब तक मै बैठा हूँ तब तक ऐसा कैसे हो सकता है ?" ठठाकर हँसते हुए अजीगर्त ने कहा, "उसे मैंने इस प्रकार अग्नि मे होमने के लिए वडा नही किया है। वह तो दासी का पुत्र है। उसका नरमेध कैसे हो सकता है ?"

इतना कहकर खाँसता हुआ अजीगर्त विश्वामित्र की ओर देखता रहा।

"दुष्ट, जा निकल यहाँ से," विश्वामित्र चिल्लाये। अजीगर्त दवे पैर वहाँ से चला गया।

[5]

ऋषिवर ने आँखे मली। इस अजीगर्त की वात सच थी, या केवल कल्पना थी, वनावटी थी ? खाँसते हुए आगे वढता हुआ अजीगर्त अन्धकार मे विलीन हो रहा था। क्या वह सच कहता था ? क्या उसकी वात सच थी ? विश्वामित्र वही-के-वही स्थिर हो गये। सम्पूर्ण सृष्टि मानो उन पर टूट पडी थी। वह समझते थे कि देव ने उन्हे दिव्य चक्षु दिये है, किन्तु इस समय वे ही आँखें अन्धी हो गयी थी।

थोडी देर मे वे धीरे-धीरे निवास से दूर जंगल की ओर बढने लगे। उन्होने समझा था कि देव ने उन्हें आर्यत्व का उद्धार करने के लिए जन्म दिया था। जिस सत्य को किसी ने नही देखा था उसे उन्होने उच्चरित किया था—मानव-मात्र सृष्टि से परे है, सस्कार-शुद्धि ही उसका आर्यत्व है, यज्ञ ही शुद्धि प्राप्त करने का साधन है।

उन्हे ज्ञात होता था कि यह सत्य मानव-मात्र का उद्धार कर रहा था, दुखियो के दुख का निवारण कर रहा था, दासो की अधमता का छेदन कर रहा था।

किन्तु···एकदम यह सब असत्य प्रमाणित हुआ···असत्य···पूर्णतया असत्य।

उनके हृदय मे प्रश्नावली उठी।

काले और गोरे मानव एक ही सस्कार के अधिकारी थे, देवो द्वारा समान रूप से रक्षित थे। तो फिर शम्बर की पुत्री उग्रा भी अगस्त्य की पुत्री रोहिणी जैसी ही आर्या थी, तो फिर उग्रा के पुत्र को आज भरत-श्रेष्ठ के ज्येष्ठ पुत्र का स्थान क्यो न दिया जाय ?

मानव-मात्र पशु से परे है; ऐसे पवित्र है कि वे न बेचे जायँ और न होम किये जायँ। यदि यह सत्य है तो फिर यह नरमेध मैं कैसे कर सकता हूँ ? मैं सत्य का द्रष्टा हूँ, सत्य का आचरण करनेवाला हूँ। यही मेरा जीवन-व्रत है। तो फिर शुन शेप को भरत-श्रेष्ठ के स्थान पर स्थापित करने के बदले पतित के पुत्र के रूप मे उसे कैसे रहने दिया जा सकता है ?

इस नरमेध को रोकने के बदले उसे कराने के लिए क्यो इस प्रकार तैयार हुआ हूँ ? सत्य क्या है ? मैंने समझा और समझाया है वह, या जो मुझे करना पड रहा है वह ?

तो फिर मुझे क्या करना चाहिए ? एकत्रित जनसमूह को कल क्या स्पष्ट कहना होगा कि शुन शेप अजीगर्त का पुत्र नही, मेरा पुत्र है ?

और मै उसे अजीगर्त के पुत्र के रूप मे यज्ञ मे होम दूँ तो मेरे जैसा कायर और कौन होगा ?

किन्तु यदि अपने पुत्र के रूप मे उसे स्वीकार करूँ तो जगत् जान लेगा कि वह दासी-पुत्र है। फिर उसे यज्ञ मे भी कैसे होमा जा सकेगा ? और रोहित भी ऐसा यज्ञ क्यो होने देगा ? देव भी उसे स्वीकार नही करेंगे, और मेरी कैसी अपकीर्ति होगी ! भरत क्या कहेगे ? क्या दासी-पुत्र को अपने राजा के रूप मे वे स्वीकार करेंगे ? अगस्त्य की गर्विष्ठ कन्या रोहिणी अपने बड़े पुत्र देवदत्त के लिए क्या आकाश-पाताल एक नही कर देगी ? क्या वह शुन शेप को सहन कर लेगी ? कदाचित् इस प्रश्न के कारण भरतो मे भेद-भाव जागरित हो, दलबन्दी हो। और वसिष्ठ की तो बन आयेगी। सम्पूर्ण आर्यावर्त मे आग भी सुलग उठेगी।

पर इस भय से डरकर यदि मैं असत्य का आचरण करूँ, तो वह कायरता की सीमा होगी।

यदि मैं कुछ न बोलूँ तो ?

यज्ञ हो जाय, शुन शेप होमा जाय और यह बात कोई कभी न जाने तो ?

नही···नही ! इन सबके भय से क्या मै चुपचाप बैठा रहूँ ? क्या निर्दोष बालक को होमा जाने दूं ? नही···नही···तो मेरे जैसा धर्म-भ्रष्ट और कौन होगा ?

विश्वामित्र की विचारमाला आगे बढी।

मानव हवि नही बन सकता, यदि यह बात सत्य है तो फिर मै ऐसा करने के लिए क्यो तैयार हुआ हूँ ? वचन-भग होने के भय से ? देव के रूठने के भय से ?

इस प्रकार विचार करते हुए विश्वामित्र भय-व्याकुल होकर एक स्थान पर खडे हो गये। जहाँ-जहाँ उनकी दृष्टि पडती थी वहाँ-वहाँ अपनी विकराल अपकीर्ति का वे दर्शन कर रहे थे।

विचार-प्रवाह तो अखण्ड और अविरल रूप से चल ही रहा था—मैं इस समय इतना अधम क्यो हो गया हूँ ? कभी मैंने असत्य का आचरण नही किया है, फिर भी यह सब क्या है ? भय···भय मुझे अधम बना रहा है।

भय, महाभय, प्रलय समुद्रसम भय ने मुझे घेर लिया है। मैं शुन.शेप को अपना कह नही सकता, और पराया रहने दूं यह भी नही हो सकता। मैं नरमेध करा भी नही सकता, और यह काम छोडकर चला भी नही जा सकता। मैं तो अशक्ति के सत्व के समान हो गया हूँ···क्यो ? भय·· भय ···महाभय···!

पर ऋषि के हृदय ने विरोध की ध्वनि की, नही···नही···नही···! मैं इस पराये चचल दृष्टिकोण मे ऋषि हुआ हूँ या स्वतः अपने देखे हुए, आचरित किये हुए सत्य से ? क्या मैं पराई चचल परछाई के पीछे उडने-वाला पतङ्ग हूँ ?

नही···नही···नही।

मेरा सत्य ही मेरा है और यही सत्य मेरा जीवन है। जिसे जो कहना हो भले कहे। शुन शेप मेरा पुत्र है, मेरी विद्या और समृद्धि का स्वामी है।

और देव ! क्या मैं नरमेध करूँ ?

नही···नही···नही।

विश्वामित्र एकाएक खडे हो गये, उनके मन पर प्रकाश पडा।

नही···नही···मेरा सत्य तो मेरा अपना ही है। वह सत्य मैं ही हूँ। समृद्धि होने पर भी सत्य नही बढता, और वह चली भी जाय तो भी सत्य कभी घट नही सकता। सत्य तो सत्य ही रहता है—अचल और अमर, अखण्ड और अजेय। तो फिर समृद्धि के जाने का भय क्यो ? कीर्ति कम होने का भय किसलिए ?

आँखो द्वारा मानो व्योम को फटकार रहे हो, इस प्रकार आकाश की ओर स्थिर नयन करके वे बडबडाये—"देवो ! आपने जो समृद्धि, जो कीर्ति मुझे दी है उसे आप ले सकते हैं। मेरा सत्य आपने मुझे नही दिया है, उसे मैंने देखा है, मैने प्राप्त किया है। उसे आप कभी नही ले सकेंगे।"

विश्वामित्र की दृष्टि के सामने महासर्प के समान फुकार मारता हुआ, विष उगलता हुआ, दुखपूर्ण शीतल स्पर्श से रोम-रोम खडा करता हुआ भय आ उपस्थित हुआ। अपने भयकर वेग से वह उन्हे लपेटता, उनके पैर

पर चढता, उनकी कमर तक पहुँच गया था। उनकी आँखें वावली हो गयी। वे हट न सके। उनके स्नायु खिचने लगे और वे स्थिर हो गये, मानो मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहे हो। उनकी आँखे मृत व्यक्ति के समान निस्तेज हो गयी। उनके मस्तक पर की भूरी और भरी हुई नस स्पष्ट दिखायी देने लगी। उनके कान मे यमराज के पैरो की आहट आने लगी।

महासर्प वृत्र के समान ही वह भय भी उनके वक्ष.स्थल पर आकर उन्हे दवाने लगा। ऐसा उन्हे जान पडा मानो वक्ष.की हड्डियाँ टूट रही हो। वे श्वास न ले सके, उनके कण्ठावरोध का पार न रहा।

इस विकराल सर्प ने उनके मुँह पर फुकार मारी। उसके विष ने उनके प्राण निश्चेनन कर दिये। उनकी आँखो मे धुँधलापन छा गया। सामने खड़े हुए सत्य के पयोदो को रोककर यह वृत्र उनके गले मे फाँसी डालने लगा।

उनकी निस्तेज होती हुई आँखो के सामने गत जीवन के दृश्य उपस्थित हो गये।

और उन्होने व्योम पर अपनी दृष्टि स्थिर कर ली।

स्वातन्त्र्य और सस्कार की जननी के समान सौन्दर्य और विद्या की खान, सरस्वती माता के समान वालपन मे उनका चुम्वन करनेवाली, शम्वर के गढ मे उन्हे मानव-गौरव के पाठ पढानेवाली, उनकी प्रतिज्ञा की रक्षा के लिए दृढव्रती अगस्त्य की प्रतिज्ञा तुडवानेवाली और उन्हे ऋत के नये दर्शन करानी हुई ऊषा देवी के समान देदीप्यमान प्रेरणा-मूर्ति लोपा-मुद्रा व्योम मे खडी हुई उन्हे दिखायी दी। श्रद्धापूर्ण सजल नयनो से वे उन्हे कुछ सन्देश दे रही थी।

वे कुछ कह रही थी, पर विश्वामित्र सुन नही सकते थे।

'मेरे विश्वरथ···मेरे विश्वरथ···विश्वरथ···मेरे विश्वरथ···' ममतापूर्ण स्वर मे वह वोल रही थी।

उनके अपार्थिव मुख पर देव-दुर्लभ अमर तेज देदीप्यमान हो रहा था। वे लोपामुद्रा थी या माना सरस्वती—उनकी भारती, जिनकी गोदी मे सन्तान विद्या और तप के सस्कार तथा शुद्धि प्राप्त करती थी ? इस

भयंकर क्षण मे उनके मन मे प्रश्न हुआ।

लोपामुद्रा कौन ? सरस्वती कौन ? सरिता ? नही' '। वह तो एक-मात्र आर्यत्व-उद्धारिणी, तप द्वारा सेव्य सस्कार की जननी थी।

और लोपामुद्रा मुस्कराती हुई जान पड़ी। विश्वामित्र का कण्ठावरोध हो रहा था, उन्हे स्मरण हुआ। इसी देवी सरस्वती ने इन्द्र को प्रेरणा दी थी। जब देव वृत्र को मारने के लिए तत्पर हुए थे तब प्रेरणावाहिनी सरिता के समान इन्द्र को कृतनिश्चय करती हुई सरस्वती खड़ी थी। फुकार मारता हुआ अहि उस समय इन्द्र के अंग-अग को निश्चेतन कर रहा था। देवी हँसी। उनकी प्रेरणा से इन्द्र ने बज्र उठाया और चलाया। सर्पों मे भयंकर वृत्र को वह लगा। उसका काला भयकर शरीर काँप उठा। इन्द्र ने महासकल्प किया। उसके स्नायुओ ने सर्प की लपेट मे से छूटने के महा-प्रयत्न किये। कठिन प्राणविनाशकता से लिपटा हुआ पाश शिथिल होने लगा, हटने लगा, छूट गया। वृत्र के मृत शरीर के बीच मे इन्द्र खड़े दिखायी दिये। विजेता का प्रचण्ड हास्य उनके मुख पर था। उल्लास के सुमधुर भाव देवी सरस्वती के गाल पर विराज रहे थे'''और सत्य का जो जल वृत्र ने रोक रखा था वह मुक्त होकर आनन्द से कल्लोल करता हुआ जगत् का उद्धार करने के लिए बह निकला।

विश्वामित्र ने स्नायुओ द्वारा भय-सर्प के बन्धन मे से छूटने का इस प्रकार प्रयत्न किया मानो इन्द्र का अनुकरण कर रहे हो। भय का महासर्प शिथिल होकर गिर पडा और वे स्वत अभय साधकर उसके बीच मे खडे रहे।

सत्य स्पष्ट हुआ।

अजीगर्त दुष्ट है। उसके साथ व्यवहार करना अधम कार्य है।

शुन शेप भरत-श्रेष्ठ है, यह जगत् को जानना ही चाहिए।

शुन शेप हवि नही है, मानव है, याज्ञिक है, यज्ञ मे उसका वध नही हो सकता। यज्ञ तो सृजन का साधन है, विनाश का कुण्ड नही है। जिसमे मानव का हवन हो, वह यज्ञ नही हो सकता।

स्तुति और निन्दा दो मृगजल है, समृद्धि केवल अकस्मात् प्राप्त होती है। प्रीति सत्य का साथ देती है, उसकी हिंसा नही करती।

यदि नरमेघ हो तो एक ही प्रकार से हो सकता है। तपस्वी स्वत अपना नरमेघ कर सकता है। उसके लिए अपने सत्य की ही वेदी हो सकती है। जिन ज्वालाओ का वह आलिङ्गन करेगा, वे अभय की ही होगी।

विश्वामित्र ने ये स्पष्ट दर्शन किये। सिर ऊँचा करके वे चारो ओर देखते रहे। उन्होने भय के अहि का सहार किया था, और उसकी मृत देह पर वे खडे थे जैसे पहले वृत्र का सहार करके देव-श्रेष्ठ इन्द्र खडे थे।

उन्होने देव को ललकारा—यदि आपको असत्य का आचरण कराना हो तो भले ही कराइये। विश्वामित्र और उसका पुत्र दोनो मृत्यु का आलिगन करेंगे। वे कभी नही डिगेंगे, चाहे जो हो।

उन्होने ऊपर देखा। अवर्ण्य सौन्दर्य से उन्हे परिप्लावित करती हुई, सस्कार के कौमुदीवर्ण जल से सृष्टि का उद्धार करती हुई विद्या और तप की जननी भगवती लोपामुद्रा···नही, नही···देवी सरस्वती···व्योम मे प्रसारित हो रही थी।

[6]

दूसरे दिन प्रात. शुन शेप उल्लासमय था। निर्धनता का दश, पतित जीवन की वेदना, विद्या की अतृप्त तृषा, तिमिरमय जीवन की निष्फलता आदि सबकुछ जाता रहा।

उसके जीवन का महान् अन्तिम दिवस आ पहुँचा। दोपहर तक वह राजा वरुण के चरणो मे पहुँच जायगा और फिर यमराज उसे अपने लोक मे ले जायेंगे।

वह अधम नही था, पतित नही था, विद्याहीन भी नही था। उसकी वलि देवाधिदेव मांग रहे थे।

उसके फीके मुख पर लालिमा छा गयी थी। उसकी वडी-वडी आंखो मे चमक आ गयी। उसकी गति मे निराधारित्व का शैथिल्य जाता रहा।

जब हरिश्चन्द्र राजा के सैनिक उसे ले चलने आये तब वह अधीर होकर उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। विजय-प्रस्थान करने के समान वह उत्साह और हर्ष से अपने कारावास से निकला।

आसपास की सृष्टि सुन्दर थी। वृक्षों पर पक्षी किलकिला रहे थे। सविता देव आनन्द से प्रकाशित हो रहे थे और शुनःशेप को ऐसा ज्ञात हुआ मानो वे सब उसके जीवन के धन्य क्षण की प्रतीक्षा करके हर्षित हो रहे हो।

शुनःशेप के पैर अधीर हो रहे थे। उसका वस चलता तो वह दौडता। उसने आकाश की ओर देखा, किन्तु उसकी प्रतीक्षा करते हुए वरुणदेव उसे कही भी नही दिखायी दिये। पर अभी वे कहाँ से आते ? जब वह यज्ञमण्डप मे जायगा तब उसका स्वागत करने वे स्वतः आ पहुँचेंगे। किन्तु कितनी देर लगेगी ? दो घडी ? चार घडी ? प्रहर ? दो प्रहर ?

शुनःशेप को जहाँ ले जाया गया वहाँ बड़ा भारी जनसमूह एकत्रित था। चारों ओर वृक्ष के पत्तो के तोरण बाँधे गये थे, और जहाँ सब लोग बैठे थे उसके बीच एक छोटा-सा मण्डप था।

शुनःशेप ने इतना बडा जनसमूह कभी नही देखा था। इतनी स्त्रियाँ और इतने पुरुष इतने सुन्दर, रमणीय और आकर्षक वस्त्रो मे बड़े मोहक जान पडते थे। ऐसे सुन्दर दृश्य की कल्पना उसने कभी नही की थी। राजा वरुण द्वारा उसका स्वीकारा जाना देखने के लिए ही सब यहाँ आये थे। वह हँसा। यह तो उसका विजयोत्सव था।

सैनिक उसे पीछे के भाग से मण्डप मे ले गये। चार स्तम्भो पर पुष्प और पत्र के तोरण बाँधकर यज्ञमण्डप बनाया गया था। चारो ओर चन्दन और पुष्प की सुवास फैल रही थी। यज्ञमण्डप देखने की उसकी जीवन-भर की साध आज सफल हुई। पुष्पो से सज्जित इन चार स्तम्भो के बीच राजा वरुण उसे स्वीकार करेंगे। यह मण्डप उसी के लिए रचा गया है। शुनःशेप के हृदय मे गर्व का सचार हुआ।

पानी से, दूध से, घी से, मधु से उसे नहलाया गया। दो ऋषियो ने

मन्त्र पढकर उमे पवित्र किया। ये मन्त्र शुन शेप ने अपने पिता से सीखे थे, पर इस समय वह उनके साथ वोल नही सकता था। उसकी सव अधमता स्नान करते ही चली गयी। जिस दिन के लिए वह लालायित था वह आज आ गया था। अब वह पतित नही था। अव वह ऋषियो के सान्निध्य मे जाने, देव के चरणो मे गिरने के योग्य था।

जव उसे मण्डप के वीच मे ले जाकर खडा किया गया तव उसका गौरवर्ण शरीर तेज मे परिपूर्ण था। उससे मुस्कराये विना न रहा गया। उसकी उत्साहमय आँखो के सामने वस्त्राभरणो से सुसज्जित नर-नारियो के मुख शोभायमान हो रहे थे। उससे थोडी दूर पर मण्डप के वीच मे वडी वेदी थी।

उसने यज्ञकुण्ड के विपय मे वहुत-सी वाते सुनी थी, परन्तु अन्त मे ···अन्त मे उसने यज्ञकुण्ड देखा। उसकी आँखो मे हर्षाश्रु उभर आये। यज्ञ-कुण्ड के पाम किस प्रकार मन्त्र वोलना चाहिए, सव विधि कैसे करनी चाहिए आदि उसने अपने पिता से सुना था। आज इस परम पुनीत धाम मे उमने अपने स्वामी अग्निदेव को विराजमान देखा।

यह यज्ञकुण्ड उसी के लिए स्थापित किया गया था। अग्निदेव की गोद मे वैठकर वह राजा वरुण के चरणो मे जायगा।

"देव, मैं आया, आया," वह मन मे वोला। मृत्यु उसे मोक्ष के द्वार के रूप मे दिखायी दी।

उसकी आँखो के सामने कुण्ड के चारो ओर वैठे हुए ऋपि स्पष्ट दिखायी देने लगे। उसका हृदय भर आया। जिन्हे देखने की उत्कट इच्छा से वह तडप रहा था, वे सव उसी की प्रतीक्षा मे यहाँ वैठे थे। कैसे थे वे ऋपि! उसने जितनी कल्पना की थी उससे भी अधिक वे तेजस्वी थे।

दो ऋ पि सवमे आगे वैठे थे। एक विशालकाय थे। उनकी वडी जटा कितनी ऊँची थी! उनका स्वर गम्भीर और मोटा था। वे दर्भ विछा रहे थे। उनके पाम ही दूमरे ऋपि थे—साधारण डील के, पर गठीले। वे अच्छे ढंग से वैठे थे। उनकी दाढी और जटा सुन्दर और सुव्यवस्थित थी। उनके

हाथ सुकुमार ज्ञात होते थे ।

शुन शेप की दृष्टि उन्ही पर जाकर स्थिर हो गयी । वह दूसरी ओर दृष्टि हटा नही सका । उस मुख पर भव्य सौम्यता थी, अवर्णनीय करुणा थी, और भाल पर अदृष्ट तेज देदीप्यमान हो रहा था । उनकी सुन्दर काली आँखो मे दया, शोक, वेदना, गाम्भीर्य आदि विभिन्न भाव सम्मिश्रित थे । वे आँखे उस पर कितने सद्भाव से स्थिर थी, शुन शेप ने विचार किया । उन आँखो मे आँसू थे या केवल उनकी भ्रमजनक छाया ही थी ? उन आँखो के वेदनापूर्ण और ममतापूर्ण तेज ने शुनःशेप को अभिभूत कर लिया ।

ऐसे स्नेह का उसने कभी अनुभव नही किया था, जाना तक नही था । इन आँखो के आलिंगन से उसे ऐसा भास हुआ मानो वह प्रेम करती हुई माता के हाथ मे हो ।

शुन शेप का हृदय उमड आया । उसकी आँखे भीग गयी । उसे ऐसा जान पडा मानो उन शोकग्रस्त और वेदनापूर्ण आँखों मे वह समा रहा हो ।

स्नेह और मान के असह्य भार से उसका गला भर आया । उसकी सूरत रोनी-सी हो गयी ।

वे विश्वामित्र थे या जमदग्नि ? वे ऋत के राजा वरुण तो थे ही नही । ऐसे रूपवान्, तेजस्वी, दयामय तथा सबको स्नेहमय दृष्टि से सान्त्वना देते हुए महर्षि कौन थे ? शुन शेप के हृदय मे प्रश्न उठा । उसे शान्ति मिली । वह कौन है यह भी वह इस समय भूल गया था । एकदम आगे बढ़कर उसने इन ऋषि के सामने प्रणिपात किया ।

शुन.शेप को इस प्रकार पास आते देखकर सबको आश्चर्य हुआ । सब ओर हाहाकार मच गया । सैनिक उसे पकड़ने के लिए दौड़ आये । पीछे कितने ही उसे देखने के लिए खडे हो गये । एक ऋषि बोल उठे, "अरे, अरे !"

शोकग्रस्त और वेदनापूर्ण आँखें इस स्वर से दुखित होकर लोगो की ओर देखने लगी । ऋषि ने एक हाथ ऊँचा किया और निकट आते सैनिको को रोका । पुन. शान्ति प्रसारित हो गयी ।

वे आसन पर से ससम्भ्रम उठे और शुन शेप को उन्होंने उठाया।

"वत्स, देव तुम्हारा कल्याण करे," यह कहकर उन्होंने उसके सिर पर हाथ रखा। उनके स्वर मे रुदन की ध्वनि थी। शुन शेप की आँखो मे से धड-धड आँसू गिरने लगे। किन्तु इस चमत्कारपूर्ण स्पर्श और स्वर से उसकी नस-नस मे स्फूर्ति आ गयी। उसने पुन ऋषि के पैर छूकर उनकी चरण-रज सिर पर धरी।

ये ही भरत-श्रेष्ठ विश्वामित्र है, ये ही ऋषियो के ऋषि है, ये ही राम के मामा है, और वे राम के पिता जमदग्नि है। शुन शेप का हृदय गर्व मे उछलने लगा। सैनिको ने उसे यूप के पास ले जाकर खडा किया।

एक खाट पर सुलाकर राजा हरिश्चन्द्र यज्ञमण्डप मे लाये गये। वह खाट यज्ञकुण्ड के पास रख दी गयी। राजा बहुत वृद्ध दिखायी दे रहे थे। उनके सब अग गल गये थे। केवल उनका पेट बडा था, वह उढाये हुए चर्म मे मे भी दिखायी देता था। उनकी आँखें बन्द थी और ऐसा जान पडता था कि उनका श्वास निकल गया हो। जमदग्नि उठकर तुरन्त उनके पास गये। उनकी नाडी देखकर मन्त्रोच्चारण करके उन पर उन्होने पानी का छीटा दिया।

यज्ञकार्य प्रारम्भ हुआ। अग्नि मे घी की आहुतियाँ पडने लगीं। मन्त्रोच्चारण हुआ। शुन शेप के सुख का पार नहीं रहा।

सब स्वरो मे विश्वामित्र का भावपूर्ण, गम्भीर और मीठा स्वर स्पष्ट सुनायी दे रहा था। उनके हृदय मे जो खेद भरा था वह उनके स्वर मे प्रकट होकर शुन शेप के हृदय मे विचित्र भावोर्मि जागरित कर रहा था। शुन शेप को ऐसा लगा मानो उनकी वेदनापूर्ण आँखें अपनी अधमता के लिए ही द्रवित हो रही हों।

पूर्णाहुति की विधि प्रारम्भ हुई। सैनिक अजीगर्त को यज्ञकुण्ड के पास ले आये। यह उसका पिता था या कोई अपरिचित क्षीण विषयी-सा दिखायी देता हुआ नराधम? उसने शुन.शेप का अब क्या सम्बन्ध रहा? स्वप्न मे अनुभूत दुखद अनुभवो का मानो वह साथी था। किन्तु वह तो अब यहाँ

बैठे हुए इन सब ऋषियो मे से राजा वरुण मे मिलने के लिए उत्सुक था।

अजीगर्त की आँखो मे विष भरा था। वह कभी-कभी द्वेष से विश्वामित्र की ओर देख लेता था। अपने पिता की यह वक्र-दृष्टि शुन.शेप भलीभाँति समझता था। यह भी उसकी समझ मे आ गया था कि वह अत्यन्त नीच काम करने के लिए तैयार हुआ था।

वहाँ रखी हुई एक शिला पर शुन.शेप को खडा करके अजीगर्त ने उसे एक स्तम्भ मे तीन बन्धनो मे बाँधा। वहाँ खडे-खडे ही शुन.शेप को आसपास दृष्टि डालकर सन्तोष हुआ। वह इस प्रकार उन सबको व्योम मे से देख रहा था मानो स्वयं ही देव हो। वह यथार्थ मे देव ही था, क्योकि ये सब उसे अर्घ्य देने के लिए एकत्रित हुए थे। उसे हँसी आयी। हँसकर उसने विश्वामित्र की ओर देखा। ऋषि की वेदनापूर्ण आँखें हँसी, और उनका मुख अधिक म्लान हो गया।

मन्त्रोच्चारण होता गया और आहुतियाँ पड़ने लगी।

शुन.शेप जहाँ यूप मे बँधा था वहाँ से बहुत दूर तक देख सकता था। पास मे ही वेदी थी। उसके सामने बीच मे मार्ग छोड़कर सब दोनो ओर बैठे थे। यज्ञमण्डप मे से बाहर के मण्डप से होकर वहाँ तक मार्ग जाता था जहाँ दूर पर आने के लिए बड़ा-सा द्वार बनाया गया था। इस मार्ग पर इस समय कोई नही था।

मार्ग निर्जन था। उस पर धूप छा गयी थी। यज्ञ के धुएँ मे से देखने पर शुन शेप को यह व्योम का मार्ग-सा जान पडा। यही था वह सीधा, चौड़ा और तेजस्वी व्योम-मार्ग जिस पर चलकर वह राजा वरुण से मिलने जायगा।

शुन शेप अपने शरीर की सुध-बुध भूल गया। उसने समझा कि वह व्योम मे ही है। विकसित नयनो से वह वरुण के आने की प्रतीक्षा करता रहा। अभी आयेंगे···अभी···अभी ही···इस अजीगर्त ने उसका शिरच्छेद किया कि बस वे तुरन्त···।

विश्वामित्र मन्त्र बोल रहे थे, पर उनकी आँखें शुन शेप पर ही स्थिर

थी। यह सुकुमार और सुन्दर युवक क्या उनका पुत्र है ? कितना सुन्दर सिर, कितना मनोहर मुख, कमल से कमनीय और धीर गम्भीर नयन। स्वर्ग से उतरकर आये हुए देव के समान वह यूप पर लटक रहा था और गर्व से चारो ओर देखता हुआ आनन्दोल्लास से मन्द-मन्द हँस रहा था। क्या यह मानव है ? क्या यह देव है ? निकटस्थ मृत्यु भी उसे भयभीत नही कर रही है।

विश्वामित्र ने अपना कर्तव्य अन्तिम क्षण के लिए रख छोडा था। कभी-कभी वे हरिश्चन्द्र की ओर देखते थे। अन्तिम क्षण मे देव कृपा करे और दोनो को बचा लें तो !

मन्त्रोच्चारण हुए। आहुतियाँ पूरी होने को आयी। विश्वामित्र ने जो निश्चय किया था, उसे पूरा कंरने के लिए वे तत्पर हुए। उनके हृदय की घड़कन इस समय वेग से चल रही थी। उन्होने भय को पूर्णतया जीत लिया था। उनकी दृष्टि के सामने कतव्य-निष्ठा अचल थी···उग्रा के पुत्र को बचाना, नरमेघ न होने देना, अपकीर्ति का कलश अपने सिर पर चढाकर सत्य के लिए मर मिटना।

मन्त्रोच्चार पूरा होने को आया।

वरुणदेव से मिलने के लिए शुन शेप की आतुरता बढती जा रही थी। उसकी दृष्टि तो तेज से परितृप्त व्योम-मार्ग पर स्थिर थी। देव कब आयेंगे ?

चारो ओर क्या हो रहा था, इसका उसे भान न रहा। उसे तो व्योम-मार्ग ही दिखायी देता था। उसके उस छोर पर वह अधीरता से घ्यान दिये बैठा था। और देव कब आयेंगे ? कब ? कब ?

उसके सामने फैले हुए धुएँ में से भी उसे ऐसा जान पडा मानो व्योम-मार्ग के उस छोर पर देव उतरे चले आ रहे हो। क्या यह सत्य है या सपना ?

तीन देवो को उसने आते देखा—श्वेत अश्व पर बैठे कन्धे पर धनुष-बाण रखे हुए—उसे ऐसा जान पड़ा मानो उसे दिव्य चक्षु प्राप्त हुए हो··· हाँ···तीन देव थे। तीनो घोडो से उतरे···और शस्त्र निकालकर तेजपूर्ण

मार्ग से होते हुए उसकी ओर आने लगे। शुन.शेप को उमग आयी···
प्रचण्ड···सर्वग्राही। उसने वीच मे स्थित देवो को पहचाना···वे ही देव
वरुण···जिनके लिए उसने तीव्र इच्छा की थी···और दिन-रात जिनके
सपने देखे थे, वे ही आ रहे थे।

देव के रूप का पार नही था। इस आदित्यवर्णी देव की कान्ति इतने
वर्षों मे भी वह भूला नही था। थे ही उसके देव···देव वरुण आये···आये···
उसकी ओर। उनकी वडी-वडी आँखो को वह भूला नही था, जो कि स्थिर
सर्वदर्शी भयरहित दो जलते हुए कोयलो के समान चमकती थी। वही मुख
—आदित्यवर्ण और भव्य। वह उन्हे दूसरे नाम से पुकारता था।···पर···
हाँ, ये ही थे वरुण राजा।

देव वडे वेग से उसकी ओर आ रहे थे, मानो जगत् को शासित करते
हो···कैसा तेज है!

शुन.शेप के गले मे शब्द निकले, "देव···राम' 'असुर वरुण!"

मन्त्रोच्चार करते हुए ऋषि तत्काल रुक गये। देव निकट-ही-निकट
आते दिखायी दिये। वर्षों का जो पूर शुन.शेप के हृदय मे रुका हुआ था वह
अव वह निकला। जो मन्त्र उसने अकेले सीखे थे और एकान्त मे जिनका
रटन किया था, वे कोकिल-कण्ठ स्वर पर आरूढ होकर अनजान मे ही
उसके मुख से निकलकर विहरने लगे।

सम्पूर्ण जन-समाज शान्त और स्तब्ध हो, श्वास रोककर मन्त्र सुनने
लगा।

यूप से बँधा हुआ नराधम का पुत्र देव के समान देदीप्यमान होने लगा।
उसके मधुर कण्ठ से राजा वरुण का आवाहन करनेवाले अपूर्व मन्त्र गूँज
रहे थे। उस मन्त्रोच्चार मे स्वर-शुद्धि थी, और सामने के ऋषियो के कण्ठ
मे जो उत्साह और भक्ति का कम्प नही था, वह उसके कण्ठ मे था।

शुन शेप के कण्ठ मे से उसके समस्त जीवन की आतुरता उमड रही
थी। वह ज्यो-ज्यो मन्त्र बोलता गया, त्यो-त्यो देव पास आने लगे।

वे तो आ पहुँचे थे···एकदम यज्ञमण्डप के सामने। दाहिनी ओर देवी

उपा थी। बाईं ओर देवो मे श्रेष्ठ इन्द्र थे।

उसने अपने कण्ठ से प्राण-प्रतिष्ठा की, उसने उपा का स्रवन किया। मन्त्रो से इन्द्र की आराधना की···अग्नि का आवाहन किया···उसके कण्ठ में से विद्या की सरिता अविरल वह निकली।

ऋषिवृन्द स्तब्ध होकर इस मन्त्र-दर्शन—नये मनोहर मन्त्रो के अपूर्व दर्शन—को सुनते रहे। यह नया मन्त्र-द्रष्टा कौन है ?

शुन शेप राजा वरुण की तेजपूर्ण वडी-वडी आँखे देख रहा था···ये ही···ये ही···ये देव···आये···तिमिर मे से उसे ज्योति मे ले जाने के लिए।

सब दग होकर देखते रहे। विश्वामित्र की आँखो मे से धडाधड आँसू वहने लगे।

शुन शेप अपने देव से मिलने के लिए उछलने लगा···उसका मन्त्रोच्चार वन्द हुआ·· वह श्वास लेने के लिए रुक गया।

"मैं ही देव, वरुण,···आया···आया···आया···" रोते हुए स्वर मे शुन शेप वोला और कूद पडा।

तत्काल उसके वन्धन टूट गये···ऊपर का, वीच का और नीचे का। वह यूप पर मे उछलकर देव के हाथो मे जा गिरने के लिए दौडा···और गिर पडा। विश्वामित्र खडे हो गये।

"पुत्र···पुत्र···पुत्र" सिसकियाँ लेते हुए वे दौडे। ऋषि खडे हो गये। लोगो मे हाहाकार मच गया।

शुन शेप ज्योही गिरा त्योही मूर्च्छित हो गया। विश्वामित्र दौडे और उसे हाथ मे उठा लिया। राजा हरिश्चन्द्र का श्वास अवरुद्ध होते-होते रुक गया, और उनके मुख मे मे आवाज़ निकली, "ओ···ओ···ओ!"

चेत मे आकर निस्तेज आँखो मे वे देखने लगे। राजा वरुण ने उन्हे शाप से मुक्त कर दिया था।

चौथा खण्ड

अभय-संशोधन

[1]

विश्वामित्र के तप का चमत्कार और अज्ञात युवक-ऋषि का मन्त्र-दर्शन देखकर लोग पागल हो गये, और सर्वत्र 'धन्य है' 'धन्य है' के अतिरिक्त और कुछ सुनायी ही नही देता था। राजा हरिश्चन्द्र को वरुणदेव ने नरमेध के विना ही शापमुक्त कर दिया। विश्वामित्र के प्रताप से पतित का पुत्र मन्त्रोच्चार करने लगा। नरमेध करना नही पडा। 'धन्य है। तीनो लोको मे एक ही ऋषि है—विश्वामित्र,' ऐसी वातें लोग करने लगे।

विश्वामित्र जव शुन शेप को लेकर यज्ञमण्डप मे वाहर निकले तव समस्त जनता उनके चरण-स्पर्श करने आगे वढी। यह उनके जीवन का धन्य क्षण था, तो भी उनके हृदय मे केवल दीनता थी। देवो ने उदारता की सीमा कर दी थी।

शुन.शेप को उठाकर वे अपने स्थान पर ले आये और उसे होश मे लाने के प्रयत्न करने लगे। वार-वार इस कोकिलकण्ठी और सुकुमार पुत्र की मुख-रेखा मे उन्होने उग्रा के दर्शन किये।

उन्होने शुन.शेप के शरीर पर वँधा हुआ वस्त्र उतार डाला। उसके वक्ष की वाई ओर उनकी दृष्टि पडी। वहाँ एक लाल चिह्न उन्होने देखा।

ऋषि की आँखो पर धुंधलापन छा गया। उसके वायें स्तन के नीचे

एक बडा-सा लाल चिह्न दिखायी दिया। शम्बर के गढ मे एक बालिका दिखायी दी—काली, सुकुमार और प्रेम मे पागल।

विश्वामित्र शुन:शेप को देखते रहे। वात्सल्य के ओघ मे खिचकर वे युवक से लिपट गये। शुन:शेप की आँखो मे उनकी आँखो का तेज था, उसके स्वर मे उनके बालपन का सस्कार था, और यह लाल चिह्न—मुद्रा—उसकी माता की साक्षी दे रहा था।

बिस्तर के पास बैठकर उन्होने शुन.शेप के सिर पर हाथ फेरना प्रारम्भ किया।

रोहिणी के गर्व का पार नही था। उसके पति के पागलपन मे से अचिन्तित परिणाम निकला। उसका 'विश्वरथ' अद्भुत है। जो कोई न कर सका उसे उसने किया और अन्त मे समस्त आर्यावर्त उसके चरण छूता है। उसके अस्वस्थ हृदय मे बालपन-जैसी उमग आयी और वह झटपट झोपडी मे आयी।

"ऋषिवर!" कहकर वह प्रेम से पास बैठ गयी।

"रोहिणी!" विश्वामित्र ने प्रेम से उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा।

बहुत बार जब पति के हृदय मे तूफान उठता था तब यह स्वस्थ और गर्विष्ठ स्त्री उन्हे समझ नही पाती थी, और सहानुभूतिपूर्ण भावोर्मि के बदले निरर्थक उपदेश दिया करती थी। उस समय उसके स्वभाव मे कभी-कभी पत्थर का कडापन दृष्टिगोचर होता था, और इसलिए वह ऋषि के हृदय की भावोर्मि पहचान नही सकती थी। किन्तु अनन्य भक्ति से वह ऋषि को पूजती थी, अपूर्व व्यावहारिकता से विश्वामित्र द्वारा प्राप्त किया हुआ सबकुछ वह सम्भालकर रखती थी। राजाहीन भरतो के लिए वह राजा और राजमहिषी दोनो की कमी पूरी करती थी, और यद्यपि वह उनके जीवन-मन्त्रो को सुलझा नही सकती थी तो भी वह सबकी सफलता के मार्ग मे सदा ही सक्रिय सहायता देने का प्रयत्न किया करती थी। ऐसी पत्नी भी उन्हे देवो की ही कृपा से मिली थी। इस समय इस प्रकार उसे सुखोर्मि का

अनुभव हुआ मानो इस समय यही विचार ऋषि के मन मे आ रहा हो।
"रोहिणी, यह कैसा अद्भुत लडका है ?" विश्वामित्र ने कहा।
"मानो आपका देवदत्त ही हो !" अनजान मे रोहिणी ने शुन शेप के पितृत्व का प्रमाण दिया। "कितना सुन्दर मन्त्रोच्चार वह करता था ! ऐसी शक्ति तो आपमे देखी थी जब आप छोटे थे, फिर कही नही देखी।"
"सच बात है, रोहिणी, देव तो दयावान हैं। मेरा पद रखनेवाला मुझे दिया तो सही।"
"आपका पद ?" आश्चर्य से रोहिणी बोल उठी, "वह कैसे ?"
"हाँ मेरा' 'रोहिणी यह मेरा पुत्र है," विश्वामित्र ने शुन.शेप की ओर दृष्टि डालते हुए कहा।
"आपका ?" और अब इस नये पागलपन का क्या होगा, यह समझने मे असमर्थ रोहिणी ने कहा।
"हाँ," विश्वामित्र ने धीरे से कहा, "और उग्रा का।"
"क्या कहते हैं ?" मानो ऋषि पागल होकर ऐसा कह रहे हो, इस भाव से रोहिणी ने पूछा।
"हाँ, इसके जन्म के समय भगवती ने इसे अजीगर्त अगिरा को सौंपा था। भगवान् वरुण ने आज लौटाया है।"
"क्या ऐसा भी हो सकता है ? क्या ऐसा कभी सुना भी है ?" क्रोध से लाल होकर अगस्त्य-पुत्री रोहिणी बोल उठी।
"मुझे कल रात अजीगर्त ने बताया।"
"झूठ बात है, वह झूठा है," रोहिणी चिल्लाकर बोली। उसकी रोष-पूर्ण आँखें सामने पडे हुए युवक की आँख, नाक और मस्तक पर स्थिर हो गयी। उसके मन मे सशय उत्पन्न हुआ और उसके हृदय को धक्का लगा।
"नही रोहिणी, सच बात है। इस विषय मे संशय के लिए तनिक भी स्थान नही है। तुम जिस लडके के साथ अगस्त्य के आश्रम मे खेलती थी, वह स्मरण है ? उसके साथ इसकी तुलना करके तो देखो। अभी तुमने इसकी तुलना मेरे और देवदत्त के साथ की थी, क्या भूल गयी ?"

"हाय-हाय, तो क्या होगा ?"

"यदि देव मुझे शक्ति दे, मेरा साथ दे, तो यह भरतो के सिंहासन पर बैठेगा।"

"क्या कहते है ? उसकी माता तो दस्यु-पुत्री थी," रोहिणी ने क्रोध मे कहा।

मानो रोहिणी ने कुल्हाडी मार दी हो, इस प्रकार विश्वामित्र के उल्लासपूर्ण मुख पर वेदना छा गयी। ऋषि मूकभाव से थोडी देर नीचे देखते रहे, और फिर उन्होने अपने गम्भीर नयन रोहिणी पर स्थिर कर दिये।

"रोहिणी !" विश्वामित्र के सस्कारी स्वर मे दृढता थी, "उग्रा आर्याओ मे श्रेष्ठ थी। हमारा पुत्र···मेरा पुत्र भी भरतो मे श्रेष्ठ है।"

रोहिणी की आँखो मे आँसू उमड आये और उसका मुँह लाल हो गया।

"क्या आप भरतो का विनाश करने बैठे है ?" उसने व्याकुलता से कहा और अस्वस्थता छिपाने के लिए वह वहाँ से उठकर चली गयी।

ऋषि मन्द-मन्द हँसे। अभी उनकी कसौटी पूरी नही हुई थी।

[2]

विमद, राम और लोमा तीनो आ पहुँचे और बाते प्रारम्भ हुई। ऋषि विश्वामित्र विचारमग्न थे। ज्यो-ज्यो भय बढता गया त्यो-त्यो उन्हे अभय के आनन्द का विशेष अनुभव होने लगा।

ऋषि के मन मे विचार आया—लोमा कैसी मनोहर होती जा रही है ! एक बार देवदत्त के साथ उसका विवाह करने का उनका विचार हुआ था। रोहिणी का भी मन था। सुदास को भी इस सम्बन्ध मे कहा गया था, किन्तु इसके लिए वह तैयार नही था। और अब तो यह हो ही कैसे सकता है ? सुदास वीतहव्यो के राजा अर्जुन के साथ उसका विवाह करना चाहता था।

शुन.शेप चेत में आया और राम को देखते ही वह उससे गले मिला। उनकी पुरानी मैत्री की बात यहाँ हरी हो गयी। शुन.शेप आँखें वन्द करके 'लोमा', 'लोमा' ऐसा कुछ बोला।

राम ने उत्तर दिया, "हाँ शुन.शेप! मैं जिस लोमा की बात करता था वह लोमा यही है। बहुत गडवड करती है।"

लोमा ने शुन शेप के मस्तक पर हाथ रखा। वह आँखे वन्द करके मुस्करायी और शुन.शेप पुन. शान्त होकर आँखे वन्द करके सो गया।

विश्वामित्र मन मे हँसे—यह लडका उनका और उग्रा का है, उसका रुधिर गाधिराज और शम्वर के रुधिर मे वना है। राजा दिवोदास की पुत्री से यदि यह विवाह कर ले तो आर्यावर्त से शेप विप भी निकल जाय। परन्तु यह हो कैसे सकता है? 'ऐसा सौभाग्यपूर्ण दिन आये तो पृथ्वी पर स्वर्ग ही आ जायेगा,' वे वड़वड़ाने लगे।

इतने मे ऋषि जमदग्नि आ गये। अपने इस वालमित्र को वताये विना विश्वामित्र ने न रहा गया—"जमदग्नि, इसका मुख देखो, इसकी आँखें देखो, इसका स्वर सुनो। क्या विश्वरथ का स्मरण नही होता? और इसके हृदय पर इसकी माता की छाप है," उन्होंने कहा।

"और देव वरुण ने तुम्हारे पास इसे लौटा दिया!"

"हाँ, पर मेरा किया-कराया सव व्यर्थ हो गया," आक्रन्दपूर्वक विश्वामित्र ने कहा।

"क्यों, अव क्या रह गया?"

"क्या तुम इसे भरतश्रेष्ठ के रूप मे स्वीकार करोगे?"

"भरतश्रेष्ठ!" चौंककर जमदग्नि वोले, "पर यह तो दासी-पुत्र है।"

"हाँ," कटुता से विश्वामित्र ने कहा, "हाँ, यह दासी-पुत्र, ऋषि-श्रेष्ठों के गुण द्वारा भरतो मे श्रेष्ठ होने योग्य भी हो जाय तो भी इसके शरीर मे शम्वर का रक्त है—इसीलिए न? इसलिए क्या तुम भी इसे योग्य स्थान न दोगे?' कहते-कहते ऋषि आवेश मे आ गये, "क्यों···क्यों? उग्रा इसकी माता थी, ठीक है न? जमदग्नि, मेरे वालपन के साथी, तुम भी

अभी वर्ण-द्वेष से परे नही हो सके हो ? अभी तक मैं तुम्हारे हृदय मे नही वस सका हूँ ?···नही···नही···वहाँ तो वसिष्ठ बसते हैं।"

"क्या रोहिणी को बता दिया है ?" जमदग्नि ने इस आवेश का उत्तर न देते हुए पूछा।

"हाँ, और वह तभी से मुँह फुलाये बैठी है।"

"उग्रा के पुत्र को यदि आप पुत्र मान लेंगे तो भरत आपको छोड देंगे।"

"यह क्या मै नही समझता ?"

"हमारे भृगु, अनु व द्रुह्यु भी इससे सहमत नही होंगे।"

"हाँ, और इसी से कहता हूँ कि तुम्हारा मेरे साथ कोई स्थान नही है।" विश्वामित्र की आँखो मे आँसू आ गये। "जाओ भाई, तुम अपने सत्य के पथ पर जाओ। मुझे अपना सत्य पालने दो। या तो आर्य सर्वोपरि और शुद्ध है, या मानवता ही सर्वोपरि और शुद्ध है, वर्ण-मात्र गौण है। या तो वसिष्ठ या विश्वामित्र—दोनों एक साथ कभी नही रह सकते।"

"विग्रह तो वसिष्ठ ने प्रारम्भ किया है," जमदग्नि ने कहा।

"यह विग्रह न तो कभी मिटा है और न कभी मिटेगा।"

"मामा, इसीलिए तो मैं इतने वर्षों से कहता आया हूँ कि तृत्सुओ का पौरोहित्य छोड दो," जमदग्नि ने कहा।

"जमदग्नि, जो मुझे स्पष्ट दिखायी देता है वह तुम्हे क्यो नही दिखायी देता ? मेरा पौरोहित्य तृत्सु-भरत की एकता की मुद्रा है। उसके समाप्त होते ही समस्त आर्यावर्त मे पुन. वैर और विष फैलने लगेंगे," विश्वामित्र ने खेदपूर्वक कहा।

"वे तो फैले ही थे। आज तक केवल तुम्हारे त्याग से ही वे दबे हुए थे, पर आज इसका परिणाम देख लिया न ? राजाहीन भरत निःसत्व हो गये है। तृत्सुओ के पास राजा और पुरोहित दोनो हैं।"

"तुम्हारी बात सत्य है।"

"तो आप यह पद छोडकर भरतो का राजपद क्यो नही स्वीकारते ?"

"मैं ? अरे देव !" कहकर विश्वामित्र हँस पडे, "अपना ऋपिपद मुझे भरतो के वर्तमान राजपद की अपेक्षा अधिक प्रिय है।"

किन्तु विश्वामित्र को आज इन सब वातो मे आनन्द नही मिल सकता था। जहाँ ये दोनो ऋपि वात कर रहे थे, वही कवि चायमान का भेजा हुआ दूत सब समाचार कहने के लिए घोडे पर आ पहुँचा। वसिष्ठ के आश्रम मे से भेद ने शशीयसी का हरण कर लिया है, मुनि वसिष्ठ ने देवो की आज्ञा मानकर समस्त आर्यावर्त का पौरोहित्य स्वीकार किया है; भेद का विनाश करने के लिए उन्होने युद्ध-घोपणा कर दी है तथा आर्य-राजाओ को आमन्त्रित किया है, ये सब वाते दूत ने विस्तार मे कह डाली।

ये मव भयकर समाचार थे। उनका पुरोहितपद जाते ही विष का प्रसार तो होने ही वाला था, यह सब सोचकर विश्वामित्र मन मे हँसे—और क्या हो सकता है ?

रोहिणी आयी। उसकी आँखें सूजी हुई थी। अपने क्रोध करने की क्षमा माँगने आयी थी। वह पतिव्रता थी, और पति के प्रति उसने जो अवि-नयी आचरण किया था उसका उसे दुख हुआ था। अपने पति के हृदय की व्यथा तक वह स्वय नही पहुँच सकी थी, उसे नही समझ सकी थी, इसका उसे दुख था, चिन्ता थी।

विश्वामित्र अपने विचार मे मग्न थे। उन्होने नि.श्वास छोडा।

शम्बर का काला पुत्र भेद, तृत्सु सेनापति हर्यश्व के पुत्र कृशाश्व की पत्नी को भगा ले गया। वसिष्ठ को देवो की आज्ञा प्राप्त हुई। देवो ने उन्हे समस्त आर्यावर्त के पुरोहितपद पर स्थापित किया, और अब जब तक भेद का वध न होगा तब तक वे विश्राम न लेंगे।

देव भी विचित्र परिस्थिति उत्पन्न कर रहे हैं। यहाँ तो उन्हे उग्रा का पुन पुन. सौंप रहे हैं,…और वहाँ शम्बर के पुत्र के वध की तैयारी करवा रहे हैं। देव ! देव !! यह आपने क्या सोचा है ? क्या देव की ही यह आज्ञा हुई है कि आर्य अब एक-दूसरे के प्राण लें।

शशीयसी के अपहरण के सम्बन्ध की बात सुनकर रोषपूर्ण जमदग्नि, रोहिणी, जयन्त, पुरुओ के राजा कुत्स, अनु और द्रुह्यु ओ के राजा आदि सबने विश्वामित्र से चर्चा की। जब जमदग्नि-जैसो का मन यह बात सुनकर तिलमिला उठा था, तो दूसरो की तो बात ही क्या ? विश्वामित्र ने सब चुपचाप सुना। सब चले गये। मामा-भानजे अकेले रह गये।

विश्वामित्र ने हँसते हुए कहा, "भाई जमदग्नि, शशीयसी के अपहरण से क्या तुम्हे भी बहुत दुख हुआ है ?"

"बहुत।" अल्पभाषी जमदग्नि ने स्वभावजन्य सयम छोडते हुए कहा, "यह तो अत्याचार कहा जायेगा। भेद ने मुनि का आश्रम भ्रष्ट किया और राजा सोमक की पुत्री और तृत्सुओ की भावी महिषी को वह भगा ले गया है। कोई आर्य यह सहन नही कर सकता। हमारे अनु और द्रुह्यु यह कदापि सहन नही करेंगे और आपके भरत भी इसे सहन नही करेंगे।"

विश्वामित्र इस प्रकार सहिष्णुता से सब सुनते रहे मानो वृद्ध हो—बहुत ही वृद्ध हो।

"यदि भेद शम्बर का पुत्र न होकर किसी आर्य राजा का पुत्र होता?" हँसकर विश्वामित्र ने कहा, "यदि उसका वर्ण काला न होता, गौर होता, तब तो सह लेते या नही ?"

"यह अलग बात है।"

"नही, यही सत्य बात है। शुनःशेप यदि दासी उग्रा का पुत्र न होता तो मेरे सिहासन को सुशोभित करने का अधिकारी माना जाता। राजा भेद यदि दास न होता तो राजा सोमक की पुत्री को भगा ले जा सकता था; पर वह तो दास, अधम, वध्य, मनुष्य कोटि का नही है, उससे ?" विश्वामित्र के स्वर मे अन्तर्वेदना की ध्वनि थी।

"मामा, क्या करना चाहते है ? क्या आप पागल हुए है ?"

"मै समझदार कब था ?"

"पर आप क्या करना चाहते है ?"

"भृगुश्रेष्ठ, मेरा मार्ग सीधा है। मैं अन्य मार्ग से नही जाऊँगा। भेद

और उग्रा दोनों आर्य हैं, यह मेरी दृष्टि है।"

"और हम सब…"

"तुम सब मेरे सर्वस्व हो—पर जमदग्नि, मेरे सर्वस्व से भी मेरे मन में सत्य श्रेष्ठतर है।"

[3]

रेणुका बच्चों के साथ बैठी बातें कर रही थीं। वे प्रश्न पूछतीं और बच्चे उत्तर देते थे। लोमा बात करते-करते उछली पडती थी। राम कुछ कहता था। शुन.शेप पूज्यभाव से पूछी हुई बात का उत्तर धीरे-से देता था। जब रोहिणी वहाँ आयी तब उनकी आँखें सूजी हुई थीं और उसके मुख पर उद्वेग था। रेणुका उन्हें देखते ही समझ गयीं कि कुछ गड़बड हुई है।

उन्होंने कहा, "आइये, आइये, मामीजी! बच्चो, जाओ, अब तुम लोग खेलो।"

"आपको कुछ गुप्त बातें करनी होंगी?" लोमा ने पूछा।

"तो इससे तुम्हें क्या? जा," रेणुका ने हँसकर कहा।

"अब तो मैं स्त्री मानी जाऊँगी।"

"नहीं…अभी तो तू बच्ची है…राम के साथ तो खेला करती है। जा, और देखना शुन शेप को मत सताना। उन्हें विश्राम करने देना।"

तीनों बच्चे चले गये तब रोहिणी की ओर घूमकर ममता से रेणुका ने कहा, "बैठिये, कहिए क्या है?"

"रेणुका, मुझ पर तो बादल टूट पडे हैं।" और रोहिणी का मुँह रुआँसा हो गया, गला रुँध गया।

"शान्त होइए। सबकुछ ठीक करनेवाले देवता तो है न!"

रोहिणी ने प्रयत्नपूर्वक पुन. मन को स्वस्थ किया और आँखें पोंछीं।

"अरे देव, मैं क्या कहूँ?" उन्होंने नि श्वास छोड़ा।

"क्यों, क्या है?"

"तुम्हारे मामाजी पुन पागल हो गये हैं।"

"कैमे ?"

"वे कहते है कि शुन.शेप उग्रा का पुत्र है और वे उसे भरतो का राजा बनायेंगे।"

"आप क्या कह रही है ? यह तो नयी बात है।"

"शुन.शेप का पिता अजीगर्त जो कुछ बहका गया उसे ऋषि ने सत्य मान लिया।"

"पर मामाजी इस प्रकार की मिथ्या बात पर कभी विश्वास नही करेंगे।"

"उन्हे विश्वास है कि वह उन्ही का पुत्र है। न जाने यह विश्वास उन्हे कैसे हो गया ? वह कलूटी युवावस्था मे ऋषिवर को छीन ले गयी थी, और अब इतने वर्षो बाद भी चैन नही लेने देती," रोहिणी ने अपनी व्याकुलता उपस्थित की। "वह तो मर गयी पर साथ ही मारती भी गयी।"

"व्याकुल न हो, मामीजी ! आप इस प्रकार व्याकुल होगी तो मेरी जैसी की क्या दशा होगी ?"

"कहो भला इस कलूटी का पुत्र भरतों का राजा कैसे हो सकता है ? विश्वामित्र का कुलपति कैसे हो सकता है ?"

"पर मामाजी ऐसा नही करेंगे।"

"क्या नही करेंगे ? उन्हे तो बस एक ही धुन है—उग्रा आर्या थी, उसका लड़का देवदत्त का बडा भाई है, हे देव !" इतना कहते-कहते रोहिणी रो पडी।

"मामीजी, आप ही इस प्रकार कहेगी तो जयन्त क्या कहेगा ? भरत महाजन क्या कहेगे ? और मामाजी की परिस्थिति कैसी हो जायेगी ? इससे तो हम सबकी हँसी होगी।"

"पर मैं क्या करूँ ?"

"मामाजी को आप समझाइये। वे आपके सुख मे सुख पाते है। आप उनके दुखो को भी तो समझिए।"

"मैं क्या समझूं, अपना सिर ? अगस्त्य के दौहित्र के बदले शम्बर का

दौहित्र भरतो का राजा हो ? नही, मै कभी न होने दूंगी, कभी नही। जब तक मैं जीवित हूँ, तब तक तो नही होने दूंगी," गर्विष्ठ रोहिणी ने कहा।

"मामीजी, इस बात मे हठ करना ठीक नही है। अधीर न होओ। मामाजी के मन की बात शान्ति से समझो तो सही। देखो, कोई-न-कोई मार्ग निकल ही आयेगा।"

"और न निकले तो ?"

"न निकले तो ? तो क्या ? यदि मै आपके स्थान पर होती तो पति की गोद मे सिर रखकर निश्चिन्त होकर सो जाती। जहाँ वे वहाँ मैं।"

"रेणुका, तुम नही समझोगी। तुम्हारे सौत नही न।"

"सौ सौतें हो तो भी क्या ? उन सबमे मैं आत्म-समर्पण मे बढ जाऊँगी। फिर उनके लिए कोई मार्ग ही नही रहेगा।"

"क्या भगवती है ?" जयन्त का स्वर द्वार मे से सुनायी पडा।

"क्यो, क्या है जयन्त ? आओ," रेणुका ने उसे भीतर बुलाया, "भृगु-श्रेष्ठ कहाँ हैं ?"

"मैं नही जानता। मैं तो उन्ही की खोज मे हूँ।"

"क्यो, क्या काम है ?" ज्यो-त्यो स्वस्थ होते हुए रोहिणी ने पूछा।

"आप काम कर रही हो तो मैं फिर आऊँगा।"

"नही, नही। क्या बात है, कहो ?"

"सुना है कि गुरुदेव प्रसन्नता से पुरोहितपद छोड देंगे।"

"अच्छा ?"

"हां, वृद्ध कवि ने विमद से कहलाया है कि हम पद के लिए तृत्सुओ से लडने को तैयार है। भरत महाजनो का भी यही मत है। और देखो, यदि गुरुदेव पुरोहितपद छोड दें तो हमारी नांक कट जायेगी।"

"ठीक है। तो हम भृगुश्रेष्ठ से पूछ देखें कि वे क्या कहते है," रेणुका ने कहा।

"यह बात इतनी ही नही है न। शम्बर का पुत्र राजा भेद मुनि के आश्रम मे जाकर शचीयनी का अपहरण करने गया।"

"ऐं !" दोनो स्त्रियाँ बोल उठी।

"और वसिष्ठ मुनि ने भेद का सहार करने के लिए सब आर्यो को सूचना भेजी है।"

"अरे रे ! और तुम्हारे गुरुदेव क्या कहते है ?"

"सुना है कि गुरुदेव ने ऋषि जमदग्नि से पूछा कि यदि राजा भेद आर्य होता तो क्या मुनि वसिष्ठ उसका वध करने को तैयार होते ?"

"हे देव !" इतना कहकर रोहिणी ने सिर पर हाथ रखा।

"जिन-जिन भरतो और भृगुओ ने शशीयसी के अपहरण की बात सुनी वे तो आवेश मे आ गये है। उनका बस चले तो वसिष्ठ मुनि के बिना ही भेद को मारकर वे शशीयसी को छीन लाये," जयन्त ने कहा।

"जयन्त," रेणुका ने कहा, "तुम क्या करोगे ?"

"अम्बा, मेरी नसो मे तो विष व्याप रहा है। एक काला व्यक्ति सोमक की कन्या को भगा ले जाय ? सचमुच, यह तो सीमा हो गयी।"

"और यदि गुरुदेव 'ना' कहेगे तो ?" रोहिणी ने पूछा।

"भरत हाथ मे नही रहेगे," जयन्त ने गम्भीर स्वर में कहा।

"जयन्त," रेणुका ने कहा, "भरतो पर विपत्ति आयी है। तुम भी इस प्रकार घबरा जाओगे तो क्या होगा ?"

"अम्बा, यह बात कुछ ऐसी-वैसी नही है।"

"पर उसमे से तुम्हे ही मार्ग निकालना होगा।"

"मुझे तो कोई मार्ग दिखायी नही देता। भरतो के भाग्य-निर्णय की अन्तिम घडी आ पहुँची है," जयन्त ने कहा।

"भाग्य-निर्णय की अन्तिम घडी नही आयी है, भाग्य फूट गया है," रोहिणी ने सिर पर हाथ ठोकते हुए कहा। जयन्त चकित होकर देखता रहा।

"जयन्त, घबराओ मत," रेणुका ने मीठे शब्दो मे कहा—"भरत, भृगु और मामाजी स्वय दूसरे झंझटो मे पडे है। धीरज बिना मार्ग नही मिल सकता। शान्ति से सोचकर आगे बढना।"

"वह दूसरा काहे का झझट है ?"

"देवदत्त का बड़ा भाई मिल गया है।"

"देवदत्त का बड़ा भाई ?" जयन्त ने आश्चर्य से पूछा।

"हाँ, उग्रा का पुत्र।"

"उग्रा का पुत्र ?" जयन्त मूर्च्छित होता-सा बोला।

"हाँ, जिसे मरा हुआ समझा था वह जीवित है," रेणुका ने कहा।

"कहाँ ? कौन ?"

"शुन शेप।"

"ऍं ?"

"और अब वह भरतो का राजा होनेवाला है," रोहिणी ने क्रुद्ध होकर कहा।

सेनापति जयन्त सब समझ गया। उसकी आँखो से चिनगारियाँ निकलने लगी। क्रोध मे वह खडा हो गया।

"भगवती, क्या यह सत्य है ? यदि सत्य हो तो एक बात निश्चित है कि..."

"क्या ?"

"सम्बर के दौहित्र के सामने यह सिर कभी नही झुकेगा," इतना कहकर रोष मे जयन्त वहाँ से चला गया।

रोहिणी और रेणुका एक-दूसरी की ओर देखती रही।

"देखा ?" अन्त मे रोहिणी ने कहा।

"मामी," रेणुका ने कहा, "इन सबका मार्ग एक ही है। आप मामा के हृदय मे प्रविष्ट होने का प्रयत्न करे।"

"कैसे ? वे तो द्वार सदा बन्द ही रखते है।"

"अरे, उसकी चाबी तो तुम्हारे ही पास है," रेणुका हँसी। रोहिणी भी हँसे बिना न रह सकी।

"मामा के पास जाइये। हिमालय का हिम तो सरस्वती ही बहाकर ला सकती है, और सरस्वती ऐसा न करे तो हम सब तडपकर मर जायें।"

रेणुका ने रोहिणी के कन्धे पर हाथ रखा।

"रेणुका, तुममे मन को मनाने की विचित्र शक्ति है।"

"आप सबके साथ ही रहकर तो सीखी हूँ। हमारे लिए मामा का हृदय कितना द्रवित होता है, यह तो आप जानती ही है। वे ही कठिनाइयाँ उत्पन्न करेंगे और वे ही उन्हें दूर करेंगे।"

रोहिणी ने कहा, "अच्छा, तब मैं पुन: जाती हूँ उनके पास।"

"बहन, क्रोध न करना, गर्व न करना और ईर्ष्या को दूर कर देना। उनके हृदय मे आपका स्थान अचल है। देव सब ठीक कर देंगे," रेणुका ने हँसते हुए कहा।

रोहिणी ने हँसते-हँसते कहा, "रेणुका, क्या एक बात कहूँ? अब ठीक अवसर है।"

"कौन-सी बात?"

"लोमा की, वह देवदत्त की पत्नी होने योग्य है। इतना करा दो न!"

"मेरी भी ऐसी इच्छा है, किन्तु लोमा और देवदत्त के हृदय भी किसी ने परखे हैं?"

"देवदत्त तो उसके लिए पागल है। आज जब से लोमा आयी है तब से उसकी आँखें उस पर ही स्थिर है। इतना करा दोगी तो जीवन-भर तुम्हारी ऋणी रहूँगी।"

"पर लडकी का माथा फिरा हुआ है," रेणुका ने कहा।

"तो भी आपका कहना अवश्य मानेगी।"

[4]

नदी-तट पर ऋषि विश्वामित्र अकेले चक्कर लगा रहे थे। उनके हृदय मे आत्म-श्रद्धा प्रकट हुई थी। अब वे निर्भय बने हुए थे। आज नये आये हुए संकटो का उन्हे दुख नही था। वसिष्ठ, रोहिणी, सुदास, भरत, भृगु, तृत्सु आदि सबको वे आपस मे लड़नेवाले छोटे बच्चो के समान समझ रहे थे।

उन सबकी व्यथाएँ उन्हे आज बालिश जान पडती थी। आज वे सबसे निर्लेप और पृथक् खडे थे—अकेले, किन्तु सत्य की दृष्टि मे सबका अवलोकन करते हुए, क्षमाशील हृदय से सबको सहन करते हुए।

विश्वामित्र आज आनन्द मे थे, क्योकि बन्धनमुक्त हो चुके थे। मूर्खो ! रग-द्वेष के लिए एक-दूसरे को काटने के लिए तैयार हुए हो ? इतना भी नही जानते कि आर्यत्व तो हृदय मे रहता है, चमडी मे नही ? शुन.शेप यदि मेरा पुत्र न होकर किसी दास का पुत्र होता तो भी उसका स्वर, उसके उच्चारण, उसकी विद्या व उसकी देवभक्ति कौन छीन सकता था ? शशीयसी का अपहरण करनेवाला राजा भेद यदि आर्य होता तो यही पाप पुण्य बन जाता। सहस्रो आर्य दासियो से विवाह करके आनन्द भोग रहे है और सैकडो आर्याएँ दासो के साथ सुख मना रही है। जहाँ सस्कार-भेद न हो वहाँ वर्ण-भेद मानना अन्धविश्वास है। समस्त जगत् अन्धा हो गया है।

इतने मे उनके आवास की ओर से कोई आता हुआ जान पडा। "कौन है ?" विश्वामित्र ने पूछा।

"मैं रोहिणी हूँ," रोहिणी ने कहा।

ऋषि पास सरक आये—"रोहिणी, इस समय तुम ? सोयी नही ?"

रोहिणी के स्वर मे आँसुओ का कम्प था, "आप इस प्रकार दु ख मे भरे घूमे और मैं सुख मे सोऊँ ?"

"रोहिणी, मुझे तनिक भी दु ख नही है।"

"क्यो ? यह और नया झझट पैदा हुआ है न ? भेद ने तो बडा भयकर काम किया। क्या होगा ?"

"देवो ने जो सोचा है वही होगा, और क्या ?" विश्वामित्र ने रोहिणी के कन्धे पर हाथ रखा।

"वसिष्ठ आपका पुरोहितपद ले लेना चाहते है, यह वात तो सव भूल गये है। शशीयसी के अपहरण की वात से ही सव लोगो का रक्त खौल उठा है।"

"क्यो न खौल उठे ?" दयार्द्र स्वर मे विश्वामित्र ने कहा, "आर्य

सहस्रो दासियो को भगा लाये और उनके पति तथा बाल-बच्चो को निराधार कर दे, इसमे हमारी शोभा है; पर यदि आर्य-स्त्री को कोई दासश्रेष्ठ भगा ले जाय तो इसमे भ्रष्टाचार हो गया! सचमुच इसके लिए तो बौखला जाना ही चाहिए और रक्त बहाना ही चाहिए।" विश्वामित्र बहुत हँसे।

रोहिणी स्तब्ध हो गयी, "तो आपको यह सुनकर क्या क्रोध नही आता?"

"आता है, किन्तु उतना ही जितना सिम्यु राजा की बहन को त्रसदस्यु द्वारा भगा ले जाने पर।"

"पर वह तो आर्या···हमारी···"

"रोहिणी, तो क्या राजा भेद हमारा नही है। वह उग्रा का भाई, हमारे यहाँ पला, पढा हुआ है—और मैंने उसका यज्ञोपवीत किया है।"

"···और वह उसने कलकित किया।"

"जैसा कि बहुत से आर्यो ने किया···"

"और सबको आप क्या ऐसा ही कहनेवाले हैं?"

"नही। यह सुनने का जिसे अधिकार होगा उसे ही कहूँगा। रोहिणी, मैं केवल तुम्हे ही कहता हूँ, क्योकि तुम मेरी अर्धांगिनी हो। मेरी बात जब तुम्हारे ही गले नही उतरती, तो दूसरे की क्या बात है?"

"पर आपका यह विचार यदि सब जानेंगे तो क्या होगा?"

"मेरी अपकीर्ति होगी। मेरा पुरोहितपद ले लेंगे। मुझे छोड देगे। बस, और क्या करेंगे?"

"हमारे भरतो का क्या होगा? हमारे बाल-बच्चो का क्या होगा?"

"उनका क्या होगा? यही देखकर सब हँसेंगे कि भरतो मे मेरे जैसा भी कोई उत्पन्न हो गया है, और क्या?" ऋषि हँस पडे।

"हे देव, यह आप क्या कह रहे है?" आक्रन्दपूर्वक रोहिणी ने कहा।

"रोहिणी, आर्याओं मे श्रेष्ठ, उद्वेग न करो। हम दोनो तो जीवन-भर के साथी है। जमदग्नि जन्म से मेरा मित्र है। भरत मेरे अपने हैं। तुम सब

अपने साथ मुझे मनचाहे ढग से जकडकर रखना चाहते हो, पर इस प्रकार मुझे जकडकर रखने मे लाभ क्या होगा ? तुम सब मुझे पागल समझते हो, पर मैं तुम सबका पागलपन स्पष्टतया देख सकता हूँ। हम लोगो का मेल हो कैसे सकता है ? और तुम मुझे अपने साथ रख सको तो मैं आत्मद्रोही, सत्यद्रोही, देवद्रोही, मृतवत् शव के समान रहा तो भी क्या, और न रहा तो क्या ?"

"यह क्या करने बैठे है ऋषिवर, आज तक का किया-कराया क्यो धूल मे मिला रहे है ? आपकी कीर्ति और प्रतिष्ठा तक कौन पहुँच सका है ?"

"कीर्ति और प्रतिष्ठा ! यह तो मेरी शक्ति का भूषण···मुझे देवो ने दिया है। यदि वह शक्ति चली जाय तो ये दोनो कैसे रहेगे ?"

"अब क्या होगा ? पिताजी भी नही है कि कोई मार्ग निकालें।" रोहिणी रोने लगी।

"यदि गुरुदेव होते तो वही मार्ग बताते जो मै देखता हूँ। रोहिणी, रोओ मत। तुमने मुझसे विवाह किया है, मेरी कीर्ति, प्रतिष्ठा या पद से नही। पर मैं यह भी देख रहा हूँ जिस सत्य का मैंने वरण किया है, उसका तुमने वरण नही किया है।"

थोडी देर तक दोनो शान्त रहे।

"शुन शेप के लिए क्या सोचा है ?" अन्त मे रोहिणी ने धीरे से पूछा।

"अभी निश्चय नही किया। तुम्हे मैंने बहुत दुखी किया। क्षमा करो रोहिणी, मेरे जैसे पति का वरण करके ऐसे सकट तो भोगने ही होगे।"

विश्वामित्र ने रोहिणी को बडे प्रेम से गले लगा लिया। रोहिणी को रेणुका की सम्मति स्मरण हो आयी।

"नाथ, उस समय मैं उग्र हो गयी थी। क्षमा तो मुझे माँगनी चाहिए। जिसको आपने ज्येष्ठ पुत्र माना है, वह मेरा भी ज्येष्ठ पुत्र है।"

"रोहिणी, तुम यथार्थ मे अद्भुत हो ! पर तुम्हारे त्याग पर मैं अपनी कर्तव्यपरायणता कैसे रच सकता हूँ ?"

"तो शुन.शेप के विषय मे क्या सोचा ?"

"अभी निश्चय नही किया।"

"उग्रा के पुत्र को भरतश्रेष्ठ बनायेंगे तो मैं उसे स्वीकार करूँगी, इसका विश्वास रखें। पर गविष्ठ भरत इसे स्वीकार नही करेंगे। जयन्त तो ये बातें सुनकर जल-भुन गया है।"

"रोहिणी, भरतो या अपने बच्चो को मैं तनिक भी दुखी नही होने दूंगा। उन्हे किसी प्रकार कमजोर भी न होने दूंगा।"

"वचन देते है ?"

"हॉ, वचन देता हूँ। जाओ, जाकर सोजाओ, तुम्हारा स्वास्थ्य बिगड़ जायेगा।"

"आप भी चलिये।"

"नही रोहिणी, आज तो सिन्धु की तरगो मे से कुछ नया सगीत मुझे सुनायी दे रहा है। तुम जाओ, मैं भी आ जाऊँगा। तुम सो जाना रोहिणी, मेरी रोहिणी, मैं चाहे जैसा होऊँ, पर उदार वृत्ति से मुझे अपने हृदय मे स्थान देना।"

"नाथ, आपको कोई नही समझ सका, तब मैं कैसे समझ सकूंगी ? देव, मुझे आवास तक पहुँचाने चलिये।"

रोहिणी को पहुँचाकर लौटते समय कोई उनके पैर पड़ा।

"कौन है ?"

"मैं हूँ शुन:शेप।"

"शुन शेप, तुम अभी सोये नही ?"

"मैंने सोने के बहुत प्रयत्न किये, पर मुझे नीद ही नही आती। इसी से मैं आपकी प्रतीक्षा करता था।"

"वत्स, तुमने यह सब विद्या कहाँ से प्राप्त की ?"

"देव, मैंने तो कितने ही पाप करके यह विद्या प्राप्त की है।"

"विद्या प्राप्त करने मे जो पाप किया जाता है वह पाप हो ही नही सकता। मुझे बताओ तो सही वत्स, कि पतित के घर रहकर तुमने ये सस्कार कहाँ से प्राप्त किये ?"

सिन्धु के तट पर चक्कर लगाते-लगाते शुन शेप ने ऋषि को अपनी पूर्ण आत्म-कथा कह सुनायी। उसने अपने मोहक ढंग से अपनी विद्या-प्राप्ति की उत्कट इच्छा शब्दबद्ध की, अभेद्य कठिनाइयो को पार करने की उसने अपनी आतुरता का वर्णन किया और अपने को वेचने का पाप करके सुरा-ग्रस्त पिना के पास से विद्या प्राप्त करने के कठिन प्रयत्नो का विस्तार से वर्णन किया। अन्त मे यथार्थ विद्यानिधियो के मुख से एक बार मन्त्रोच्चार सुनने की अभिलापा को सन्तुष्ट करने के लिए अपने को बलिदान करने का भी अपना सकल्प कह सुनाया। यह सुनकर विश्वामित्र मुग्ध-से उस सुकुमार युवक को देखते रहे। उनके अपने विद्या-प्रेम मे से उग्रा ने कितना सुन्दर नव-जीवन निकाला था।

प्रेम से विश्वामित्र ने उसके दोनो कन्धो पर अपने दोनो हाथ रख दिये, "शुन.शेप, आर्यों की विद्या के स्वामी होने के लिए देवो ने तुम्हे बचाया है।"

"गुरुदेव, आपकी कृपा के अतिरिक्त मुझे और कुछ नही चाहिए।"

"अच्छा वत्स, जाओ, अव तुम सो जाओ।"

"और आप ?"

"मैं तो यहाँ अभी टहलूंगा, तुम जाओ।"

"जैसी आज्ञा," इतना कहकर शुन शेप अपने आवास पर लौट आया।

और उनके हृदय मे सिन्धु की तरगो के उल्लास-गान की ध्वनि सुनायी दी। शुन शेप जिस ओर गया था उस ओर दृष्टि डालकर वे स्थिर हो गये।

"यह दासीपुत्र ? भरतश्रेष्ठ होने के अयोग्य ?" वे मन मे वडवडाकर हँसे, "अन्धो ! यह विरल सरलता, विनय, एकनिष्ठा, किसके है ? कहाँ से आये ? कहाँ से उसे प्राप्त हुए ? और क्या अव उसे छोड देंगे ?"

"पर आर्य नही समझेंगे, वसिष्ठ नही समझने देंगे—कभी नही समझने देंगे। जो वस्तु मुझे दीपक के समान दिखायी देती है उसे वसिष्ठ अन्धकार कहते हैं। रोहिणी, जमदग्नि, जयन्त, भरत, भृगु, मित्र और शत्रु—सबकी

आँखो पर अँधेरा छा गया है—केवल भगवती लोपामुद्रा की आँखो मे प्रकाश था, तो भी इस अन्धकार का आश्रय लेकर उन्होने उग्रा के पुत्र को आज तक छिपाये रखा। आज भी वे न कहे तो कौन जान सकता है ? कौन कह सकता है ? मैं यदि आज भेद के पापाचार की मुक्त-कण्ठ से निन्दा करूँ तो मेरी कीर्ति और प्रतिष्ठा बढ जाय। पुरोहितपद भी छोडना न पडे…"

विश्वामित्र हँसे। यह सब करे तो ?

"नही…नही…मुझे तो अपने सत्य के ही पथ पर चलना चाहिए—अकेले ही—भले ही विनाश के मुँह मे, वही मुझे शान्ति मिलेगी।"

[5]

जमदग्नि पुरुओ के राजा कुत्स के साथ मन्त्रणा करते थे। राजा कुत्स रेणुका और लोमहर्षिणी की माता के मामा होते थे। हिमालय की कन्दराओ के प्रदेश मे बसनेवाले यह वृद्ध पुरुश्रेष्ठ हिमालय के अवतार के समान थे। पहाड़ के समान उनका शरीर अभी तक अभेद्य था। बहते हुए झरने से अंकित सिकुडन उनके पूरे शरीर पर थी, और उनके सिर के हिमधवल बाल कैलाश का स्मरण करा रहे थे।

जमदग्नि की चिन्ता का पार न था, इसलिए उन्होने भृगुओ मे विद्या-निधि माने जानेवाला वृद्धश्रवा, अपने बडे पुत्र विदन्वन्त, विश्वामित्र के बडे पुत्र देवदत्त और भरतो के सेनापति जयन्त इत्यादि को भी उस समय वहाँ बुलवा लिया था।

भरतो पर, भृगुओ पर, अरे समस्त आर्यो पर, ऐसा सकट कभी नही आया था। उन सबके राजा, गुरु और देव विश्वामित्र इस समय पागल हो गये थे। ऐसी परिस्थिति मे विश्वामित्र को तृत्सुओं का पुरोहितपद छोडना पडे, यह इन सबको नीचा दिखानेवाली बात थी। तो भी इस पद को सुरक्षित रखने के प्रयत्न करने की विश्वामित्र की इच्छा तक नही दिखायी देती थी; और सबकुछ इस प्रकार व्यवस्थित कर दिया गया था कि

विश्वामित्र स्वय भी इस पद को छोडना अस्वीकार नही कर सकते थे।

और इस समय, जिसके अस्तित्व का किसी को सपना भी नही था, वह उग्रा का पुत्र भी प्रकट हो गया। गर्विष्ठ भरतो ने तो देवदत्त को ही अपना राजा माना था। भूतपूर्व सेनापति प्रतर्दन और जयन्त ने उसे राजा जैसा मानकर भरतो की महत्त्वाकाक्षा का पोषण किया था, और आर्यो मे विपुल और समृद्ध भरत जाति ने तो आशा की थी कि वह बडा होकर सिहासन पर वैठकर अपूर्व पराक्रम कर दिखायेगा। तृत्सुओ के वर्चस्व से मुक्त करने-वाले की पदवी तो उसे अभी से ही मिल गयी थी। अगस्त्य के दौहित्र का यह स्थान शम्वर का दौहित्र कैसे ले सकता था ?

और इस सव परिस्थिति मे भेद की करतूत ने विचित्र समस्या उप-स्थित कर दी थी। शशीयसी के अपहरण से सवको क्रोध आ गया था। दास पशु नही थे, मनुष्य थे, सेवा करने मे प्रामाणिक थे—उनमे जो सस्कारयुक्त थे उन्हे विद्याभ्यास कराना सरल था—और उन्हे विश्वामित्र ने यज्ञ करने का अधिकारी भी मान लिया था। इससे भरत उनसे वहुत प्रसन्न रहते थे, वे इन असस्कारी दासो का सुधार करते और उनके गर्व का पोषण करते थे। दूसरो के दासो की अपेक्षा भरतो के दास सन्तोषपूर्वक रहते थे और इसमे उन्हे लाभ भी होता था। छोटे-वडे गाँवो मे दासियो के साथ भरत विवाह भी करते थे, जिससे उनकी शक्ति वढती थी। परन्तु, सृजय के राजा सोमक की पुत्री और तृत्सुओ की भावी रानी को दास भगा ले जाये, यह तो असह्य था! सवके हृदय से इस समय एक ही स्वर निकल रहा था—कुत्ते की पूंछ सीधी नही हो सकती और दास की नीचता नही जा सकती। वसिष्ठ की वात सत्य थी—आर्य स्त्री भगा ले जानेवाले दास का वध करना ही चाहिए।

विश्वामित्र का दृष्टि-विन्दु जव जमदग्नि के गले नही उतर सका, तव जयन्त, भृगुओ और भरतो के गले कहाँ से उतरेगा ? वे सव न तो कभी भेद की सहायता कर सकेंगे और न शशीयसी के अपहरण को एक सामान्य वात ही स्वीकार करेंगे।

"इन भरतो का क्या होगा ? मुनि वसिष्ठ क्रुद्ध है, इतना भी गुरुदेव इस समय देखते नही। याद इस समय शान्त न रह तो हमारी बुरी दशा होगी।"

"विश्वामित्र को हम लोग अपने साथ किसी दिन भी रख सके है ?" जमदग्नि ने कहा। "वे ही सकट खडे करते है और वे ही उनमे से छुटकारा पाने के मार्ग ढूंढ निकालते है और उनके साथ इन सब प्रयत्नो के पारणाम-स्वरूप हमारी शक्ति सदा बढती ही गयी है।"

"पर अब क्या होगा ?" कुत्स ने कहा, "मुझे इस शुन.शेप वाली बात का विश्वास नही है।"

"उस शुन शेप को तो बुलाओ। वह स्वय इस सम्बन्ध मे क्या जानता है, वह तो देखे," वृद्धश्रवा ने कहा।

"जाओ विमद, उसे बुला लाओ," जमदग्नि ने कहा।

"जो आज्ञा।" विमद वहाँ से उठकर शुन.शेप को बुलाने चला गया।

"सच्चा झझट तो इस समय एक दूसरा ही है। इस भेद के विरुद्ध विग्रह मे हमे क्या करना चाहिए ?", जमदग्नि ने कहा।

"यदि गुरुदेव को पुरोहितपद से हटा दें तब तो भरत तृत्सुओ की सहायता कभी नही करेंगे," जयन्त ने कहा।

"भृगु भी नही करेगे, और वे नही जायेंगे तो अनु और द्रुह्यु भी नही जायेंगे," वृद्धश्रवा ने कहा।

"सृञ्जय तो जायेगे ही," जयन्त ने कहा।

"सृञ्जय भी जायेगे और वीतहव्य भी जायेंगे। राजा अर्जुन के साथ सुदास का बहुत अच्छा सम्बन्ध है।"

"वह तो मेरी लोमा का अर्जुन के साथ विवाह करना चाहता है। पर लोमा इस प्रकार माननेवाली नही है," कुत्स ने कहा।

"गुरुदेव ने हमारे देवदत्त के साथ उसका विवाह करा दिया होता तो एक कठिनाई कम हो जाती।"

देवदत्त के मुख पर प्रसन्नता छा गयी।

"सुदास तो यथासम्भव सबकुछ करेगा।" वृद्धश्रवा ने कहा।

"तृत्सु, श्रृञ्जय और वीतहव्य आदि तीनो मिलकर भेद का अन्त कर देंगे, यदि हम लोग उसकी सहायता न करे तो," जमदग्नि ने कहा।

"हम लोग भेद की किस प्रकार सहायता कर सकते है ? हमारे महाजन क्या यह बात नही सुनेंगे ?" जयन्त ने कहा।

"विश्वामित्र कहेगे तो भी ?" कुत्स ने पूछा।

"विश्वामित्र ऐसा कभी नही कहेगे। वे भरतो को भली प्रकार पहचानते है, और भृगु तो ऐसा कभी नही मानेंगे। मुझे ज्ञात होता है कि भेद के इस अधर्म के कार्य मे हम लोग उसकी तनिक भी सहायता नही कर सकेंगे। और ऐसा कुछ करने का यदि प्रसग उपस्थित भी हो तो तृत्सुग्राम छोड हम लोग अपने गाँव मे जाकर बसे तभी यह काम बन सकता है," जयन्त ने कहा।

"एक प्रकार से यह बुरा नही है," कुत्स ने कहा।

"वह शम्बर का पुत्र है। अज और सिग्रु उसकी सहायता भी करेंगे और सिग्रु राजा की पुत्री तो हमारे घर मे ही बैठी है," जमदग्नि ने कहा।

"पर सुदास की रानी पौरवी आपके भाई की पुत्री है। क्या आपको वह घसीट न लेंगी ?" जयन्त ने पूछा।

"ऊँहुँ, सुदास की मैं कभी सहायता नही करूँगा। तृत्सुओ ने मुझे सताने मे कुछ भी उठा नही रखा था।"

विमद शुन शेप को लेकर आया, और अग्निकुण्ड के अस्पष्ट प्रकाश ने भी उसके तेजपूर्ण मस्तक, सुन्दर बडी-बडी आँखें, सौम्य मुख व सुकुमार काया ने सबका ध्यान आकृष्ट किया। सकुचाते-सकुचाते उसने सबको प्रणाम किया।

"बेटा शुन शेप, बैठो यहाँ। तुम अगिरा हो, तुम मेरे ही हो," जमदग्नि ने कहा।

"मै कृतार्थ हुआ, गुरुवर्य !" गौरवपूर्वक शुन शेप ने कहा।

"तुम्हारे पिता को मैं कल शापमुक्त कर दूंगा। तुमने अपने कुल को

तार दिया बेटा !" प्रेम से जमदग्नि ने उसकी ओर वात्सल्यपूर्ण दृष्टि से देखते हुए कहा।

"आप तो कृपानिधि है," शुन:शेप ने कहा।

इस सुकुमार और तेजस्वी बाल-ऋषि का विनय देखकर सबके हृदय कसमसाने लगे। इस सस्कारयुक्त युवक को उसके योग्य स्थान न मिलने देने के लिए मध्यरात्रि मे वे सब बडे-बडे तपस्वी और महारथी षड्यन्त्र रच रहे थे।

"तुम्हे सपरिवार सुखपूर्वक रहने देने के लिए सरस्वती तट पर तुम्हारी सब व्यवस्था हम करवा देगे," जमदग्नि ने कहा।

"मुझे कुछ भी नही चाहिए देव," शुन शेप ने निर्लेप भाव से विनम्रतापूर्वक कहा।

"तुम्हारे माता-पिता को तो आवश्यकता होगी ?"

"वह तो आपकी कृपा और उनकी इच्छा पर निर्भर है।"

"तुम्हे क्या चाहिए ?"

"आपके और ऋषि विश्वामित्र के चरणो की सेवा करने के अतिरिक्त अन्य कोई भी इच्छा नही है।"

"पर फिर भी तुम्हे धन और धेनुओ की आवश्यकता तो होगी न ?"

"मैं उन्हे लेकर क्या करूँगा ?" शुन:शेप ने कहा, "मुझे क्षमा करे। मैं आपके चरण छूता हूँ। मुझे परिग्रह का मोह नही है। मै केवल मन्त्र-दर्शन करना चाहता हूँ।"

सब इस प्रकार लज्जित हो गये मानो इस लडके ने सबको चाँटा लगा दिया हो। सबने देवदत्त की ओर देखा, और फिर शुन शेप की ओर दृष्टि डाली। देवदत्त लम्बा और गोरा था। वह गर्विष्ठ जान पड़ता था। शुन:शेप सुकुमार और छोटा दिखायी पड़ता था। वह कुछ कम गोरा था और उसके मुख पर गौरव शोभायमान हो रहा था। जमदग्नि को ऐसा जान पडा मानो विश्वामित्र दो विभागो मे बँटकर नये स्वरूप मे दर्शन दे रहे हो।

"ठीक कहते हो पुत्र, तुम्हारे ललाट पर तो महर्षि होना लिखा है।"

"यदि देव और गुरु की कृपा हो तो," शुन शेप ने नीचे देखते हुए उत्तर दिया।

"अच्छा, अब तुम जाओ," जमदग्नि ने कहा।

"हाँ, पर देखो, कोई कहता था कि तुम अजीगर्त के पुत्र नही हो, क्या यह सच है ?"

शुनःशेप ने ऊपर देखा और जमदग्नि की ओर वह देखता रहा—"मै शुन.शेप अंगिरा हूँ," उसने सरलता से कहा।

किसी को कुछ कहने का साहस नही हुआ। शुन.शेप ने उठते हुए कहा, "आज्ञा ?"

"हाँ, अब कल प्रात काल।"

शुन शेप चला गया।

इस लडके ने अपनी निर्दोषता से सबको अपने-अपने दोष का ज्ञान करा दिया था।

"अद्भुत बालक है," कुत्स ने कहा।

"क्या यह मेरा भाई है ?" देवदत्त रोष से बोल उठा, "उसमे भरतो का तेज कहाँ है ?"

"कुछ भी हो, पर कोई महातपस्वी इसका पिता है और महासाध्वी इसकी माता है," जमदग्नि ने ऐसा कहकर देवदत्त की चपलता को रोका।

जमदग्नि के शब्दो ने सबके हृदय प्रभावित कर दिये।

उस रात्रि को सब चक्कर मे पड़े रहे।

[6]

प्रात काल यज्ञ के समय सब महारथी विश्वामित्र के पास एकत्रित हुए। जमदग्नि और राजा कुत्स के अतिरिक्त अन्य सब सामने बैठे थे, मानो गुरु के आदेश की प्रतीक्षा करते हो। स्त्रियाँ एक ओर बैठी थी। उनमे रोहिणी, रेणुका और लोमा भी थी। राम आकर जमदग्नि और विश्वामित्र के बीच मे बैठ गया। विश्वामित्र के मुख पर आनन्द था। उस मुख पर कही चिन्ता

और व्यथा की छाया तक दिखायी नही देती थी।

जब सब शान्त होकर 'उनके पास बैठे तब उनके प्रताप का महत्त्व सबकी समझ में आ गया। सबके हृदय का उद्वेग अन्धकार और बादलों के समान हट गया। उनके स्नेहमय स्मित से इस प्रकार सबके मुख खिल गये जैसे सूर्य के प्रकाश से फूल खिलते हैं।

"बोलो जमदग्नि, अब क्या करना होगा?" हँसकर विश्वामित्र ने पूछा। उनकी उपस्थिति मे मानो सब बातें सरल और सीधी हो गयी थी।

"मुनि तो तृत्सुग्राम चले गये हैं, इसलिए अब पुरोहितपद रखकर करेंगे क्या?" जमदग्नि ने कहा।

"जिस दिन की तुम प्रतीक्षा करते थे, वह आ गया न? सुदास ने सम्बन्ध तोड़कर हम लोगो को मुक्त कर दिया," ऋषि ने कहा।

"तो फिर अब मुनिवर को क्या सन्देश कहलाइयेगा?"

"सन्देश क्या? पुरोहित की नियुक्ति तो राजा करता है। इसमे पुरोहित का क्या काम?" विश्वामित्र ने कहा।

"तब मैं जो यहाँ आयी हूँ सो?" लोमा ने कहा।

"तुम राजा नही हो, राजा की पुत्री हो," विश्वामित्र हँसे, और उनके शब्द सुनकर सब हँस पड़े।

"तुम्हारे भाई मुझसे अलग ही होना चाहते हों तो फिर उन्हे हम लोग कैसे रोक सकते हैं?"

"तो मैं तृत्सुग्राम नही जाऊँगी।"

"यह बात अलग है। अच्छा हम लोग इस पर फिर विचार करेंगे। पर इस भेद के विषय मे अब हम लोग क्या करेंगे?" विश्वामित्र ने पूछा।

"भृगु, अनु और द्रुह्यु भेद की सहायता नही करेंगे," जमदग्नि ने कहा।

"भरत भी बहुत ही क्रुद्ध हुए हैं," जयन्त ने कहा।

"पर कल मैंने जो देखा उससे तो कहा जा सकता है कि तृत्सुओ की सहायता कोई नही करेगा," राजा कुत्स ने कहा।

"राजन्, तृत्सुओ को सहायता देने की आवश्यकता नही है," विश्वामित्र

ने हँसकर समझाया। "मुनिवर ने आर्यमात्र का पुरोहितपद लिया है, तृत्सुओ का नही। यह विग्रह केवल सुदास का ही नही होगा, यह तो आर्यत्व की रक्षा के लिए होगा। उसके राजा और सेनापति दोनो मुनिवर स्वय ही होगे।"

"अर्थात् ?" जमदग्नि ने पूछा।

"अर्थात् ? अर्थात् भृगु, भरत, अनु, द्रुह्यु जो-जो लडना चाहते हो वे सब मुनि की सहायता करेंगे। मुनिवर सप्तसिन्धु के पुरोहित व्यर्थ मे नही हुए हैं।"

"अरे हाँ, यह तो हमे सूझा ही नही, तव ?" कुत्स ने आश्चर्य प्रदर्शित किया।

"तव ? जहाँ तक मैं समझता हूँ, मुनि अपने मन की अवश्य करेंगे।"

"तब क्या किया जाय ?"

"मैं जो कुछ करना चाहता हूँ, उसे तुम लोग नही कर सकते।"

"ऐसी क्या बात है ?"

"मैं इस प्रकार से राजा भेद से व्यवहार करूँगा मानो वह आर्य हो। मैं उसके पास जाकर शशीयसी को छोड देने की प्रार्थना करूँगा। और यदि वह छोड देने को तैयार होगा तो हर्यश्व से प्रार्थना करूँगा कि कृशाश्व अपनी पत्नी को पुन. स्वीकार करे। वहुत से आर्य राजाओ ने अपनी अपहृता पत्नियो को पुन. स्वीकार कर लिया है।"

"हर्यश्व ऐसा नही होने देगा," जमदग्नि ने कहा।

"मैं जानता हूँ। तृत्सु अभिमानी है, और मैं जो कहता हूँ वह भी कोई साधारण बात नही है।"

"तो फिर ?"

"भेद से यज्ञ कराऊँगा। उसके पापो का प्रायश्चित कराऊँगा और यदि कृशाश्व ने शशीयसी को पुन स्वीकार नही किया तो जैसा पहले आंगिरा ऋषि ने अश्विनो का यज्ञ किया था वैसा ही यज्ञ कराकर शशीयसी का विवाह भेद के साथ कर दूँगा।"

"विवाह ? विवाह ?" सब चकित हो गये।

"हाँ, और फिर यदि वसिष्ठ समस्त सप्तसिन्धु के साथ आक्रमण करे तो भी मैं उनका सामना कर लूँगा, क्योंकि वही यथार्थ मे सत्य होगा।"

"यह कैसे हो सकता है ?" जमदग्नि ने कहा।

"कोई सुनेगा नही," जयन्त ने कहा।

"मामा," जमदग्नि ने कहा, "ये कोई बोलते नही, इसलिए मुझे ही इनकी ओर से बोलना पड रहा है। भेद ने भयकर पापाचार किया है। यह बात सुनकर मेरा भी रक्त खौल उठा है। कल भरत महाजन क्रुद्ध हो गये थे। अनुओ और द्रुह्युओ के महाजन भी यह सहन नही कर सके है। पूछ देखिए उनके राजाओ से। भले ही भेद आर्य राजाओ के समान हो, पर उसका यह पापाचार तो अक्षम्य ही है।"

"अच्छा समझा," विश्वामित्र ने हँसकर कहा, "जयन्त, मैं जिस अवसर की प्रतीक्षा करता था, वह आ पहुँचा है।"

"कौन-सा ?"

सब समझे कि ऋषि कोई नयी त्रासदायक सूचना देना चाहते है।

"बहुत वर्षों तक भरतो ने राजा के बिना काम चलाया।"

"आप तो है," जयन्त ने कहा।

"ऐसे ही प्रसग पर सत्य समझ मे आता है। एक ही व्यक्ति को राजा और ऋषि दोनो बनने का मोह नही रखना चाहिए।"

"क्या कहा ?" जमदग्नि ने आश्चर्यचकित होते हुए पूछा।

"अब अधिक समय भरतो को राजा बिना नही रखना होगा।"

सबका श्वास रुक गया। क्या शुन.शेप को भरतो के सिंहासन पर बिठाने का विचार है ?

"कौशिक..." रोहिणी गद्‌गद कण्ठ मे बोली।

"मैने निर्णय कर लिया है। आज सन्ध्या-समय अजीगर्त को शापमुक्त करने से पहले मैं देवदत्त को राजतिलक दूँगा," निश्चलता से विश्वामित्र

ने अपना निश्चय कह सुनाया।

अकल्पित संकल्प से सब आश्चर्यचकित हो गये। इस सकल्प का रहस्य किसी की समझ मे नही आया। पर विश्वामित्र ने एक वाक्य से सब चिन्ता दूर कर दी।

"जयन्त, जाओ अब तैयारी करो।"

भरत जाति की एकता और शान्ति की रक्षा होती जानकर सब भक्तिपूर्ण नयनो से उन्हे देखते रहे। सबको ज्ञात हुआ कि यह विश्वामित्र की वसिष्ठ को स्पष्ट और सफल फटकार है। अब भरत तृत्सुओ के राजा सुदास के नही है, गाधिराजा का पौत्र अब उनका राजा होगा। विश्वामित्र ने राजपद छोडकर भरत-तृत्सुओ को पुन. स्वतन्त्र करने की ओर पग बढाया था।

जमदग्नि अकेले ही विश्वामित्र को भली प्रकार पहचानते थे। उन्हे यह सकल्प अच्छा न लगा। इसका क्या अर्थ है ?

"अभी कौन-सी शीघ्रता है ?" जमदग्नि ने कहा।

"मुझे शीघ्रता है," अधिकारपूर्ण स्वर मे विश्वामित्र ने कहा।

कोई कुछ न बोल सका। इतने मे एक परिचर आकर खडा हुआ। परन्तु किसी को उससे भी कुछ पूछने की इच्छा नही हुई। विश्वामित्र ने उसे देखते ही पूछा, "क्यो ?"

"कृपानिधि, वृद्ध कवि का सन्देश लेकर भार्गव-दीर्घ आया है।"

"अच्छा, बुलाओ।"

सब चिन्तातुर हो गये। दीर्घ भीतर आया। वह लम्बा और मोटा, धूल मे लिपटा हुआ और वेग से पूरी की हुई यात्रा के कारण थका हुआ था।

"क्यो दीर्घ, बैठो," विश्वामित्र ने कहा।

"गुरुदेव, मैं प्रणाम करता हूँ।" उसने पहले जमदग्नि को फिर विश्वामित्र को प्रणाम किया।

"कुछ विश्राम ले लो," जमदग्नि ने कहा।

"वृद्ध कवि ने मुझे आज्ञा दी है कि रात को दिन मानकर मुझे आपके पास पहुँचकर समाचार सुनाना ही चाहिए।"

"क्या समाचार है ?"

"जिस दिन विमद इस ओर आने को चले, उसी दिन सन्ध्या-समय मुनि वसिष्ठ तृत्सुग्राम आ पहुँचे और भेद से लडने के लिए योद्धाओ को तैयार करने लगे। उनका विचार है कि सब आर्य राजाओ के पास स्वयं जाकर लडने के लिए योद्धाओ की माँग करें।"

"मैं नही कहता था ?" विश्वामित्र ने कहा।

"जब से वे आये तब से दासो को तृत्सुग्राम के बाहर बसने की आज्ञा हुई है, और जो कोई प्रतिष्ठित दास हो उसे मारना-लूटना प्रारम्भ हो गया है।"

"अच्छा ?"

"जी हाँ, और भरत तथा तृत्सु योद्धाओ के बीच भी मारपीट प्रारम्भ हो गयी है। वृद्ध कवि ने कहलाया है कि तृत्सुग्राम मे अब अधिक समय नही रहा जा सकता। उन्होने यथाशक्ति अधिक-से-अधिक व्यक्तियो को नदी के उस पार अनुओ के ग्रामो मे भिजवा दिया है। इसलिए तुरन्त ही आप सबको वहाँ चल देना चाहिए, ऐसी प्रार्थना की है।"

"अच्छा !"

"और अगले दिन अनूप देश के राजा अर्जुन भी तीन सहस्र योद्धाओ के साथ आ पहुँचे। ऐसा जान पडता है कि ये सब योद्धा वे वसिष्ठ को दे देंगे।"

"अच्छा, मुनिवर ने प्रारम्भ तो बहुत सुन्दर किया है," विश्वामित्र हँसे। ज्यों-ज्यो झझट बढता जा रहा था, त्यों-त्यो वे अधिक प्रफुल्लित होते जा रहे थे।

"और वृद्ध कवि ने कहलाया है," दीर्घ ने लोमहर्षिणी को देखकर कहा, "कि राजा सुदास ने वसिष्ठ मुनि की सम्मति मे राजा अर्जुन के साथ लोमादेवी का विवाह निश्चित किया है।"

"मैं उससे विवाह नही करूँगी," लोमा ने क्रोधपूर्वक कहा।

"हर्यश्व स्वय लोमादेवी को बुलाने यहाँ आनेवाले है।"

"इस जगल के राजा से मेरी पुत्री कभी विवाह न करेगी," कुत्स बोल उठे, "मैंने सुना है कि वह बहुत ही दुष्ट व्यक्ति है।"

"राजा सुदास की आज्ञा हो चुकी है," दीर्घ ने कहा।

"मैं नही जाऊँगी," लोमा ने दृढता से कहा।

"अर्जुन इसके योग्य नही है। लोमा के जैसे सस्कार है उस दृष्टि से तो यह उसे जीवित मार डालने जैसा काम होगा," जमदग्नि ने कहा।

थोडी देर तक कोई कुछ नही बोला।

"दादा," फिर रेणुका ने कहा, "तो लोमा को किसी प्रकार भी बचाना चाहिए।"

"मैं तो दूर रहा," कुत्स ने कहा।

"लोमा वास्तव मे कठिनाई मे पड गयी है," गहरा विचार करते हुए विश्वामित्र ने कहा—"मैं और जमदग्नि दोनो जब तृत्सुग्राम से चले जायेंगे तब इसकी चिन्ता कौन करेगा?"

"रेणुका इमे साथ रखेगी," कुत्स ने कहा।

"आज की परिस्थिति देखते हुए इसमे कोई बुद्धिमत्ता नही है," जमदग्नि ने कहा।

"राजन्!" विश्वामित्र ने कहा, "यह बात बहुत गम्भीर है। लोमा दिवोदास राजा की और आपकी बहन की पुत्री है। अर्जुन इसके योग्य नही है. तुम लोमा को विमद के साथ पुरुग्राम भिजवा दो, आज ही—अभी, हर्यश्व के आने से पहले। विमद थोडे सैनिक लेकर यहाँ से चलेगा और मार्ग मे किसी स्थान पर ठहरेगा। फिर···फिर दूसरे दिन तुम यहाँ से चल देना।"

रोहिणी ने रेणुका की ओर देखा। उसकी दृष्टि मे विनय भरा था।

"मामाजी, अब देवदत्त राजा हुआ, तो इमे रानी भी तो चाहिए न! लोमा का इससे विवाह कर दें तो?" रेणुका ने कहा।

यज्ञकुण्ड मे से जिस प्रकार एकाएक ज्वाला निकलती है, उस प्रकार उग्र बनकर लोमा एकदम खडी हो गयी।

"मैं दादा के साथ जानेवाली हूँ।"

"हाँ-हाँ, और इस समय ऐसे विकट प्रसंग पर एकाएक शीघ्रता करने की आवश्यकता भी नही है," विश्वामित्र ने कहा।

लोमा एक से दूसरे की ओर आँखें निकालकर देखती रही।

"तुम भी रेणुका के साथ जाओ," जमदग्नि ने हँसकर कहा।

रेणुका भी उसी प्रकार हँसी, जैसे पति को पूर्णतया पहचाननेवाली पत्नी हँसती है—माता से भी अधिक उदारता के साथ।

"ऐसी गडबडी मे मैं आपके पास से दूर कैसे जा सकती हूँ?" रेणुका ने कहा।

"रेणुका, तुम इतनी बूढी हुईं, पर अभी पति के पीछे पागल होना नही छूटा," राजा कुत्स ने कहा।

"पागल बनानेवाले पति खोजे ही क्यो?" आप कहे तो साथ मे राम को भेज दूँ। इस दौड-धूप मे वह आपके यहाँ स्थिर होकर कुछ सीख ही लेगा," रेणुका ने कहा।

"हाँ-हाँ, राम को भेजो। उसे भी मैं दो-चार शास्त्र सिखाऊँगा, जिनका तुम किसी को ज्ञान भी नही है," कुत्स इतना कहकर ठठाकर हँसे।

"हाँ-हाँ, ठीक है। मैं अम्बा के साथ दादा के यहाँ चली जाऊँगी," लोमा ने अपना अन्तिम निर्णय सूचित किया।

"रेणुका!" जमदग्नि ने कहा, "तुम इन बच्चो के साथ जाओ। बहुत दिनो से दादा के यहाँ गयी भी नही हो, और लोमा को अकेली भेजेंगे तो सुदास उसे शान्ति से रहने भी नही देगा। तुम साथ रहोगी तो ठीक होगा।"

"भृगुश्रेष्ठ जो कहते रहे हैं वह सत्य है। सुदास कब क्या कर बैठे इसका कोई ठिकाना नही है," विश्वामित्र ने कहा।

"रेणुका भी मेरे यहाँ बहुत वर्षों से नही गयी है। क्यो, ठीक है न रेणुका? तैयार हो जाओ," राजा कुत्स ने कहा।

"क्यो रेणुका ?" जमदग्नि ने पूछा।

"जैसी आपकी आज्ञा," रेणुका ने कहा।

"विमद, तुम लोमा को लेकर यहाँ से प्रस्थान कर दो। सन्ध्या को दादा, राम, रेणुका और अन्य लोग यहाँ से चलकर उसी मार्ग पर मिलेंगे। हाँ···पर वृद्ध कवि को तो कोई वाधा नही होगी न ?" जमदग्नि ने पूछा।

"नही होगी," विमद ने विश्वास दिला दिया।

"ऐसी धाँधली के समय राम कही भी शान्ति से रहेगा तो उन्हे अच्छा ही लगेगा।"

"अरे मैं सवकुछ समझ लूँगा," राजा कुत्स ने कहा।

"और मैं भी तो हूँ न," लोमा ने कहा। उसका हृदय हर्ष से नाचता था।

[7]

भरत, भृगु, पुरु, अनु और द्रुह्यु वीर जो यहाँ विश्वामित्र और जमदग्नि के निमन्त्रण पर नरमेध मे आये थे, उनके उल्लास का पार नही था। विश्वामित्र पर देवता प्रसन्न हुए, हरिश्चन्द्र राजा अच्छे हो गये, और रोहित अव इक्ष्वाकु जाति के राजा हुए। यह उत्सव तो था ही, उसमे वली विश्वामित्र ने तृत्सुओं के पुरोहितपद का त्याग किया, राजा-हीन भरतो को राजा दिया, और तृत्सुओ से सम्बन्ध टूट गया। इन कारणो से यहाँ एकत्रित सव वीरो के मन विजयोत्साह मे मग्न थे। और इस उत्साह का मध्यविन्दु वन गया भरतो की महत्ता और विजयाकांक्षा का ध्वज-दण्ड—नया राजा देवदत्त।

सन्ध्या के पूर्व विमद पचास भृगुओ और लोमहर्षिणी के साथ पुरुग्राम के मार्ग पर वढने लगा।

देवदत्त का राज्याभिषेक हुआ।

अजीगर्त की शुद्धि हुई।

दूसरे दिन प्रात.काल पुरुओ के राजा कुत्स ने भी प्रस्थान किया। रेणुका और राम दोनो उनके साथ चले। पुरुओ के राजा कुत्स का दल इस

प्रकार आगे बढ रहा था मानो कोई सेना विजय-प्रस्थान करके अपने शत्रु को ललकार रही हो।

हरिश्चन्द्र राजा के इस ग्राम से और उसके आसपास के प्रदेशो से नरमेध देखने के लिए आये हुए सैकडो नर-नारी और बच्चे, जो आसपास के खेतों मे ठहरे थे, वे भी इस दल को देखकर उत्साह मे भर गये। रंग, राग और नृत्य से सम्पूर्ण वातावरण उल्लासमय हो गया। राजा हरिश्चन्द्र के भोज-नालय मे ही दिन-रात सबके लिए भोजन की व्यवस्था थी। इस समय वहाँ कल्पनातीत धूम मची हुई थी।

इस जनसमूह मे भरत, भृगु, अनु और द्रुह्यु छाती फुलाकर घूमने लगे। योद्धाओ की भुजाएँ लडने के लिए फडकने लगी।

सबको ऐसा भास हुआ मानो भरत और भृगु आज दासता से मुक्त हुए हो। जमदग्नि जिनके पुरोहित थे वे अनु और द्रुह्यु भी इसमे प्रसन्न हुए थे। सबके मन मे यही विचार समा रहा था कि चलो तृत्सुओ के शासन से मुक्त तो हुए।

केवल विश्वामित्र ही अकेले दुखी थे। उनका पुरोहितपद इन पाँच-सात जातियो को एकता मे बाँधनेवाला बन्धन था। आज ये बन्धन छूट गये और ये अल्पबुद्धि इस प्रकार प्रसन्न हो रहे थे मानो मुक्ति मिल गयी हो। वे नही जानते थे कि भरतो और तृत्सुओं के मध्य एक राजा और एक पुरोहित होने से ही सप्तसिन्धु मे सुदास एकचक्र राज्य करता था और उसी से सुख और शान्ति व्याप्त थी। अगस्त्य और लोपामुद्रा की दूरदर्शिता द्वारा रचित महत्ता आज इस प्रकार नष्ट हो रही थी और ये मूर्ख आनन्द का अनुभव करते थे। पर इसका परिणाम क्या होगा ? वैमनस्य, विग्रह, हत्या-काण्ड—और क्या ?

इस प्रकार विश्वामित्र का हृदय खिन्न था, पर रोहिणी के हर्ष का पार नही था। देवदत्त की आँखो मे नया तेज चमक रहा था। जयन्त के गर्व की सीमा नही थी। इस प्रकार विश्वामित्र के स्त्री, पुत्र और शिष्य सब मुक्ति के आनन्द का अनुभव कर रहे थे।

विश्वामित्र और उनके अपने गिने जानेवालो मे आज कितना अन्तर स्पष्ट दिखायी देता था ! इतने वर्षो तक उन्होंने विभिन्न जातियो को एकत्र करने का जो प्रयोग किया था वह निष्फल सिद्ध हो गया। उन्हे और सव नही समझ रहे थे और वे सवके आनन्द को नही समझ रहे थे। उनके और इन सवके वीच मे एक दुस्तर सागर फैला हुआ था। पर उनके हृदय मे कही कटुता नही थी, कर्कशता नही थी। यह मार्ग उन्होंने स्वय अपने हाथो रचा था। अपनी निष्फलता को समझने और सुधारने मे उन्होने अपना कर्तव्य और आनन्द माना था। वे उत्साह से पागल इन स्त्री-पुरुषो को इस प्रकार देख रहे थे मानो स्वत. तट पर खडे-खडे नदी मे डूवते हुए मनुष्यो को देख रहे हो। अव वे भी मुक्त हो गये थे। उनकी रची हुई सृष्टि वसिष्ठ के स्पर्श मे अदृष्ट हो गयी थी। यह भी उनके लिए हर्ष का कारण था। यह सृष्टि उन्हे कारावासमय प्रतीत होती थी। स्वय अव क्या करे यही एक प्रश्न रह गया था।

और वह उग्रा का पुत्र···

उसके लिए तो अव भृगुओ मे ही व्यवस्था करनी पडेगी। भरतो मे कोई उसे सुख से रहने नही देगा। सव उसे अगिरा मानते थे। इसीलिए जमदग्नि ने उसे अपनाया था। मुनि वृद्धश्रवा भी उसमे रस लेते थे। किन्तु प्रात.काल के समारम्भ के समय उस लडके को उन्होने देखा। उसकी आँखें उन पर ही स्थिर थी—भक्ति-भाव से, पूज्य-भाव से। और वे भी उसे ही स्थिर नयनो से देख रहे थे। उनका वस चले तो वे उसे अपने ही साथ रखें, उसे अपनी विद्या का स्वामी वनायें। पर आज जो वे मन मे सोच रहे थे, उसमे उसका स्थान नही था।

[8]

दोपहर को तृत्सुओ का सेनापति हर्यश्व अपने घुडसवारो के साथ लोम-हर्षिणी को ले जाने के लिए आ पहुँचा।

देवो ने विश्वामित्र पर जो कृपा की थी और हरिश्चन्द्र को जो आयु

प्राप्त हुई थी उस विषय मे उसने सुना नही था। वह तो यह सोचता था कि जब वह हरिश्चन्द्र के ग्राम मे पहुँचेगा तब तक विश्वामित्र नरमेघ पूरा कर चुके होगे और तेजहीन ऋषि तुरन्त लोमा को भिजवा देंगे।

पर हरिश्चन्द्र के ग्राम के निकट आते ही उसके आश्चर्य का पार नहीं रहा। वहाँ उसे रणशृंग और दुन्दुभि का नाद सुनायी दिया, और अधिक निकट आने पर उसने चारो ओर सशस्त्र पहरेवाले खडे देखे। उसे ऐसा भास हुआ मानो सारा ग्राम युद्ध की तैयारी मे हो। वह पास आया और घुडसवार के हाथ उसने सन्देश भिजवाया कि तृत्सु सेनापति भरत-श्रेष्ठ से मिलने आये हैं। उत्तर मे धनुष-बाण और खड्ग से सज्जित सौ भरत उसे लेने आये।

'विचित्र !' हर्यश्व ने विचार किया। विश्वामित्र ऋषि से भेट करने के लिए यह सब ! वह कुछ समझ न सका।

उसे बुलाने जो अधिकारी आया था वह उसे एक महालय मे ले गया। योद्धाओ का सुसज्जित दल वहाँ इस प्रकार खडा था मानो युद्ध करने को तैयार हो। उनके मुख पर कठोरता थी। प्रत्येक की आँखो मे विष था।

हर्यश्व और उसके साथ चार तृत्सु-अधिकारी घोडो पर से उतरे। दोनो ओर खडे नंगी तलवारवाले सैनिको की पाँत से होकर वे अग्निशाला मे पहुँचे। हर्यश्व इस सबका अर्थ नही समझ सका।

सिंहासन पर एक लडका राजमुकुट धारण किये बैठा था। कौन, देवदत्त ? यह क्या ? पास मे ऋषि जमदग्नि, रोहित, अनु और द्रुह्यु ओ के राजा, और जयन्त सब सशस्त्र खड़े थे। विश्वामित्र के स्थान पर यह कौन है ? और प्रत्येक की दृष्टि उस पर गडी थी। प्रत्येक की आँखो मे से उसे विष बरसता हुआ दिखायी दिया, और ऋषि विश्वामित्र तो वहाँ कही भी नही थे। वह सकपकाकर खडा रहा। उसकी अगवानी के लिए सेनापति जयन्त आगे बढा।

"भरतश्रेष्ठ आपका स्वागत करते है," उसने कहा।

इस प्रकार हर्यश्व उससे गले मिला मानो स्वप्न देख रहा हो और

उसके साथ आगे बढ गया। सब उसकी ओर ही आँखे गडाकर इस आशा मे देख रहे थे कि अब कुछ होनेवाला है।

जमदग्नि धीरे से बोले, "हर्यश्व, आज राजा देवदत्त का राज्याभिषेक हुआ है। भरतो के नाथ अब···" हर्यश्व को चक्कर आने लगे। उसके घुटने स्वय ही झुक गये और उसने देवदत्त को प्रणाम किया।

"सेनापति, पधारिये। कुशल तो है?" देवदत्त ने पूछा।

"हाँ, देव!"

ऋषि विश्वामित्र कहाँ है? भरतो का राजा तो सुदास था, देवदत्त कहाँ से हो गया? वसिष्ठ वहाँ और देवदत्त यहाँ! यही बात वह नही समझ सका।

"क्या समाचार लाये हो?"

"राजन्, राजा सुदास की आज्ञा से कुमारी लोमहर्षिणी को बुलाने आया हूँ।"

"आपको व्यर्थ ही कष्ट हुआ," जयन्त ने कहा।

हर्यश्व को भास हुआ कि सम्पूर्ण राजसभा उसका उपहास कर रही है।

"कुमारी लोमहर्षिणी को मैं ले जाने आया हूँ," उसने फिर से कहा।

जमदग्नि ने मन-ही-मन मे कुछ गणना की। विमद इस समय बीस कोस निकल गया होगा, कहने मे कोई आपत्ति न थी।

"सेनापति, वह तो अपने दादा राजा कुत्स के साथ पुरुग्राम चली गयी है।"

"उसे वापस बुलवा लेना चाहिए।"

"सेनापति," देवदत्त ने कटुता से कहा, "इसके विषय मे क्या करना चाहिए, इसका विचार मैं करूँगा। जहाँ भरतो का राज्य हो, वहाँ अत्याचार नही हो सकता।"

वह लडका देवदत्त भी इस प्रकार बातें सुन रहा था, यह देखकर हर्यश्व को क्रोध आ गया। उसने पुन. चारो ओर दृष्टि डाली। उसे विश्वास

हो गया कि सब उसका उपहास कर रहे है।

"राजा सुदास की बहन को कौन रोक सकता है ?" हर्यश्व ने गरज-कर कहा।

"उसकी इच्छा के विरुद्ध उसे कौन ले जा सकता है ?" जयन्त ने भी वैसे ही गरजकर कहा।

जमदग्नि ने हाथ ऊँचा किया, "सेनापति, ऐसी बात करने से कोई लाभ नही है। राजा कुत्स अपनी बहन की दौहित्री को ले गये है। तुम उनके पास जा सकते हो।"

हर्यश्व ने ओठ चबाये।

"मुझे ऋषिवर विश्वामित्र से मिलना है। उनसे मिलकर तुरन्त ही पुरुराज के पास जाना चाहता हूँ।"

"जैसी तुम्हारी इच्छा। तुम सब भोजन-विश्राम करके कल यहाँ से प्रस्थान करना।"

"जैसी आज्ञा," हर्यश्व इतना कहकर वहाँ से चला गया।

वह जब विश्वामित्र के पास गया तब उसे इस परिवर्तन का रहस्य समझ मे आया। विश्वामित्र का पुरोहितपद जाने का अर्थ था कि स्वयं आर्यावर्त के ही खण्ड हो गये। उन्हे पुरोहितपद से हटाने का काम सरल था, किन्तु आर्यावर्त के खण्डित होने पर इसका परिणाम सँभालना कठिन था।

जिस विश्वामित्र से वह मिला, वे भी कुछ बदले-से जान पडे। उनका बदन खिन्न था, उनके बोलने की रीति तटस्थ थी। हर्यश्व ने प्रणाम किया।

"गुरुदेव, प्रणाम !"

"हर्यश्व, क्या तुम लोमा को लिवाने आये हो ?"

"जी हाँ।"

"क्या अर्जुन से उसका विवाह करना है ?"

"राजा सुदास की यही इच्छा है।"

"लोमा को अर्जुन अयोग्य लगता है।"

"इसमे अयोग्य लगने की क्या वात है ? क्या आर्यावर्त के किसी राजा से वह कम है ?"

"हर्यश्व, सुदास यह क्या कर रहे है ? उसने मुनिवर को पुरोहित बनाया, अच्छा ही किया। मुझे उस पद का मोह नही है। पर उसका परिणाम देखा ? भरतो और तृत्सुओ के बीच वैर स्थापित हो गया। इसका क्या अन्त होगा ?"

"आपके हाथ मे है। आपने भेद को सिर चढाया। आप उसका विनाश करके आर्यावर्त मे पुन शान्ति स्थापित कर सकते हैं।"

"हर्यश्व, मैं क्या कर सकता हूँ ? बीस वर्ष की तपस्या के पश्चात् भी यदि आर्यावर्त मे से वैमनस्य न गया, तो मैं किसी का विनाश करके वैर को कैसे शान्त कर सकता हूँ ? मैं तो हार गया। आप लोग जीते। जब अपने भरत मुझे स्वीकार नही करते तो समस्त आर्यावर्त मुझे कहाँ से स्वीकार कर सकता है ?" कहकर वे रुक गये।

"हर्यश्व, कल प्रात.काल तो तुम लौट जानेवाले हो न ?" विश्वामित्र ने धीरे मे कहा, "अच्छा तो मुनिवर मे मेरा एक सन्देश कहना।"

"मुनिवर पहले शक्ति ऋषि द्वारा सन्देश कहलानेवाले थे, पर मैं आने लगा तो मुझे ही आपको सन्देश देने और आपसे सन्देश ले आने को कह दिया है।"

"हर्यश्व," विश्वामित्र धीरे से बोलने लगे, "मुनिवर को मेरा प्रणाम कहना और कहना कि देव ने जिस प्रकार की दृष्टि दी है उसी प्रकार मैंने आचरण किया है और आगे भी करूँगा। मैंने देवो के कहने मे और आर्यो के उत्कर्ष के लिए पुरोहितपद स्वीकार किया था। आज मुनिवर की इच्छा के अधीन होकर वह पद छोड रहा हूँ। इतना ही नही, भरतो का स्वामित्व भी मैंने छोड दिया है। मैं अपने सत्य को अपने ही ढग पर सुरक्षित रखूँगा। किन्तु अब जो वैर बढेगा, अब जो रक्तपान होगा, अब आर्यावर्त के सुन्दर और समृद्ध ग्रामो मे जो क्रान्ति मचेगी, उसका उत्तरदायित्व मेरे सिर पर नही रहेगा।"

हर्यश्व सुनता रहा।

"भेद ने पापाचार किया है, अत्याचार किया है, यह सब ठीक है।" विश्वामित्र ने आगे कहा, 'किन्तु अत्याचार के विष में वर्ण-भेद का विष मिलाने से देव कैसे प्रसन्न हो सकते हैं ? किन्तु मुनिवर इस समय थोड़े ही माननेवाले हैं ? इस विष को उतारने का मैं प्रयत्न करूँगा—तुम्हारी रीति या भरतों की रीति से नहीं, पर अपनी रीति से—केवल अपनी ही रीति से।"

"तब क्या भेद के विनाश में भरत तृत्सुओं का साथ देंगे ?" हर्यश्व ने पूछा।

'यह तो अब भरतों का राजा जाने।"

बाहर से इस प्रकार कोलाहल सुनायी दिया मानो इसी प्रश्न का उत्तर मिल रहा हो। युद्ध का-सा स्वर सुनायी दिया। घोड़े हिनहिनाते हुए सुनायी दिये।

"यह क्या है ?" हर्यश्व चकित हुआ।

"घोड़े लाओ ! घोड़े लाओ !" बाहर उच्च स्वर हुआ।

ऋषि विश्वामित्र ऊँचा सिर करके इस कोलाहल का कारण जानने के लिए तनकर बैठ गये।

जयन्त आया। उसकी आँखें और उसका मुँह दोनों क्रोध से लाल हो गये थे।

'गुरुदेव !'

"क्यों, जयन्त ?'

"सेनापति हर्यश्व ने विश्वासघात किया।"

"क्या ?" हर्यश्व खड़ा हो गया।

ऊँचा, गर्विष्ठ जयन्त कमर पर हाथ रखकर हर्यश्व की ओर देखता रहा।

"तुम अर्जुन और उसके सैनिकों को कुछ कोस दूर पर खड़ा कर आये हो, क्यों ? और उसने राजा कुत्स को पकड़ लिया है।"

"क्या रेणुका भी पकड़ी गयी ?" विश्वामित्र ने कहा, "ऋषि जमदग्नि

की पत्नी ? कितना वडा अधर्म है !"

"यह क्या हुआ ?" कहकर हर्यश्व वाहर जाने लगा।

जयन्त ने उसके कन्धे पर अपना प्रचण्ड पजा रखा।

"सेनापति, भरतश्रेष्ठ की आज्ञा है।"

"आज्ञा ?"

"जव तक राजा कुत्स और उनके साथी नही छूटते, तव तक सव तृत्सु हमारे वन्दी है।"

"क्या कहते हो ?"

इतने वर्षों से चुप वैठे हुए भरतो के सेनापति को ऐसा अवसर कहाँ से मिलता ? उसने शान्ति से कहा, "तुम्हारे सव साथियो को हमने पकड लिया है, और घोडो को हम ले जाते है। आपके साथ हमारे दो नायक रहेगे। रुष्ट होने की कोई वात नही है।"

विश्वामित्र हँसते रहे। वैर की आग अव चारो ओर फैलने लगी थी। जहाँ द्वेष का साम्राज्य फैलता है वहाँ मनुष्यो को देवता अन्धा ही तो वनाते है, उनके मन मे विचार आने लगा।

हर्यश्व ने क्रोध से चारो ओर देखा। विश्वामित्र की ओर दृष्टिपात भी किया। मन मे ऐसी मूर्खता के लिए अर्जुन को गाली भी दी।

विश्वामित्र ने हर्यश्व के मूक प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा, "हर्यश्व, मै न तो पुरोहित हूँ और न राजा हूँ।"

"जयन्त ! जयन्त, चलो," जमदग्नि का अधीर स्वर सुनायी दिया।

"क्या जमदग्नि भी जा रहे है ?" विश्वामित्र ने पूछा।

"जी हाँ।" सेनापति जयन्त ने जाते-जाते कुछ ऊँचे स्वर मे कहा, "भरत-श्रेष्ठ की आज्ञा शिरोधार्य किये विना छुटकारा नही है।"

विश्वामित्र मन मे हँसे। उनका अकुश दूर होते ही जयन्त कैसा खिल गया है !

"अच्छा।"

हर्यश्व ने चुपचाप आज्ञा स्वीकार की और जयन्त चला गया। द्वार

के पास दो नायक मानपूर्वक हर्यश्व की प्रतीक्षा कर रहे थे। बाहर घोड़े हिनहिनाये। थोड़ी देर मे घोड़ो की टापो की टपटप सुनायी दी। वे दूर चले गये और टपटप बन्द हुई।

"हर्यश्व !" विश्वामित्र फिर हँसे, "आग लगाना बहुत सरल है, पर बुझाना कठिन होगा।" फिर थोड़ी देर पश्चात् वे धीरे-से बोले, "जैसी देव की इच्छा !"

[9]

पाँच सौ चुने हुए हैहय घुडसवारो सहित अर्जुन हर्यश्व के साथ आया था। सुदास ने रोका था, पर अर्जुन लोमा को ब्याहने के लिए अधीर था और हठ करने पर अर्जुन को कौन समझा सकता था ?

अर्जुन तो प्रचण्ड योद्धा था। उसके स्नायु अश्वराज का स्मरण दिलाते थे। उसकी भयंकर मुखमुद्रा त्रास फैलाती थी। उसके हैहय योद्धाओ की गर्जना से सेनाएँ काँपती थी। सप्तसिन्धु की सीमा से बहुत दूर पर बहती हुई रेवा के तीर तक उसकी धाक जमी हुई थी।

बहुत वर्षो से सुदास ने उससे मैत्री कर रखी थी। भरतो और उनके मित्रो से लड़ने का प्रसंग आने पर अर्जुन को साथ रखने से अवश्य विजय प्राप्त होगी, इस कारण उससे अच्छा सम्बन्ध रखने के लिए उसने बहुत बातें सही भी थी।

अर्जुन के सामने सप्तसिन्धु के राजाओ की कोई गिनती नही थी, पर उनके सस्कार, उनका सौन्दर्य और उनका शिष्टाचार देखकर उनके साथ मैत्री जोडने की इच्छा होती थी। उसे अपनी शक्ति का बहुत गर्व था, पर इसी इच्छा से वह गर्व भंग हो जाता था। जब सुदास ने उससे सहायता माँगी तब उसने तुरन्त 'हाँ' तो कह दिया पर एक ही शर्त पर, कि लोमा उसकी पत्नी बनेगी।

अनूप देश के जंगलो मे बसनेवाले राजा के रहन-सहन का सुदास को तनिक भी विचार नही था। उसकी अनेक स्त्रियाँ थी, इस प्रकार की

किंवदन्ति भी प्रचलित थी। उसमे सस्कार बहुत ही कम थे, यह तो स्पष्ट ही दिखायी देता था। तप और आचार-जैसी भी कोई वस्तु उसके राज्य मे होगी, यह भी शकास्पद था। मुनि अगस्त्य और भगवती लोपामुद्रा वहाँ आश्रम बनाकर निवास कर रहे थे, इसके अतिरिक्त इस देश के विषय मे और कोई अच्छाई सुनने मे नही आयी थी। सप्तसिन्धु के अप्रतिरथ राजा दिवोदास की पुत्री ऐंम देश के राजा से व्याह करे इसमे हेठी तो थी, पर सुदास को तो सप्तसिन्धु पर विजय प्राप्त करनी थी, और उस कार्य के लिए अर्जुन की सहायता अत्यन्त अपेक्षित थी। इधर अर्जुन को भी दिवोदास की कन्या से विवाह करके अपनी ऐंठ दिखानी थी। सुदास सहमत हो गया और अर्जुन तीन सहस्र घुडसवारो के साथ आ पहुँचा।

अर्जुन ने आते ही अपने आने का मूल्य माँगा—लोमा कहाँ है ? पर वह तो चली गयी थी। शेर की गर्जना के समान भयकर ध्वनि उसके मुँह से निकली। उसे शिष्टाचार की चिन्ता नही थी। "लोमा को उपस्थित करो, नही तो मैं अपनी सेना के साथ यहाँ आया हूँ, मैं रीते-हाथ लौटकर नही जाऊँगा।" सुदास घवरा गया, अर्जुन शत्रु वन जाय तो ?

अर्जुन से विरोध करना उसे सह्य नही था। उसने लोमा को ले आने का निश्चय किया। सुदास ने साथ मे हर्यश्व को भी भेजा।

मुनि वसिष्ठ राजा सोमक के साथ मन्त्रणा करने गये थे, इसलिए उनसे पूछने का समय नहीं था। अर्जुन और हर्यश्व जब हरिश्चन्द्र के ग्राम के पास आये, तब बडी कठिनाई से हर्यश्व ने अर्जुन को दूर ही छावनी डालकर एक दिन रहने के लिए समझाया। भरत, भृगु और उनके सब मित्र यहाँ साथ मे हैं, यदि वह साथ चला तो लोमा को कोई आने न देगा, और इस समय मार-काट करने मे कोई सार नही था।

अन्त मे अर्जुन मान गया। "लोमा को लिये विना न लौटना," उसने हर्यश्व से कहा। पर वह शान्ति से बैठ नही सकता था। अपनी ठोडी अपनी वज्रमुष्टि के सहारे टिकाकर रात-भर वह चुपचाप बैठा रहा। उसे सप्त-सिन्धु के उन छोटे-छोटे राजाओ और छोटी-छोटी सेनाओ से चिढ थी।

वह दस सहस्र घुडसवारो का स्वामी था, जबकि इन सब राजाओ के पास सब मिलाकर भी दस सहस्र घोडे नही थे। फिर भी जब वह यहाँ आता तब सब उसे यह होगा, यह न होगा, ऐसा कुछ-न-कुछ कहा करते थे। एक दिन ऐसा आयेगा कि मैं सबको अधिकार मे कर लूंगा, ऐसी उसकी इच्छा थी। किन्तु सबसे विशेष इच्छा यह थी कि वह तृत्सु राजा की कन्या के साथ विवाह करे। राजा दिवोदास की पुत्री उसकी पत्नी बने, उसकी आज्ञा का पालन करे, उसके चरण दाबे, खड्ग मांजे—बस इस समय यही एक बात उमकी महत्त्वाकाक्षा की सीमा थी।

उसके कान वनराज के समान सावधान थे। दूर से आते हुए घोडो और मनुष्यो की आहट उसने पायी। उसने कान ऊँचे किये। रात-भर इस प्रकार बैठे-बैठे क्या किया जाय ? इतनी देर मे तो न जाने क्या किया जा सकता है ? उसने तुरन्त नायक को आज्ञा दी और साथ मे पचास सहस्र योद्धा लेकर जिस ओर से आहट आती थी, उस ओर चल पड़ा। उसके सैनिक तो जगल मे पले थे, इस प्रकार उनके लिए आगे बढना नया नही था। चाँदनी रात थी, इससे मार्ग भी सरल हो गया था।

मध्यरात्रि के पश्चात् वे लोग एक छोटे-से गाँव मे पहुँचे। वहाँ सैनिक पहरा दे रहे थे। गाँव के एक बडे दालान मे एक देहाती खाट पर दो व्यक्ति सो रहे थे। चारो ओर लगभग पच्चीस सैनिक सोये पडे थे। थोडी दूर पर घोडे बँधे हुए थे। घोडो के बन्धन काट डालना, झोपडियो के पीछे जाकर खाट पर सोये हुए व्यक्तियो को उठा ले जाना और सोये हुए सैनिको को मसल डालना आदि दो-चार क्षण का काम था। और अर्जुन ने वैसा करने की आज्ञा दी। घबराये हुए और खुले हुए घोडो ने हलचल मचा दी। सहसा जागे हुए भृगु और पुरु सैनिक लडने के लिए तैयार हो गये। थोडे समय तक मार-काट चली। देखते-ही-देखते विमद के चालीस और अर्जुन के पन्द्रह सैनिक कट मरे। इसकी चिन्ता किये बिना ही विमद और लोमा को पकडकर, घोडे पर बाँधकर, बचे हुए आदमियो को साथ लेकर, अर्जुन अपनी छावनी मे लौट आया।

अर्जुन विचक्षण सेनानी था। जिस मार्ग पर उसकी छावनी थी उससे अलग मार्ग से विमद के सैनिक आये थे। उस मार्ग से कोई चला न जाय, इसलिए उसने अपने दूसरे सैनिक तैयार किये और जिस ग्राम मे विमद रात्रि को ठहरा था वहाँ प्रातःकाल के पूर्व ही जाकर उसने अपना अधिकार जमा लिया और छावनी डाली।

प्रात काल पुरुराज कुत्स आनन्द से अपने ग्राम जाने के लिए चले थे। रेणुका और राम उनके साथ थे। मार्ग मे उन्हे किसी प्रकार की कठिनाई उपस्थित होगी, इसका उन्हें सपने मे भी विचार नही था।

इस ग्राम मे राजा कुत्स और उनके साथी आ पहुँचे। और क्या हो रहा है यह समझने देने के पहले ही अर्जुन और उसके सैनिको ने उन्हे घेर लिया। कुत्स क्रोधित हुए। कौन पकडनेवाला है, इसकी पूछताछ की। पर अर्जुन तो हँसता ही रहा।

"मैं इतनी दूर आनन्द लने के लिए आया हूँ, व्यर्थ नही आया हूँ," उसने वृद्ध कुत्स ने कहा।

जब कुत्स, रेणुका और राम आकर विमद और लोमा से मिले तब अर्जुन की समझ मे आया कि उसके वन्दी महापुरुष हैं। किन्तु वह रात-भर जाग चुका था, इसलिए वह थोडे समय के लिए सो गया।

मध्याह्न के पश्चात् वह उठा और सब वन्दियो को उसने अपने सामने बुलवाया। कुत्स तो समझ ही न पाये कि सप्तसिन्धु मे ऐसा कौन है जो उन्हे पकड सके। गौरवभग्न रेणुका भी यह सब न समझ सकी। विमद ने तुरन्त अर्जुन को पहचान लिया।

"हैहयराज, यह क्या है ?"

अर्जुन ने भी उसे पहचान लिया।

"कौन, कवि चायमान का पुत्र! हा·· हा···हा, छोडो, छोडो उसे। इनके पूर्वज तो हमारे गुरु थे। हा···हा।"

विमद तुरन्त ही समझ गया कि वे सब अर्जुन के हाथ मे फँस गये हैं। पर वह चतुर था। लोमा को बचाने की उसे आवश्यकता प्रतीत हुई। उसने

लोमा की ओर संकेत किया।

"यह रेणुका ऋषि जमदग्नि की पत्नी और पुत्र तथा यह उनकी पुत्री है।"

"ओह ओ!" अर्जुन ने कहा। ऋचीक उसके दादा के पुरोहित थे, यह स्मरण करके उनके कुटुम्बियों का उसने सत्कार किया।

"मैं भाग्यशाली हूं, जहां जाता हूं वहाँ मुझे लाभ ही होता है।"

विमद ने आँखो के सकेत से राम और लोमा को चुप रहने की सूचना दी।

"तुम तो कुमारी लोमहर्षिणी को लिवाने के लिए आये होगे?"

"हाँ।"

"लोमा वही है, इसलिए सेनापति हर्यश्व उसे लेकर ही आयेंगे," विमद ने कहा।

लोमा समझ गयी और नीचे देखती हुई अम्बा के पास सरककर बैठ गयी।

"हॉ, लायेगा ही। नही लायेगा तो जायेगा कहाँ?"

अर्जुन बोलते-बोलते रुक गया। राम के मुख पर भयकर निश्चलता व्यक्त हो गयी थी। उसकी आँखे विकराल होकर अर्जुन को देख रही थी। अर्जुन को उसकी दृष्टि देखकर क्रोध आ गया।

"पुत्र, मेरी ओर तुम इस प्रकार क्यो देखते हो?"

"और तुम हमसे दासो के समान बातें क्यो कर रहे हो?" राम ने कहा।

विकराल अर्जुन और निर्भयता के कारण वैसा ही विकराल राम एक-दूसरे को देखते रहे। फिर अर्जुन मूंछो पर ताव देकर हँसा।

"जानते हो तुम्हारे दादा हमारे गुरु थे?"

"तुम्हारे दादा के आचरण से मेरे दादा तुम्हारा देश छोडकर चले आये थे, यह भी मैं जानता हूँ।"

"हा···हा···हा, दादा गये," अर्जुन ने हँसते हुए कहा, "अब रहे हम

लोग।"

"हाँ, अब रहे हम लोग," राम ने उसके शब्द कटुता से दोहरा दिये।

कुत्स ने बात बदल दी, "तब हमे अब जाने दो। मुझे गाँव जाना है।"

"क्या शीघ्रता है ?" अर्जुन ने कहा, "अभी थोडा समय विश्राम करो, भोजन करो और हर्यश्व के आने पर जाना। हाथ मे आये अतिथि को कौन इस प्रकार जाने देगा ?" अर्जुन ठठाकर हँसा।

"क्या मुझे बन्दी बताया है ?" कुत्स ने पूछा।

"यह मै कैसे कह सकता हूँ ?" अर्जुन ने कहा।

उसने भोजन की तैयारी करवायी और सब नहाने-धोने मे लग गये। पर उनके वन्दी सैनिको के पास शस्त्र नही रहने दिये गये थे, यह विमद भाँप गया।

पर उनके भोजन करके उठने से पहले ही आँधी-जैसी धूल उडी। घोडों की टापो की खट-खट सुनायी दी, तुरही का शब्द सुनायी दिया। तुरन्त ही चतुर अर्जुन के सैनिक सन्नद्ध हो गये।

धूल से आकाश भर गया, और प्रचण्ड गर्जना करते हुए एक सहस्र योद्धाओ ने इस छावनी पर आक्रमण किया। आगे-आगे जमदग्नि, देवदत्त और जयन्त थे।

अर्जुन एक क्षण मे सब समझ गया। वह जितना भयकर था उतना ही विचक्षण भी था। उसने अपने सैनिको को आगे वढने की आज्ञा दी, और स्वत. दस योद्धाओ के साथ खडा रहा। उसकी छावनी मे पुरु व भृगु योद्धा थे। उन्होने अपने मित्रो को पहचाना और जयघोष का प्रतिशब्द किया।

अर्जुन ने देखा कि प्रतिरोध अशक्य था। थोडे आदमियो के साथ वह लौटा। उसकी दृष्टि राम पर पड़ी। पास मे उसकी वहन खडी थी। अर्जुन को रीते हाथ लौट जाना स्वीकार नही था।

वह राम और लोमा की ओर बढा और उसके सैनिको ने दोनो को उठा लिया। अर्जुन और उसके योद्धा दोनो को घोडे पर विठाकर वहाँ से

विद्युत् वेग से भागे।

जमदग्नि और जयन्त ने जब हैहयो को परास्त कर दिया तब उन्हे ज्ञात हुआ कि लोमा और राम को लेकर अर्जुन भाग गया है।

जमदग्नि उग्र हो गये—"उनका पीछा करे।"

कुत्स ने उन्हे रोका।

"मेरे ग्राम चलो। यह तो वसिष्ठ के महाविग्रह का प्रारम्भ है।"

"पर यदि अर्जुन लोमा से विवाह कर ले तो?"

"उसकी चिन्ता न करना। वह लडकी इस प्रकार माननेवाली नही है।"

सदा सतोगुणी रहनेवाले जमदग्नि की उग्रता इस प्रकार शान्त न हुई।

"कुत्सराज, आप अपने ग्राम जाइये। छ. मास मे हम अपनी सेनाएँ एकत्रित करेंगे। मै मामा को ले आऊँगा। जब तक ऐसे दुष्ट जीवित है तब तक सप्तसिन्धु मे धर्म नही रह सकता। और विमद, तुम सैनिको को लेकर अर्जुन का पीछा करो। यदि वह न पकड़ा जाय तो मुनिवर वसिष्ठ के पास जाना और कहना कि महिष्मत के पौत्र अर्जुन हैहय के साथ लोमा का विवाह न करना। ऋचीक के पुत्र जमदग्नि की सौगन्ध है।"

[10]

मध्यरात्रि थी।

ऋषि विश्वामित्र की आँख लगी नही थी। चारो ओर फैलता हुआ असत्य उन्हे चिन्ता मे डाल रहा था। वे उठे, पास मे रोहिणी निश्चिन्त होकर सो रही थी। ऐसा जान पडता था मानो वह आज अपने राजा बने हुए पुत्र के सपने देख रही हो। उसके मुख पर मुस्कान थी। ऋषि विश्वा-मित्र क्षण-भर दयार्द्र आँखो से उसे देखते रहे। वे जीवन मे अकेले थे। उन्हे समझनेवाला कोई नही था।

वे धीरे से बाहर निकले। पुरोहितपद, भरतो का राज्य-विग्रह, राज-

नीति इत्यादि उन्होने साँप की केंचुली के समान उतार फेंके थे। उन्होने हाथ मे दण्ड-कमण्डलु ले लिया था।

वे धीरे-धीरे नदी के तट पर आये। नदी के सगीत ने उन्हे प्रोत्साहन दिया। तारो ने उनका साहचर्य प्राप्त किया। उन्होने धीरे-धीरे जगल की राह पकडी।

सर्प की केचुली पूरी उतर गयी। विश्वामित्र के साथ कोई नही था। उनके हृदय मे शान्ति थी।

उनका आज तक का जीवन पूर्व-जन्म के सस्कारो के समान विस्मृत हो गया। उनके हृदय मे शक्ति और शान्ति दोनो का सचार हुआ।

वे आगे-ही-आगे बढते गये। उनमे चरणो से उत्साह टपक रहा था। वे असत्य मे से सत्य मे विचर रहे थे।

उनके पीछे पत्तो की खडखड़ाहट हुई।

ऋषि हँसे। उनका वस चलता तो वे हिंसक जीव को हाथ मे लेकर सहलाते।

वे आगे बढे। चन्द्र अस्त हुआ। अन्धकार फैला। नदी के प्रवाह ने श्याम वर्ण धारण किया। थोडी देर मे अरुणोदय के चिह्न दिखायी देने लगे। प्रकाश छा गया। मन्द पवन वहने लगा। तट के एक पेड के पास वे खडे हो गये। पेड के सहारे खडे होकर उन्होने आँखें बन्द कर ली। उनके हृदय मे शान्ति थी।

सूर्योदय होने पर उन्होने आँखें खोली। उनके पैरो के पास कोई खड़ा था। उसने इनका कमण्डलु भर रखा था। उनके खडाऊं सामने व्यवस्थित करके रख दिये थे।

"कौन, शुन:शेप ?"

"जी, आज्ञा ?"

"मैंने तुम्हारे लिए सब व्यवस्था कर दी है।"

"मुझे किसी व्यवस्था की आवश्यकता नही है।"

"पर तुम यहाँ कहाँ से आये ?"

"मैं आपके आवास के बाहर ही था। आपके पीछे-पीछे मैं भी चला आया।"

"पर मुझे किसी की आवश्यकता नही है। अकेले ही जाऊँगा।"

"मैं आपके साथ नही चलूंगा, पीछे-पीछे आऊँगा। आप मुझे देखेंगे भी नही।"

ऋषि की आँखो में आँसू आ गये।

"पर वत्स, तुम्हे तो विद्या सीखनी है न ?"

"जहाँ आपके चरण पडेगे वहाँ रज सिर पर धारण करूँगा। इसी से सरस्वती माता स्वत: प्रसन्न हो जायेगी।"

विश्वामित्र का हृदय भावार्द्र हो गया। उग्रा—भक्तिपूर्ण शाम्बरी, पुरुष-रूप मे—पुत्र-रूप मे !

"पर मेरा कोई ठिकाना नही है, तुम्हे बहुत कष्ट उठाना पडेगा।" 'उग्रा ! उग्रा !! उग्रा !!!' ऋषि के हृदय मे प्रतिशब्द सुनायी दिया।

"क्या आज्ञा है ?"

विश्वामित्र हंसे—"एक शिष्य चलेगा।" शुन.शेप नीचे देखता रहा।

"भगवन् ! लोमा कहती थी कि मैं आपका पुत्र हूँ।"

विश्वामित्र चौके।

शुन शेप ने गद्गद कण्ठ से कहा, "मैं जानना नही चाहता, उत्तर नही चाहता, उत्तर देकर मुझे चिन्ता मे न डालियेगा।"

थोडी देर तक कोई न बोला।

"भगवन्, क्या मैं आपको पिताजी कहकर सम्बोधित कर सकता हूँ ?" कहते हुए शुन.शेप की वाणी काँप उठी।

विश्वामित्र की आँखो मे प्रकाश आया, वे उठे। पुत्र को गले लगाया, उसका सिर सूँघा।

'उग्रा ! उग्रा !! उग्रा !!!' उनके हृदय में प्रतिशब्द गूंज रहा था।

पाँचवाँ खण्ड

जमदग्नि की आन

[1]

पाँच महीने मे तो मुनि वसिष्ठ ने समस्त आर्यावर्त मे हलचल मचा दी। वे स्वयं राजाओ के पास गये, उन्हे कर्तव्य का बोध दिया, आर्यावर्त की अवनित का दर्शन कराया, उद्धार का मार्ग समझाया, युद्ध के लाभ बताये और मुनि के नाते प्रभावशाली शब्दो मे भयकर परिणामो की चेतावनी दी—यदि आर्य उनके आदेश का अनुसरण न करें तो ! मुनि के बाणतुल्य शब्दो ने आर्यों के हृदय वेध दिये।

मुनि की दृष्टि के सामने सदा समरागण के अधिष्ठाता इन्द्रदेव दिखायी देते थे। देव की आज्ञा से वे यह सब कर रहे थे, इस विषय मे उन्हे तनिक भी शका नही थी। वे ब्रह्ममुहूर्त मे उठते थे। कुछ समय तक देवाराधना करते थे। देव उन्हे दर्शन देते थे। तब वे अग्निशाला मे यज्ञ करते, शंकाशील लोगो का समाधान करते, सेना की व्यवस्था निश्चित करते और राजाओ को कर्तव्यबोध कराते थे। दोपहर मे तीन घटिका तक वे ध्यान धरते और अपनी हृदय-शुद्धि करते थे। कही राग-द्वेष उनकी दृष्टि मे प्रविष्ट न हो जाय इस भय से मन्त्रो द्वारा देवो का आवाहन करके उनके चरणो मे वे अपना स्वत्व न्योछावर कर देते थे। दोपहर के पश्चात् पुन मन्त्रंणा प्रारम्भ होती, व्यूह-रचना पर विचार किया जाता और जो महर्षि मिलने आते

उन्हे आदेश दिया जाता। सन्ध्या-समय पुनः वे यज्ञ करने बैठते। रात्रि मे राजा सुदास के साथ एकान्त मे मन्त्रणा होती और प्रायः समय मिलने पर, आर्यो की नीति के सम्बन्ध मे वे महापुरुषो को शिक्षा देते। रात्रि मे सबके जाने के पश्चात् पुन अग्निशाला मे जाकर मुनि वसिष्ठ देवों की आराधना करते और बहुत रात तक देवो का ध्यान करके अपनी दृष्टि विशुद्ध करते थे। उनकी आँखो मे निद्रा नही थी। बहुत बार तो मध्यरात्रि का ध्यान लगभग ब्रह्ममुहूर्त तक पहुँच जाता था और कुछ देर तक लेटकर तुरन्त ही स्नान-सन्ध्या के लिए नदी पर चले जाते थे।

बहुत बार तप से विशुद्ध बनी हुई उनकी दृष्टि के सामने देव उसी प्रकार देदीप्यमान रूप मे आ खड़े होते थे जैसे हाथ मे वज्र लेकर वृत्र को मारते समय इन्द्रदेव। उस समय उनके मानवीय बन्धन टूट जाते थे, उस समय उनका आत्मा ज्वलन्त और दुर्जेय आर्यत्व का साक्षात्कार करता था। यह आर्यत्व नर-नारियो को अमर बनानेवाला अमृत बनकर उन्हें समस्त सृष्टि का उद्धार करता जान पड़ता था।

इन पाँच महीनो मे वे बहुत घूमे—पालकी पर, घोड़े पर, रथ पर, और पैदल। सत्ता का गर्व हृदय मे प्रसारित न होने देने के लिए उन्होने अधिकाधिक नम्रता प्राप्त करने का प्रयत्न किया। सदा के आहार की वस्तुओ को छोडकर वे फल-मूल पर रहने लगे, धरती पर ही सोने लगे।

मुनि वसिष्ठ ने तप की पराकाष्ठा कर दी। ऐसा कठिन तप आज तक किसी ने नही किया था। उन्हे निरन्तर देव के दर्शन होने लगे। मध्यरात्रि मे देव उन्हे आदेश देते थे। भूत और भविष्य भी उनके सामने प्रकट होने लगे। उनके रक्षक, प्रेरक और पूज्य इन्द्रराजा सदा वज्र लेकर शोभायमान होते हुए उनकी आँखो मे दिखायी दिया करते थे।

आर्यावर्त भयाकुल था। उसका उद्धार करना उनका श्वास और प्राण बन गया'। मुनि की आँखो के सामने सदा वह आर्यावर्त दिखायी देने लगा—आर्ष जीवन से शुद्ध, धर्म के पुण्य-धाम के समान शक्ति से समृद्ध और देवी-देवताओं से सुशोभित। देव ही ऐसे आर्यावर्त की रचना करना

चाहते थे—वे तो केवल निमित्त-मात्र थे और दीनता से निमित्त-मात्र रहना चाहते थे। फिर तो उनकी प्रेरणा से आर्यावर्त के संस्थानो मे प्राण आ गये। ग्राम-ग्राम से आये लोग सब काम छोडकर शस्त्रो से सुसज्जित होकर भेद के विनाश के लिए तृत्सुग्राम मे आने लगे और तप तथा विद्या के धाम, ऋषियो के आश्रम, नव-चेतन से उभरने लगे। सर्वत्र आर्य-सस्कारो की विशुद्धि साधने के प्रयास होते रहे।

भरत और भृगु चले गये थे, परन्तु उनके स्थान पर अब दूसरे लोग आ गये थे। पहले के समान ही तृत्सुग्राम आर्यों का मुख्य नगर बन गया था। अन्तर केवल इतना ही था कि पहले वह सौम्य था, अव शूर बन गया था।

राजा सुदास की अभिलाषा का दिन निकट आ गया था। उसने चक्रवर्ती पद प्राप्त किया था। गाँव-गाँव मे उसका शासन माना जाने लगा। सव आर्यों ने दासो को गाँव से वाहर निकालना और दास महारथियो को अधिकार-भ्रष्ट करना प्रारम्भ कर दिया था। आर्य कुल के आचार-विचार की शुद्धि की रक्षा के लिए नये नियम बनाये और स्वीकार किये जाते थे। प्रत्येक सस्थान से सव राजा लोग सुदास की वढती हुई सेना मे सम्मिलित हो रहे थे।

जव मुनि पर्यटन करके लौटे तब सुदास ने उनसे कहा कि हर्यश्व के साथ हैहयो का राजा अर्जुन भी गया है। मुनि को यह वात अच्छी न लगी। स्वेच्छाचारी अर्जुन मे उन्हे अविश्वास था। अनेक वार देवो की आराधना करके उन्होने इस भयंकर राजा का हृदय निर्मल करने के लिए प्रार्थना की थी। आर्यावर्त की विजय मे वह एक अंग-रूप था। उसकी मैत्री का स्तम्भ दृढ करने के लिए उससे लोमा का विवाह आवश्यक था और मुनि को यह भी ध्यान था कि लोमा के साथ विवाह करने से अर्जुन के सस्कार जागरित होगे, लोमा जैसी जाज्वल्यमान युवती उस पर शासन करेगी। दूर-स्थित माहिष्मती नगरी की जव वह रानी वन जायेगी तव उसके कारण सरस्वती से भी अधिक विशाल रेवा के तट पर विद्या और तप का प्रसार होगा··· और यदि देव की इच्छा होगी तो उन्ही के हाथो आर्यावर्त की सीमा रेवा

नदी के तीर तक फैल जायेगी।

अनेक वार नव्यरात्रि में मन्त्रों का दर्शन करते समय उन्हें प्रतीति हुई थी कि अर्जुन और लोमा का विवाह आर्यत्व की विजय का एक अंग था। इसी में आर्यावर्त की जय-जयकार थी। और उसके द्वारा अर्जुन का हृदय संस्कारयुक्त करने की शक्ति देने के लिए वे देवों की प्रार्थना करते थे। उन्हें कभी-कभी ऐसा लगता भी था कि वह शक्ति देव उन्हें प्रदान कर रहे हैं।

तो भी जब वे अर्जुन से मिलते तब उनका हृदय काँप जाता था। उसमें धर्म या संस्कार के बीज थे या नहीं, इसमें भी उन्हें शंका थी। किन्तु देवों को यह काम कराना ही था, इसलिए उसे शुद्ध करने की शक्ति देव अवश्य प्रदान करेंगे, ऐसा मुनिवर वसिष्ठ मानते थे।

तो भी लोमा के पीछे अर्जुन का जाना उन्हें तनिक भी अच्छा न लगा।

एक दिन सन्ध्या-समय उन्हें समाचार मिला कि अर्जुन कुछ सैनिकों के साथ कुछ वन्दियों को पकड़कर तृत्सुग्राम लौट आया है; हर्यश्व और उसके सैनिकों को भरतों ने वन्दी किया था और वड़ा युद्ध हुआ था; जमदग्नि, कुत्स इत्यादि उसमें जीते थे।

यह अपूर्ण वात सुनकर वसिष्ठ आश्चर्य-चकित हुए। दूसरी दिशा में यह अकल्पित युद्ध चेत गया, इससे वे खिन्न हुए। आकर तुरन्त अर्जुन उनसे मिलने क्यों नहीं आया, यह भी उनकी समझ में न आया। देव की बनायी हुई योजना में यह बाधा उन्हें अच्छी न लगी। मुनिवर ने सुदास के पास समाचार लाने मनुष्य भेजा, किन्तु उत्तर मिला कि इस सम्बन्ध में सुदास को कुछ ज्ञान नहीं है; और जब उसने कुशाश्व को समाचार लाने भेजा तब अर्जुन थकावट के कारण सो गया था, इसलिए वह नहीं मिल सका। पर इतना ज्ञात हो गया कि वन्दियों में तो वह केवल दो को ही पकड़कर लाया था।

वसिष्ठ की चिन्ता का पार न था। यह अर्जुन विना कहे चला गया, विना पूछे चला आया और जो सोचा भी नहीं था वह कर आया। वह मेरी

और देवो की अवगणना कर रहा है, इसका भी उसे विचार नही था। तव तो वस एक ही मार्ग रह गया है—लोमा को उसके साथ व्याहने के अतिरिक्त उसके उद्धार का कोई उपाय नही था।

सारी रात्रि मुनि ने देवाराधना मे व्यतीत की। उन्होने देव मे अर्जुन के लिए सद्बुद्धि और अपने लिए शक्ति की याचना की। जिस मनुष्य पर आर्यावर्त का वल और विस्तार अवलम्बित था, उसे अपना कहा मानने की प्रेरणा करने के लिए उन्होने वहुत देर तक देवो की आराधना की।

प्रात काल स्नान-सन्ध्या करके जब मुनि स्वस्थ हुए तव एक शिष्य समाचार लाया कि कवि चायमान भार्गव का पुत्र विमद आया है और तत्काल मिलना चाहता है।

ऋषि ने विमद को तुरन्त ही वुलवाया।

वहुत दिनो तक घोडे पर अथक यात्रा करने के कारण वह धूलि-धूसरित हो गया था। उसने ज्यो-त्यो मुनि को प्रणाम किया।

"इस समय कैसे आये, विमद ?"

"मुनिवर्य, लोमा कहाँ है ? राम कहाँ है ?"

"यहाँ कहाँ हैं ?"

"अर्जुन हैहय उन्हे वलपूर्वक यहाँ उठा ले आया है।"

ऋपि की भौहे तन गयी। राजा दिवोदास की पुत्री और ऋपि जमदग्नि के पुत्र पर ऐसा अत्याचार हुआ ! वाहर से शान्त रहने का प्रयत्न करते हुए मुनि ने कहा, "क्या हुआ, विस्तारपूर्वक कहो ? ऋपि विश्वामित्र का क्या हुआ ? और यह सव क्या है ?"

विमद ने सक्षेप मे सव कह सुनाया। हरिश्चन्द्र का उद्धार, शुन.शेप का मन्त्र-दर्शन, ऋपि विश्वामित्र का निर्णय, देवदत्त का राज्याभिषेक, अपना पुरुग्राम की ओर प्रस्थान, लोमहर्षिणी, राजा कुत्स, अम्वा, राम और अपने वन्दी होने की कथा, भृगुओ और पुरुओ का धावा, लोमा और राम का अपहरण आदि सव वातें मुनि ने ध्यान मे सुनी।

"भरतो और भृगुओ ने तृत्सुओ मे विग्रह प्रारम्भ किया क्यो ?"

"विग्रह ?" विमद ने आश्चर्यान्वित होकर पूछा, "भूल है, भेद ने शशीयसी का जो अपहरण किया है उससे हम सब—भृगु-श्रेष्ठ भी—बहुत क्षुब्ध है। क्या वह पातक अक्षम्य नही कहा जा सकता है ?"

"ऋषिवर क्या कहते है ?"

"उन्होने हम लोगो से कहा है कि इस विषय मे तुम्हारी जो इच्छा हो करो। उन्होने पुरोहितपद और भरतो का राजपद दोनो छोड दिये।"

"भरतो की क्या वृत्ति है ?"

"अब क्या बतलायी जाय ? सबकी वृत्ति तो आपकी ही ओर है।"

वसिष्ठ ने चुपचाप देवो का उपकार माना। देव सभी कुछ कर सकते है। आर्यावर्त उन्हे एक होता जान पडा। किन्तु विमद के शब्दो पर उन्होने पुन: विचार किया। उन्हे शका हुई।

"अब क्या बताया जाय, कहो ?" उन्होने पूछा।

"राजा कुत्स, अम्बा, राम और लोमा पर अत्याचार हुआ है। अब और क्या कहा जा सकता है ?"

"मै अर्जुन को समझाऊँगा। वह क्षमा माँग लेगा, प्रायश्चित करेगा। उसे अपने आचार-विचार का कम ज्ञान है।"

"मुनिवर, आप—आचार के प्रणेता—क्या उसे क्षमा करेंगे ?"

"क्षमा करनेवाला मैं कौन हूँ ? जिसे देव क्षमा करें वही सच्चा। लोमा तो उसकी पत्नी होनेवाली है। वह लोमा को ले आया, इसमे मुझे देव का हाथ दिखायी देता है।"

"मुनिवर, यह आप क्या कहते है ?" विमद ने उच्च स्वर से पूछा।

"देव की इच्छा, अर्जुन और लोमा के सम्बन्ध पर रेवा-तट तक के आर्यो का उद्धार अवलम्बित है।"

"मुनिवर, क्षमा करे।"

"क्यो ?"

"यह बात नही हो सकती।"

"क्यो नही हो सकती ?" हँसकर मुनिवर ने पूछा।

"मुनिवर, महाअथर्वण ऋचीक के पुत्र भृगुश्रेष्ठ जमदग्नि की आन है। यह विवाह नही हो सकता," विमद ने स्थिर स्वर मे कहा।

मुनि क्षण-भर चुप रहे और अग्नि की ओर देखते रहे।

'देव, यह क्या है ?' वे मन-ही-मन बोले।

"कैसे जाना ?" उन्होने विमद से पूछा।

"भृगुश्रेष्ठ ने आपको यह कहने के लिए ही मुझे भेजा है। भृगुओ की आन के आडे कोई नही आ सकता।"

मुनि फिर चुप हो गये। भृगुओ-अथर्वणो जैसे ऋषियो की आन मे भयंकर तेज था। ऐसी आन का प्रभाव स्वय तो उन्होने कभी नही देखा था, किन्तु अगस्त्य मुनि जैसे महापुरुष भी उस आन का उल्लेख बहुत मानपूर्वक करते थे। महाअथर्वण ऋचीक की अन्तिम आन अर्जुन के दादा महिष्मंत के प्रति थी। परिणामस्वरूप वह मरा, उसके सहस्रो मनुष्य मरे, दुष्काल और महामारी से कितने ही वर्षों तक उसका देश त्रस्त रहा। आज उनके पुत्र की आन इस प्रकार उनके मार्ग मे कहाँ से आ गयी ?

'देव, यह क्या है ?' मुनि ने मूक प्रश्न किया। उन्होने एक क्षण तक आँखें बन्द करके राग-द्वेष को जीता।

"विमद !" उन्होने ऊँचे स्वर से कहा, "बहुत बुरा हुआ। भरतो, भृगुओ और पुरुओ के साथ मैं वैर करना नही चाहता। देव ने मुझे आर्यत्व का उद्धार करने की आज्ञा दी है। आर्यों को परस्पर लडना नही चाहिए। अर्जुन अधीर और क्रोधी है। उसने ऋषि-पत्नी रेणुका और उनके पुत्र राम को पकडकर महापाप किया है। जमदग्नि जैसे सौम्य महापुरुष ने ऐसा कोप क्यो किया होगा, यह मैं समझता हूँ। तुम शान्त हो जाओ। मैं अभी अर्जुन को यहाँ बुलवाता हूँ और लोमहर्षिणी तथा राम को भी यहाँ बुलवा लेता हूँ।"

[2]

विमद के जाते ही मुनि ने सुदास को बुलाया और अपने पौत्र पराशर को

अर्जुन को बुला लाने के लिए भेजा।

क्षण-पर-क्षण बीते। थोडी देर मे सुदास आया। मुनि ने उससे सब बात कही, कृशाश्व और अर्जुन को बुलाने के लिए दूत भेजे।

अन्त मे अर्जुन आया।

"आइए हैहयराज, बैठिए," मुनिवर ने कहा।

"यह सब क्या कर आये ?" सुदास ने पूछा, "और हर्यश्व कहाँ है ?"

"हर्यश्व तो पीछे रह गया। मैंने तो पुरु के राजा कुत्स और जमदग्नि की स्त्री, पुत्र और पुत्री को बन्दी किया था। पर फिर कोई बडी सेना आयी। मैने अपने सैनिको को लडने दिया और उस लडके और लडकी को लेकर यहाँ चला आया।"

"पर अपने मित्रों पर तुमने आक्रमण किया, इसका परिणाम क्या होगा ?" मुनि ने धीरे से पूछा।

"और क्या होगा ? मैंने उनके मनुष्यो को काट डाला, उन्होने मेरे मनुष्यो के प्राण लिये। बस, लेखा बराबर।"

"यह अनूपदेश नही है, और हम लोग बिना कारण मनुष्यो के प्राण नही लेते। और पुरुजन तथा ऋषि-पत्नी ?"

"उन्हे तो मैंने छोड़ दिया था," निर्लज्ज अर्जुन हँसा।

"पर इससे तो अपने ही मित्रो मे फूट पडेगी," सुदास ने कहा।

"उसकी अब क्या चिन्ता है ?" अर्जुन ने कहा, "तुम्हारे इन सब मित्रो के बदले मैं क्या कम हूँ ?"

"आर्यत्व के युद्धोत्सव मे एक भी आर्य की अवगणना नही हो सकती," मुनि ने कहा—"हम तो धर्म-युद्ध करने निकले है। दासो के विनाश के लिए हमने जो युद्ध ठाना है, उसमे ऐसी निरर्थक मुठभेड का भयकर परिणाम होगा।"

"ऐसा क्या परिणाम होगा ?"

"वे सब विरोधी पक्ष से मिल जायेंगे।"

"मैं पाँच सहस्र घुडसवार और बुलवा लूँगा।"

"परन्तु इस प्रकार यदि प्रत्येक व्यक्ति अपनी इच्छानुसार मनमाना युद्ध करेगा तो हमारी शक्ति क्षीण हो जायेगी। ऐसे युद्ध सर्वदा देव की इच्छा के अनुसार होने चाहिए, मनुष्य की इच्छा के अनुसार नही। नहो तो यह अधर्म का युद्ध हो जायेगा।"

"कैसे ? युद्ध मे धर्म और अधर्म क्या।" अर्जुन फिर हँसा।

"यही तो दुख है। जहाँ धर्म नही, वहाँ आर्यत्व नही। तुमने ऋपि-पत्नी और उनके बच्चे को पकडकर कितना अनुचित काम किया ?" मुनि ने कहा।

अर्जुन चुप रहा। ऋपि-पत्नी और बच्चो को पकडते समय उसका मन भी व्यग्र तो हुआ ही था। और फिर वे भृगु तो उसके गुरु के कुलपति की पत्नी और बच्चे थे। परन्तु किये हुए व्यवहार पर पश्चात्ताप करने का अर्जुन को अभ्याम नही था।

"मैं क्या जानता था कि वे ऋषि के स्त्री-बच्चे है ?"

"पर तुमने उन्हे पकडा क्यो ? और यहाँ लाये क्यो ?" मुनि ने पूछा।

"मैं जानता ही था कि यह आपको अच्छा नही लगेगा," हँसकर अर्जुन ने कहा।

इस प्रकार के प्रश्न उससे कोई पूछ नही सकता था, किन्तु सप्तसिन्धु मे यदि महर्पि ऐसे प्रश्न पूछे तो उनका मुँह बन्द करने का भी कोई उपाय नही था।

"नव किया क्यो ?" मुनि ने कुछ कडाई से पूछा।

अर्जुन ने भौहे टेढी की।

"क्या करना चाहिए, इसके लिए आपकी आज्ञा लेने कहाँ-कहाँ पहुँचूं ?" निर्लज्जता मे अर्जुन हँसा। "मेरे दादा ने ऋचीक को अनूप देश से निकाल दिया था, नो मैंने उमके पौत्र-पुत्री को पकडा। इसमे हो क्या गया ?"

"वीतहव्य," मुनि ने कहा, "अनूप देश मे जव धर्म का लोप हुआ तव वे महाभार्गव तुम्हे छोड़कर चले आये। वहाँ यदि पुनः धर्म का राज्य

प्रसारित करना हो तो उनके शासन को स्वीकार किये बिना काम नही चल सकता है। और यहाँ तो ऋत का भंग किया ही नही जा सकता।"

"मेरे लिए तो अनूप देश और आर्यावर्त दोनो ही समान हैं। जहाँ मै जाऊँ वहाँ मेरी इच्छा ही मेरा धर्म होता है। यदि आप सबको यह ठीक न लगता हो तो लीजिए मैं जाता हूँ।"

मुनि ने अर्जुन की धमकी की अवगणना की। अधर्म सहने के लिए वे तैयार नही थे। स्थिर दृष्टि से वे अग्निकुण्ड की ओर देखते रहे, और फिर गम्भीर स्वर मे बोले, "आर्यावर्त पुण्यभूमि है। यहाँ हमारे वशजो के भविष्य बनानेवाले सस्कार उद्भूत होने है। यहाँ के आचार सर्वश्रेष्ठ है। यहाँ जो धर्म प्रवर्तित होता है उसका लोप नही होता, और उस धर्म की रक्षा करना राजाओ का पहला कर्तव्य है।"

अर्जुन चुप रहा।

"तुम दूर के प्रदेश मे रहे हो। उस देश मे भी जब धर्म प्रवर्तित होगा तभी उसका उद्धार होगा। जिस पर हमारी शुद्धि और हमारा भविष्य अवलम्बित है उसे हृदय मे उतारने मे तुम्हे देर लगेगी, यह मैं समझ सकता हूँ।"

"अच्छा," अर्जुन ने ओठ बन्द करके तिरस्कारपूर्वक शब्द निकाला।

"तुम पर, तुम्हारे जैसे राजा पर तो हमारे धर्म का आधार है," वसिष्ठ कहते रहे—"धर्म के बिना राज्यपद लुटेरो का खेल है। राज्यपद छोडा जा सकता है, धर्म का लोप नही किया जा सकता।"

अर्जुन अपने क्रोध को बडे परिश्रम से वश मे रख रहा था। "जो लुप्त हो गया उसका अब क्या ?" उसने कहा।

"अब उसका प्रायश्चित।"

"अच्छा, आप कराइये प्रायश्चित, मैं तो तैयार बैठा ही हूँ।" अर्जुन निर्लज्जता से हँस दिया। वसिष्ठ कठोरतापूर्वक देखते रहे।

"अन्तर के पश्चात्ताप के बिना देव प्रायश्चित स्वीकार नही करते। पाप का जो प्रायश्चित नही करता पितर उसका रक्षण नही करते।" और

ये शब्द कहते समय वसिष्ठ के स्वर मे दैवी सन्देशवाहक का आवेश आ गया।

"तुम महान् हो, बलाढ्य हो, तुम्हारे पास शक्ति है, समृद्धि है, पर जिस वरुणदेव के ऋत पर आर्यत्व स्थित है, उसकी अवगणना करके क्या प्राप्त करोगे? इसमे से क्या सुरक्षित रख सकोगे?"

मुनि के स्वर मे उग्रता नही थी, देववाणी जैसी निश्चलता थी। अर्जुन के हृदय पर इस वाणी का प्रभाव पडा। वह अपनी स्वभावजन्य निर्लज्जता और अभिमान इस समय भूलकर असमञ्जस मे पड गया।

"तुम्हारी शक्ति नि सीम भले ही हो, पर धर्म का द्रोह करने से तुम अधम गति को प्राप्त होगे," मुनि की गर्जना बढी। पर फिर उन्होने स्वर धीमा करके कहा, "जाओ, राम को लौटा आओ। उसे ले आने का पाप किया है तो ऋषि जमदग्नि से क्षमा-याचना करके आओ। तुम क्या करके आये हो, यह तुम नही जानते।"

अर्जुन की आत्म-श्रद्धा चली गयी। वह नीचे देखने लगा। नाग जिस प्रकार बाँसुरी के नाद से वश मे हो जाता है, उसी प्रकार वह मुनि के शब्दो से पल-भर के लिए वश मे हो गया।

"तुम जमदग्नि की पुत्री को नही उठा लाये, तुम सुदास राजा की बहन लोमहर्षिणी को उठा लाये हो।"

"अच्छा!" अर्जुन की आँखे फट पडी और वह हँसा, "उसे ही लाने मैं गया था।"

"पर किस प्रकार लाये?"

"किस प्रकार?"

"तुमने ऐसी परिस्थिति खडी कर दी है कि तुम्हारा विवाह ही न हो सके। जो विवाह कराने का हम सबने निश्चय किया था वह अभी तो अशक्य हो गया है।"

"क्यो? लोमा तो अब आ गयी है, फिर क्या बाधा है?" अर्जुन ने हँसकर पूछा।

"विवाह नही हो सकेगा।"

"क्यो ?"

"महाअथर्वण ऋचीक के पुत्र भार्गव-श्रेष्ठ जमदग्नि की आन है।"

"क्या ?" अर्जुन चिल्लाया।

"हाँ, एक वार तुम्हारे दादा महिष्मत महाअथर्वण की आन के कारण हुए थे, और आज तुम उनके पुत्र की आन के कारण हुए हो।"

अर्जुन क्रुद्ध हो गया। उसकी आँखें हिंसक पशु के समान चमकने लगी।

"अव ऋषि जमदग्नि को मनाकर यह आन लौटवानी होगी," मुनि ने धीरे से कहा।

अर्जुन के मुख से गुर्राहट निकली। उसने ओठ चवाये। उसकी मुख-मुद्रा भयकर हो गयी।

"मैं डरनेवाला नही हूँ। मैं किसी से डरता नही। मैं किसी का दास नही हूँ।"

"तुम्हारे दादा वुढापे मे पैर घिसते हुए महाअथर्वण की आन लौटवाने के लिए आये थे, पर ऋषियो ने नही माना और फिर जो हुआ वह तुम जानते हो न ?"

"वे कायर थे और ऋचीक उन्हे डरा गये थे, पर मैं उस प्रकार डर नही सकता।"

"हम आन का उच्छेद नही करेंगे," मुनि ने कहा।

"अर्थात् लोमा को न व्याहेगे, यही न ?" अर्जुन ने कठोरता से पूछा।

"आन जव लौटा ली जायेगी तव व्याहेगे। हम लोग ऋषि जमदग्नि को मनायेंगे। तुम जाओ और शीघ्रता से लोमा और राम को यहाँ भिजवा दो, जिससे यह काम मै जल्दी से हाथ में लूं।"

"लोमा को···राम को···" अर्जुन वड़वडाया।

"लोमा को तुम्हे अपने पास रखना ही नही चाहिए था। तुम्हारे आवास मे कोई स्त्री नही है," वसिष्ठ ने कहा।

"मैं क्या उसे खाये डालता हूँ ?" अर्जुन ने ये शब्द कह तो दिये, बोल तो गया, पर उसने मुनि और सुदास के मुख पर कठोरता देखी। अर्जुन की वाक-पटुता कम नही हुई थी। उसके मुख पर भावो में परिवर्तन हुआ। उसकी उग्रता शान्त हुई और उस पर असत्य हास्य प्रसारित हो गया।

"हाँ-हाँ···मेरी भूल हुई, भूल हुई। मै यहाँ आया हूँ तब से भूल ही करता आया हूँ। उन दोनो को मै अभी यहाँ लिये आता हूँ। भृगु की आन !" वह बडबडाया। "मै अभी आया, थोडी देर मे।" वह उठा और वेग से बाहर निकला।

[3]

राम और लोमहर्षिणी को लेकर अर्जुन जब तृत्सुग्राम की ओर चला उससे पहले लोमा बडी घबरायी हुई थी, किन्तु राम को तनिक भी भय नही था। राम ने उसे साहस बँधाया और दोनो ने चुपचाप बहुत-सी बातें की। राक्षस-जैसा अर्जुन लोमा से विवाह करना चाहता था, पर लोमा उससे विवाह करने को तैयार नही थी, और इसी से विमद ने राम की बहन के रूप मे, जमदग्नि की पुत्री के रूप मे, उसका परिचय दिया था। अर्जुन के तृत्सु-ग्राम पहुँचने पर यहाँ सब हम दोनो को पहचान लेंगे और तुरन्त हम दोनो छोड दिये जायेंगे, इसका उन्हे विश्वास था। उस समय अर्जुन का मुँह कैसा हो जायेगा, इस सम्बन्ध मे बात करते हुए दोनो बहुत हँसे, परन्तु फिर भी लोमा की घबराहट कम नही हुई थी।

राम ने कहा, "मै देखूंगा, कौन तुम्हे उसके साथ ब्याहता है ?"

"तुम क्या करोगे ? मैं स्वय सबसे निपट लूंगी। देखूं तो सही, मुझे कौन ब्याहने आता है ?" लोमा ने कहा। और इस प्रकार बहुत देर तक वे इसी बात पर सोचते रहे कि इस झंझट मे से कैसे निकला जाय।

पहले तो सैनिको ने दोनो को अलग अपने-अपने घोडे पर आगे बिठाया था। राम जिसके साथ बैठा था वह वृद्ध अर्जुन की सेना का सेनापति था। सब उसका आदर करते थे।

"आपका नाम क्या है?" राम ने पूछा। सेनापति ने उस मोहक लडके की ओर देखा और उसकी क्रूर आँखो मे अमृत भर आया।

"मेरा नाम भद्रश्रेण्य है, और तुम्हारा नाम क्या है?"

"जानते नही? मेरा नाम राम है। आप ऋषि जमदग्नि को नही पहचानते? मै उनका पुत्र हूँ।"

"महाअथर्वण के पौत्र," सेनापति बोला और राम की ओर स्थिर आँखो से ध्यानपूर्वक देखता रहा।

"हाँ, वे तो आपके गुरु थे। महिष्मत को छोडकर वे आर्यावर्त मे क्यो आये, उसकी कथा तो भृगुग्राम मे प्रतिदिवस गर्व से सुनी जाती है।"

"जब महाअथर्वण हमारा देश छोडकर गये तब मै बहुत छोटा था। मै ऐसे हाथ रखता हूँ तो क्या तुम्हे कष्ट होता है?" राम की सुविधा के लिए भद्रश्रेण्य चिन्तित होने लगा।

"क्या अर्जुन के समान आप भी दुष्ट हैं?" राम ने पूछा।

भद्रश्रेण्य ने कुछ आश्चर्यान्वित होकर उस लडके की ओर देखा। वह लडका उसके राजा का अपमान कर रहा था। उसके प्रश्न की सरलता का उसे विचार आया और वह राम पर मुग्ध हो गया।

"हम लोग दुष्ट नही है," वृद्ध हँसा।

"तब आप लोगो ने अम्बा को, मेरी बहन को और मुझे क्यो पकड़ा?" राम ने पूछा।

वृद्ध के मन मे जो शका थी वह राम ने स्पष्ट की। जब से ऋचीक अनूप देश छोडकर गये और हैहय बिना गुरु के हो गये, तब से उस जाति पर से देव की कृपा-दृष्टि चली गयी थी, ऐसा सब समझदार अपने हृदय मे समझते थे। अर्जुन भी अपने बाप-दादा के समान मनस्वी था। उसके शौर्य से हैहयो ने बडा राज्य प्राप्त किया था, तो भी हैहयो के मन मे से देवो की खोई हुई कृपा पुनः प्राप्त करने की लालसा कम नही हुई थी, और इसी से उनकी ऐसी अव्यक्त इच्छा थी कि यदि आर्यावर्त से सम्बन्ध स्थापित हो तो अच्छा हो। वृद्ध भद्रश्रेण्य राम की तेजस्वी कान्ति को देखता रहा।

"क्या तुम हमारे यहाँ चलोगे ?"

राम का हैहयो से मिलने का यह पहला ही प्रसग था, पर वह स्वय उनका गुरु था और किसी प्रकार भी उन लोगो की दुष्टता कम करना उसका ही कर्तव्य था। इस सम्बन्ध मे उसके बाल-मन मे तनिक भी सन्देह नही था। जब से वह समझने लगा तभी से उसमे सामान्य लोगो-जैसा गर्व नही था, प्रत्युत् एक विचित्र प्रकार की आत्म-श्रद्धा थी कि मै भृगु-श्रेष्ठ का पुत्र हूँ, सबसे भिन्न और अद्भुत हूँ, एक प्रकार का देव हूँ। इस श्रद्धा के विषय मे उसने गम्भीरता से विचार नही किया था, तो भी क्षण-भर के लिए भी वह अस्पष्ट नही हुई थी। इस समय अपने वश-क्रमागत शिष्यो की उपस्थिति मे उस आत्म-श्रद्धा ने स्वयनिर्णीत देव-सुलभ अधिकार दे दिया।

"क्या आप लोगो को गुरु-हीन होकर भटकते रहना अच्छा लगता है? महाअथर्वण की आज्ञा आप लोगो ने मानी नही थी। मै चलूँ और आप लोग मेरी आज्ञा न माने तो ?" राम ने पूछा।

भद्रश्रेण्य को उस गम्भीर बालक के शब्द और रीति से अपरिचित पूज्य भाव का अनुभव हुआ।

"हम मानें तो ?" उसने प्रेम से राम को समझाते हुए कहा।

"तो फिर आप लोग ऋषि-पत्नी और उसके बच्चो को इस प्रकार क्यो पकडते हैं ?" मानो कोई ऋषि उलाहना देता हो इस प्रकार प्रश्न उपस्थित हुआ।

वृद्ध भद्रश्रेण्य के हृदय मे परिवर्तन होने लगा। महाअथर्वण का वह पुत्र यदि मुझ पर कृपा करे तो—उसने प्रेम से किन्तु हृदय की गहराई से उद्गार निकाला।

"इतने समय तक जो भूल हुई वह अब नहीं करेंगे।"

"गुरु को जो कष्ट देते है उन पर देव कैसे प्रसन्न हो सकते हैं ?"

"सच है।" ऋचीक के शाप के कारण जो दुःख पडे थे और उनने जो अशान्ति देखी थी उन सबकी स्मृति भद्रश्रेण्य की कल्पना मे खेलने लगी।

"आप लोगो को प्रायश्चित करना होगा," गम्भीर बनकर राम ने आदेश दिया, "सहस्रो गायो का।"

भद्रश्रेण्य को एक दृष्टि से उस वालक के वचन हास्यजनक मालूम हुए, किन्तु वह गुरु का आडम्बर नही करता था, गुरुदेव के अधिकार से कहता था। उनकी सरलता और उनका गौरव उसमे स्पष्ट था।

"अच्छा, क्या तुम गायें लोगे?"

"मैं कैसे ले सकता हूँ? पिताजी तो है। आप लोगो का गुरुपद दादा ने छोडा। जव तक आप लोग प्रायश्चित नही करते तव तक वे भी कैसे स्वीकार कर सकते है?"

"यदि तुम्हारे पिताजी स्वीकार न करे तो तुम्हे स्वीकार करने मे क्या कोई आपत्ति है?" भद्रश्रेण्य ने राम को वनाया।

राम कुछ देर चुप रहा, मानो दान लेने या न लेने पर विचार कर रहा हो।

"मुझे आप लोगो की रीति अच्छी नही लगती," उसने कहा—"आप लोगो का राजा ऐसे पाप करना वन्द करे तव यह हो सकता है।"

ये सव शब्द यह छोटा-सा वालक वोल रहा था या उसके मुख से महा-अथर्वण स्वय पितृ-लोक से वोल रहे थे, यह भद्रश्रेण्य न समझ सका।

थोड़ी देर मे राम ने कहा, "हम दोनो को अलग एक ही घोडे पर क्यों नही विठाते? मुझे इस प्रकर अलग अच्छा नही लगता। हम दोनो एक ही घोडे पर वैठना चाहते हैं।"

"तुम लोग भाग जाओ तव?" भद्रश्रेण्य ने हँसकर कहा।

"भाग क्यो जायेंगे?" राम ने कहा, "अच्छा तो हमारे घोड़े की लगाम अपने हाथ मे रखना।"

"क्यो?"

"मेरे दादा आप लोगो के गुरु थे। और कौन जाने मैं भी आप लोगो का गुरु वनूं।"

"पर महाअथर्वण को तो देव के दर्शन होते थे, तुम्हे देव दर्शन कहाँ

देते है ?"

"झूठ बात है। मुझे भी देव दर्शन देते है। मैं बहुत बार उनसे बात भी करता हूँ। और अन्य ऋषियो के समान मुझे उनका आवाहन भी नही करना पडता। बहुत बार जब मैं अकेला घूमता रहता हूँ तब वे मुझे मिलते है।"

भद्रश्रेण्य उस लडके की ओर ध्यान से देखने लगा। वह पागल नही था, इसका उसे विश्वास था। उसने राम का कहा मानकर लोमा को और उसे एक घोडे पर बिठा दिया।

सबसे आगे अर्जुन घोडा दौडाये चला जा रहा था, उसके पीछे उसके सैनिक थे। राम और लोमा भी उनके साथ ही थे।

अर्जुन को ऋषि के इन बच्चो के प्रति कोई रस नही था।

[4]

उस रात को राम और लोमा जीन पर सिर रखकर पास-पास सोये। आस-पास सैनिक सोये और थोड़ी दूर पर अर्जुन सोया। थोडी देर पश्चात् लोमा ने कहा, "राम, ये सब मुझसे ब्याह क्यो करना चाहते है ?"

"कौन सब ?"

"देखो न, कल वह देवदत्त मुझे विवाह के सम्बन्ध मे कहने आया था।"

"अच्छा, क्यो ?"

"क्यो, तुम्हारा सिर फोडने," क्रुद्ध होकर लोमा ने कहा, "अब वह भरतो का राजा हुआ, उसे रानी भी तो चाहिए न, इसी से।"

"और अर्जुन भी तुम्हे ब्याहना चाहता है, क्यों ?"

"वह दुष्ट तो व्याघ्र के समान विकराल है।"

राम हँसा—"तुम व्याघ्री बनो तो बड़ा आनन्द आ जाय।"

"बस, तुम्हे तो हँसी छोड़कर कुछ सूझता ही नही। ये सब मुझसे ही क्यो विवाह करना चाहते है ? मेरी समझ मे तो कुछ नही आता। और

सब कहते है कि इस अर्जुन की तो इतनी स्त्रियां है कि एक पूरा गाँव बस जाय।"

राम ने आँखें मली, "तुम सबमे अच्छी हो न, इसलिए।"

"पर मुझे विवाह नही करना है।"

राम ने जँभाई ली। उसकी आँखो मे नीद भर आयी थी। उसने सोते-सोते कहा, "विवाह हो जाने पर तुम मेरे साथ न रह सकोगी।" फिर उसने करवट बदली और कहा, "तब तो तुम्हे पति के साथ रहना होगा।"

लोमा कुछ न बोली, राम भी चुप रहा और थोडी देर मे सो गया।

लोमा की आँखो से नीद जाती रही। राम की बात सच थी। वह किसी से विवाह करे तो उसे पति के साथ जाना पडेगा; तब राम के साथ रहा न जा सकेगा।

वह आकाश की ओर देखती रही। चन्द्र का उदय हो चुका था। आस-पास वृक्षो के झुण्ड मे पवन साँय-साँय कर रही थी। चारो ओर सैनिक सो रहे थे। कैसे थे वे सब—मैले, दुर्गन्ध-युक्त, दाढीवाले हैहय! उसके मन मे उद्वेग हुआ। क्या विवाह करना ही होगा? ऐसा हो तो फिर वह क्या करेगी? और यह अर्जुन तो कैसा भयकर मनुष्य है, और देवदत्त रूपवान् तो है, परन्तु राम को छोडकर जाना कैसे सम्भव हो सकता है? उसके मन मे ये विचार उथल-पुथल मचाते रहे। उसने निःश्वास छोडा। वेग से पवन बहने लगा। चारो ओर सोये हुए सैनिको के नकसुरो की घोर घरघराहट का उसे विचार आया। उसे भय लगने लगा, इसलिए वह राम के पास जा उसके शरीर पर हाथ रखकर स्थिर अवाक् पड़ी रही। नीद मे राम ने लोमा के हाथ पर अपना हाथ रखा।

राम को छोडकर जाना कठिन था। उसके बिना वह कभी नही रही थी। उसकी बातो के बिना उसे अच्छा नही लगता था। राम का मुख सदा उसे दिखायी दिया करता था। वह विवाह करेगी तो उसे छोड देना पडेगा। •क्यो भला?

राम उसके जीवन का एक अग था। वे दोनो प्रतिदिन एक-दूसरे का

हाथ पकडकर दौडते, कूदते और कौतुक मचाते थे। एक-दूसरे का हाथ पकडना तो इनके लिए नयी बात न थी। वह तो नित्य की सामान्य बात थी। किन्तु इस समय राम के हाथ के स्पर्श नें उसके हृदय मे नयी सवेदना जागरित कर दी। उस स्पर्श ने मानो उसे दग्ध कर दिया। वह दग्ध हुई, किन्तु पूर्णतया न जली। उसे ऐसे हृदय-कम्प का अनुभव हुआ जैसा पहले कभी अनुभव नही था। वह अनजान मे राम से लिपट गयी।

अग्नि की ज्वालाएं मानो उसकी नस-नस मे जल उठी हो ऐसा लोमा को भास हुआ। उसका हृदय कम्पित होता सुनायी दिया। उसके कान मे भी कोई नाद होता चल रहा था। यह क्या हुआ, उसकी समझ मे न आया। उसे ऐसा कभी न हुआ था। राम की उठती हुई युवावस्था और उसके अगो मे छिपने की उसकी बडी उत्कट इच्छा हुई। पर उसे सकोच हुआ। राम से अलग हट जाने का भी विचार हुआ, पर अलग नही हट सकी।

उसकी थकी हुई आँखो मे नीद नही आयी। उसने आसपास दृष्टि डाली, और फिर धीरे मे वह राम को निहारने लगी। इस समय चाँदनी मे 'उसका राम' बदल गया था। उसकी सब रेखाएँ परिचित थी, फिर भी लोमा को उसमे इस समय कुछ नवीनता दिखायी दी। राम उसे कुछ अलग-सा, नया-सा दिखायी देने लगा। उसके शरीर की रेखाओ मे उसने कोई नया ही जादू देखा। ज्यों-ज्यो वह राम का निरीक्षण करती गयी, त्यो-त्यो उसकी नसो मे अग्नि-ज्वाला अधिकाधिक वेग से फैलने लगी। उसने धीरे-से काँपते हुए हाथ से राम के मस्तक और आँखो पर गिरी हुई बालो की लट हटायी। राम ने आधी आँख खोली।

"क्यो, नीद नही आती ?" उसने नीद मे ही पूछा।

"नहीं," लोमा ने कहा। उसके स्वर मे कम्प था, "मुझे नीद नही आती। राम, मुझे डर लगता है।"

राम ने नीद मे ही उसे अपने पास खीचा। लोमा उसकी बाँहो मे छिप गयी, पर अभी उसका शरीर काँप रहा था, उसकी त्वचा जल रही थी। वह राम से लिपट गयी।

सहसा उसकी नसे इस प्रकार तडपने लगी मानो प्यासी हो। उनमे से पुकार उठी। यह पुकार काहे की थी, वह जान न सकी। उसने राम के शरीर को अधिक कसकर दबा लिया, पर राम का शरीर जैसा था वैसा ही रहा। नीद मे वह शान्त, स्थिर और निश्चेष्ट था। उसके हृदय की पुकार, तृषा अधिक दृढ़ हुई—मानो वह बोल उठी, 'राम उठो, सोये क्यो हो? उठो, मै मर रही हूँ।'

निश्चेष्ट बालक का श्वास घोर निद्रा मे नियमित आ-जा रहा था। लोमा को जान पडा कि वह स्वय भी अचेत हो जायेगी। वह कब उठी, यह भी उसे स्मरण न रहा। उसे निरन्तर राम ही अपने सपने मे दिखायी दे रहा था। जब वह उठी तो राम नदी मे खडा-खडा अर्घ्य दे रहा था। भद्र-श्रेण्य ने अपने सैनिको से राम का परिचय कराया था, और अनूपदेश के असंस्कारी योद्धा अपने लोककथा के गुरु के इस पौत्र को आदरपूवक देख रहे थे। अर्जुन तो कब से ही उठकर आगे बढ गया था।

लोमा की आँखे तो केवल राम को ही देख रही थी।

वृद्ध ऋषि के समान अर्घ्य देकर राम धीरे से तट पर आया और भद्रश्रेण्य ने उसे हाथ जोडे।

फिर यात्रा प्रारम्भ हुई। दोनो—लोमा व राम—एक घोडे पर बैठे, आगे राम, पीछे लोमा। दिन-भर राम से सटकर बैठना, उसके शरीर के साथ तालबद्ध कूदना, उसके बालो मे अपने बालो का उलझकर नाचना, उसकी बात सुनना आदि सब आज लोमा के हृदय के लिए बदला हुआ था। लोमा को ऐसा प्रतीत हुआ मानो इस सामान्य हलचल मे से भी कोई अद्भुत सगीत निकलकर उसकी नसो मे गूँज रहा हो।

वे वेग से आगे बढने लगे। लोमा के कानो मे सृष्टि के नूपुर झकार कर रहे थे। पर आज उसकी वाणी बन्द हो गयी थी। उसे तो मूक-भाव से केवल राम के शरीर के साथ तालबद्ध उछलना था और ऐसी घबराहट से बार-बार उसका मुँह देखते रहना था मानो चोरी से कोई अपराध कर रही हो।

आज राम पहले जैसा निकट नही लगता था। आज वह बालसखामात्र नही रहा था। आज वह ऐसा लगता था मानो किसी रहस्यपूर्ण सृष्टि के मध्य जाकर खडा हो गया हो। वह भी वहाँ पहुँचना तो चाहती थी, पर वह वहाँ पहुँच नही पा रही थी' 'और राम ? वह तो भद्रश्रेण्य के साथ कुत्ते की, शस्त्रो की, अपने ग्राम की, अपने भृगुओ की बाते कर रहा था, और भद्रश्रेण्य का चकित हृदय राम के व्यक्तित्व से पूर्णतया भर गया था।

रात हो जाने पर फिर थोडी देर सो जाने का समय आया। राम ने कहा, "लोमा, रात को तुम्हे बहुत डर लगता है। तुम मेरे पास आकर सो जाओ, तुम्हे डर न लगेगा।"

लोमा यही चाहती थी। बिना बोले वह राम की बाँहो मे लिपटकर सो गयी। वह्नि-ज्वालाएँ पुन. उसके अग-अग मे, उसकी नसो मे प्रकट हुईं। उसकी त्वचा जल उठी। उसके स्तन, जो राम के शरीर का स्पर्श कर रहे थे, जलते कोयले के समान धधकने लगे। किन्तु इस रसपूर्ण वेदना से मुक्त होने को उसका तनिक भी मन न हुआ। 'राम...राम...राम' उसका रोम-रोम बस एक ही शब्द की रट लगाने लगा। उसका सिर भन्नाने लगा। प्रभात होते-होते बडी कठिनाई से कही उसकी आँख लगी।

वह उठी, राम ने अर्घ्य दिया, फिर वे घोडे पर जा बैठे। फिर घोडे की गति से उनके अङ्ग तालबद्ध नाचने लगे।

लोमा के हृदय मे राम के प्रति उत्कण्ठा जग गयी थी, पर राम अपने ही ढंग मे व्यवहार कर रहा था। लोमा को ज्ञात होता था कि वह ठण्डे पत्थर के समान बरताव कर रहा है, और उसमे उसका जी घबरा रहा था। कब रात हो और कब उसकी नसो मे अग्नि व्याप्त हो, कब वह उस भयकर किन्तु आह्लादक वेदना का पुन अनुभव कर पाये, इसी के लिए वह तरस रही थी।

नौ रातो तक वे दोनो इसी प्रकार साथ-साथ सोये और साथ-साथ घोडे पर बैठे। लोमा को इन दिनो कुछ नया ही अनुभव हुआ, और नयी ही दृष्टि मिली। राम से व्यवहार करने मे उसे एक नये प्रकार का सकोच

होने लगा। बालक राम तो जो व्यवहार करता था वह वैसे ही विश्वास, स्नेह और अभेद्य एकता से करता था। किन्तु लोमा को यह अच्छा नहीं लगता था। वह राम का सिर दीवार से ठोककर कहना चाहती थी कि 'राम, देखो, समझो, मैं मर रही हूँ।' किन्तु लज्जा, सकोच, क्षोभ का नव-जागृत चैतन्य उसके और राम के मध्य आ खडा हुआ था।

तृत्सुग्राम आने पर सब अर्जुन के आवास पर पहुँच गये। वहाँ इन दोनो को भीतर के भाग मे रखा गया। बाहर सैनिक उन पर पहरा दे रहे थे।

"हमे कब तक इस प्रकार रखेंगे ?" लोमा ने भद्रश्रेण्य से पूछा।

"मैं क्या जानूं।"

"वृद्ध कवि यहाँ नही है, नही तो जान जाते," राम ने कहा, "हमे बन्दी रखते हो ?"

"मैं क्या करूँ, राजा की आज्ञा है," भद्रश्रेण्य ने कहा। थोडी देर बाद फिर पूछा, "चलोगे हमारे देश ?"

"जब मै बडा हो जाऊँगा और आपके राजा प्रायश्चित कर लेगें, तब मै अपने दादा की आन पूरी करके आऊँगा।"

"यदि मैं प्रायश्चित कर लूं तो क्या मेरे राज्य मे चले चलोगे ?"

"मै वहाँ चल सकता हूँ पर तुम सबको धर्मानुसार व्यवहार करना होगा। मेरे आने पर देव भी तो वहाँ आयेंगे न !" राम ने गाम्भीर्य से कहा।

भद्रश्रेण्य ने गुरुपुत्र की ये सब बातें सेनानायको मे चलायी और जब आगे के भाग मे अर्जुन सोने के लिए लेटा तब कुछ-न-कुछ बहाना निकाल-कर सब नायक महाअथर्वण के पौत्र पर दृष्टिपात करने भीतर जा पहुँचे। किसी-न-किसी प्रकार सभी गुरु-विहीन अनूप देश को लगे हुए शाप के भागी बने थे और सबके हृदय मे यह विचार आनन्द की प्रेरणा कर रहा था कि यह उनका वंश-क्रमागत गुरु यदि उनके यहाँ चला चले तो कितना अच्छा हो।

"लोमा, यह समाचार मिलते ही राजा सुदास तुरन्त हम लोगो को वुलवा लेगा। फिर अर्जुन के साथ तुम्हे व्याहने की वात करेगा।"

लोमा की पहले की धृष्टता और आत्मविश्वास जाता रहा था।

"राम, तुम तो मुझे छोडकर नही जाओगे न ?"

"नही, मैं छोडकर नही जाऊँगा," राम ने कहा, "पर यदि तुम्हारा विवाह हुआ तो ? मै बड़ा होता तो…"

"तो ?" लज्जित होकर लोमा ने पूछा।

थोडी देर वाद गाम्भीर्य से विचार करके राम ने कहा, "तो मैं ही तुमसे व्याह कर लेता, फिर यह सव झगडा ही न खडा होता।"

"मेरे राम," कहकर लोमा राम से लिपट गयी और उसका गाल चूम लिया।

चौदह वर्ष के भोले राम ने, जहाँ लोमा ने ओठ छुए थे वहाँ हाथ मे पोछते हुए कहा, "लोमा, तुम कितनी गन्दी हो !"

लोमा इस प्रकार काँप उठी मानो शीत ऋतु मे ठण्डे पानी मे कूद पडी हो। वह नीचे देखने लगी। मानो खेलते-खेलते वह रुष्ट हो गयी हो, इस प्रकार राम उसे मनाने के लिए उसके पास आया।

"लोमा," राम ने कहा, "ऊपर देखो, रोष न करो, क्या कही इस प्रकार रुष्ट हुआ जाता है ? आओ इधर देखो, यदि तुम यह सव करोगी तो फिर‥ "

लोमा ने राम की आँखो का वाल-तेज देखा। नौ दिन मे उसमे स्त्रीत्व का चैतन्य प्रकट हुआ था। वह स्त्री वन गयी थी और राम तो जैसा था वैसा ही वालक था। हँसकर उसने राम के गाल दोनो हाथो से दवाकर कहा, "तुमसे क्या रुष्ट हो सकती हूँ राम !"

और लोमा ने अपना सिर राम के कन्धे पर रख लिया।

राम ने उसके वाल खीचे।

लोमा का हृदय पुकार उठा, 'खीचो…खीचो…मुझे मारो।'

[5]

जब अर्जुन अपने आवास पर जाने के लिए घोड़े पर बैठा तब उसकी नस-नस मे क्रोध व्याप रहा था। उसे सीख दी गयी, उसे धमकाया गया, उसे नीचा दिखाया गया। उससे वे प्रायश्चित कराना चाहते थे, उससे वे लोमा को छीन लेना चाहते थे, उसके द्वारा निश्चित विवाह मे विक्षेप डालना चाहते थे। आन ! आन !! ये नपुंसक धर्मान्ध उसे पितृकोप के नाम पर डरा रहे हैं, उसे एक ब्राह्मण की शपथ से त्रस्त कर देना चाहते है।

इस आर्यावर्त से, इसके आचार-विचार से, इसके ऋषियो और राजाओ से वह उकता गया था। क्यो वह यहाँ सहायता के लिए आया ? यदि साथ मे दस सहस्र घुड़सवार लाया होता तो समस्त आर्यावर्त को जला देता। अपने प्रदेश मे वह स्वच्छन्द रूप से राज्य करता था। वहाँ जो वह कहता वही होता था। वह जहाँ भ्रूभग करता वही विनाश का प्रसार होता था। और यहाँ ? प्रतिबन्ध— सर्वत्र प्रतिबन्ध, इसके अतिरिक्त और कुछ है नही। ऐसा अत्याचार कैसे सहन किया जा सकता है ?

उसके हाथ के स्नायु किसी को पीस डालने के लिए, किसी का छेदन करने के लिए फड़क रहे थे। वह स्वतः जगत् का नाथ था। उसे उसकी प्रजा सहस्रार्जुन कहती थी। उसकी शक्ति मे पातल के वीर भी काँपते थे। और उसे —सहस्रार्जुन को—ये क्षुद्र लोग उपदेश देने की धृष्टता कर रहे थे। अब वह इस स्थान पर नही रहना चाहता था। सुदास का आमन्त्रण स्वीकार करके वह पछता रहा था। उसे पुनः इन ऋषियो के देश मे आने की साध नही थी—नही, थी तो, किन्तु सेना लेकर वह आना चाहता था —सबको वश मे करने के लिए, राजाओ से अपने पैर धुलवाने के लिए, ऋषियों द्वारा वन्दी-गान गवाने के लिए।

इन मूर्खो के साथ मेरा निर्वाह कैसे होगा ? सुदास ठीक हो जाय तो अभी मै लोमा से विवाह कर लूँ और फिर हम दोनो की सेनाएँ चारो ओर 'त्राहि-त्राहि' मचा दें, और ऐसे-ऐसे सत्रह मुनियो को पितृलोक मे पहुँचा

दें। पर सुदास कायर है। धर्म···धर्म···धर्म! जो वह ऋषि कहे वह धर्म है, वह जिसे अस्वीकार कर दे वह अधर्म है!

देव के कोप, भृगुओ की आन और ऋषियो के शाप का भय दिखाकर सबने उसे डराने का प्रयत्न किया था। पर वह उन सबको बता देने के लिए तत्पर हो गया था कि वह किसी से डरनेवाला नही है।

आवास पर आते ही उसने निश्चय कर लिया। वहाँ पहुँचते ही उसने भद्रश्रेण्य को आज्ञा दी कि अनूप देश लौटने के लिए सेना तैयार कर लो। फिर वह भीतर गया और उसे ये वच्चे स्मरण हो आये। 'वह लडकी ऋषि-कन्या नही थी, लोमा थी—लोमा, जो कि उसकी रानी होनेवाली थी, वह दिवोदास की कन्या, आर्यावर्त का नारी-रत्न, उसका लिया हुआ व्रत। अब वह उससे नही व्याही जायेगी। जमदग्नि की आन! मूर्ख लोग ऐसी आन से डरते है,' वह बडबडाया।

उसने ये शब्द कह तो दिये पर उसके हृदय मे भय अवश्य था। अनूप, आनर्त और सौराष्ट्र के गाँवो मे भृगुओ का नाम उनकी आन मे अधिक माना जाता था। महाअथर्वण की आन की कथा सब लोगो के मुख पर थी, और उनके शाप में पडी हुई विपत्ति के स्मरण से वीरो के हृदय भी कांपते थे। अर्जुन ने भीतर आँगन मे दृष्टिपात किया और उसकी विचारमाला रुकी, टूट गयी।

एक पत्थर पर राम हँसता हुआ बैठा था। उसकी आँखो मे मृदुता थी, उसके गात्रो मे बाल-सिंह का छटापूर्ण तेज प्रस्फुरित हो रहा था।

लोमा उसकी जटा सँवार रही थी। उसके दुपट्टे मे से उसके बालस्तन दो श्वेत पारावतो के समान, अपूर्व मार्दव के सत्व के समान, दर्शन दे रहे थे। उसका गठीला शरीर सौन्दर्य मे ओत-प्रोत था। उसके सुवर्ण ओठ पर मनोहर हास्य शोभायमान हो रहा था। उसकी आँखो मे मादक तेज चमकता था।

अर्जुन का शरीर इस प्रकार कॉप उठा मानो सहसा आँधी उठ चली हो। वंश-क्रमागत सस्कार के वशीभूत होकर अभी तक उसने लोमा को

ऋषिकन्या समझा था; उसकी ओर दृष्टिपात नहीं किया था। पर अब तो वह थी उसकी लोमा, जिसे ब्याहने वह आया था, जिसके ब्याह के विरुद्ध भार्गव की आन थी।

उसके रोम-रोम में दावानल प्रज्वलित हो उठा। उसकी आँखो मे अग्नि-ज्वाला जलने लगी।

यह स्त्रीत्व का सत्व, यह सौन्दर्य, यह देह, यह स्तन, यह ओठ!

मस्तिष्क के किसी कोने से ध्वनि आयी, 'विवाह के विरुद्ध आन है।'

कही से उसका प्रतिशब्द हुआ, 'विवाह के विरुद्ध, पर मैं कहाँ उससे विवाह करता हूँ?'

अभी मुनि उसे बुलाने के लिए कोई सेवक भेजेंगे, ऐसा उसे विचार आया। उसने खड्ग खोल फेंका, कन्धे पर से दुपट्टा उतार डाला। वह भीतर गया। उसकी आँखे काम-विह्वलता से लाल हो गयी थीं। उसका श्वास अवरुद्ध हो रहा था।

"राम! बाहर जाओ।"

राम उठा और लोमा के आगे डटकर खड़ा हो गया, "क्यों?"

"बाहर जाओ," काँपते हुए स्वर में उसने आज्ञा दी। एक प्रचण्ड, विशाल वक्ष, आजानबाहु, अधेड वय के विकट योद्धा के आगे चौदह वर्ष का ओजस्वी और चंचल वटु खड़ा था। दोनो एक-दूसरे की ओर देखते रहे। वासना के आवेश मे अर्जुन का श्वासोच्छ्वास वेग से चलने लगा। राम का मुख शान्त और गम्भीर था।

लोमा चेत गयी, "राम···राम···राम···राम!"

राम की आँखे स्थिर हो गयी मानो दो जलते हुए कोयले हों। अर्जुन की विकराल आँखें उसे देखने लगी, आज्ञा करने लगी।

राम ने अपनी आँखें अर्जुन पर ही गड़ाये रखीं। वह धीरे-धीरे वहाँ से हटा। अधीर अर्जुन उसके बाहर जाने की प्रतीक्षा करता हुआ ठहरा। घबरायी हुई लोमा कोने में घुसकर खड़ी हो गयी। अर्जुन के सावधान होने से पहले ही गोफन में से पत्थर छूटने के समान राम अर्जुन पर लपका।

वह झुका, उछला और उसका झुका हुआ सिर अर्जुन के पेट से जा टकराया। क्षण-भर के लिए अर्जुन थरथरा उठा, फिर कुशल मल्ल की कला से उसने राम को पकडकर उलटा करना प्रारम्भ किया। जगली जानवर की कला से राम उससे लिपट गया था। कही उसके दाँत और कही उसके नख अर्जुन के शरीर को नोच रहे थे। अर्जुन का वाहुवल अप्रतिम था। लडखडाते हुए और पीछे गिरते हुए भी उसने राम को अपने शरीर से अलग करके दूर फेक दिया। राम जैसे दूर फेंका गया वै ' ही उसका मिर दीवार मे जा टकराया।

लोमा डरकर चिल्लायी, "राम···राम···राम···राम!" पर राम तुरन्त खडा हो गया। मुट्ठी बाँधकर उसने सिर झुका लिया। वह फिर कूदा। अर्जुन पर वह फिर से टूट पडा।

अर्जुन ने कितने ही हिंस्र प्राणियो के प्राण इन्ही हाथो से लिये थे। उसने दोनो हाथो से राम का गला दवाया।

राम ने छूटने का प्रयत्न किया, पर सफल न हुआ। अर्जुन ने दाँत पीसे। उसकी आँखो मे आवेश चढा। उसने दोनो हाथो से राम का गला दवाया। राम की नसें वाहर निकल आयी···श्वास रुँध गया···आँखे वाहर आ गयी।

एक प्रचण्ड खड्ग अर्जुन की आँख के सामने दिखायी दिया।

"छोड दो! छोड दो!!"

खड्ग की धार उसकी आँखो के पास आयी। भद्रश्रेण्य का विकृत मुख उसे दिखायी दिया।

"छोड दो! छोड दो!!"

तलवार की नोक ने उसके गले का स्पर्श किया।

"छोड दो! छोड दो!!"

अर्जुन के हाथ शिथिल हुए, उमके पजे खुल गये, अचेत-सा राम उसके हाथ मे मे निकलकर नीचे गिर पडा।

हिंसक गुर्राहट करके अर्जुन अपने मेनापनि की ओर क्रोध मे घूमा।

"गुरु-पुत्र की हत्या करके क्या सर्वनाश करना चाहते है?" भद्रश्रेण्य

ने पूछा।

"क्या ?" अर्जुन गरजा और उसने भद्रश्रेण्य पर हाथ उठाया। भद्र-श्रेण्य ने तलवार म्यान मे रख ली।

"एक बार गुरु ने शाप दिया था, अब उनके पुत्र को मारकर कहाँ जाना चाहते है ?"

'तुम···तुम···" अर्जुन फिर से गरजा, पर मरते हुए व्याघ्र के समान होते हुए भी वह सोचने लगा कि मैं क्या करने जा रहा हूँ। महाअथर्वण भार्गव के पौत्र को वह मार ही डालनेवाला था। उसने सिर पर हाथ रखा। तुरन्त वह पुन. सावधान हुआ। उसने धरती पर बैठे, मुँह पर हाथ फेरते हुए राम को देखा; कोने मे घुसकर खडी हुई लोमा को देखा।

"चलो अपने देश। इस दुष्ट भूमि मे नही रहना है। और उसे ले चलो। वह इसकी बहन नही है। वह तो सुदास की बहन लोमा है। वह तो मेरी···मै उसे ले आया हूँ। उठाओ झटपट···वसिष्ठ के आने से पहले ही," कहकर अर्जुन चला गया।

भद्रश्रेण्य ने लोमा की ओर देखा। "दिवोदास की पुत्री ! हा···हा··· हा !" वह हँसा। आर्यावर्त के बलिष्ठ तृत्सुराज की कन्या ! उसका राजा अर्जुन सचमुच भाग्यशाली था। राजा की पुत्री का अपहरण करना तो एक खेल है !

भद्रश्रेण्य ने अपने अधीन एक व्यक्ति को बुलाकर कहा, "नायक, उठाओ इस राज-कन्या को।"

"राम···राम···राम !" लोमा चिल्लायी। राम सावधान हुआ और बीच मे आकर खडा हो गया।

नायक लोमा को उठाने गये। राम कूदकर उस ओर जा पहुँचा और कमर पर हाथ रखकर बीच मे खडा हो गया। उसके मुँह की भूरी नसें अभी वैसी ही उठी हुई थी। उसका श्वास अभी तक रुँधता हुआ चल रहा था, और उसके नकसुरे फट रहे थे।

बिखरे हुए बालो की अयालवाला अपना सिंह-जैसा सिर उसने गर्व से

ऊँचा किया। उसकी खुली हुई आँखें भद्रश्रेण्य पर स्थिर थी।

"भद्रश्रेण्य ! क्या लोमा को ले जाना चाहते हो ?" अभी राम स्पष्ट वोल नही पा रहा था।

"राजा की आज्ञा है।"

"तो अपना खड्ग पहले मुझ पर चलाओ। मुझे मार डालो और फिर लोमा को ले जाना।"

शक्ति और तेज की इस राशि की ओर भद्रश्रेण्य देखता रह गया। राम वालक नही था, वह स्वय देव था। वह असमजस मे पड गया।

उसे मारा कैसे जा सकता है ? और यदि वह न हटे तो लोमा को ले जाया भी कैसे जा सकता है ?

"भद्रश्रेण्य !" राम ने कहा, "नही तो लोमा के साथ मुझे भी ले चलो।"

"पर तुम···तुम तो गुरु-पुत्र हो, तुम्हे कैसे ले जा सकते है ? और हमारे यहाँ तो महाअथर्वण की आन है।"

"तुम मुझे थोडे ही ले जा रहे हो ?" राम ने गाम्भीर्य से कहा, "मैं स्वय ही चल रहा हूँ।"

"तुम···तुम···"

"हाँ, महाअथर्वण ने जिसे पापभूमि कहकर छोडा था, उसे मैं उनका पौत्र पावन करूँगा···मैं चलूँगा, पर अर्जुन के यहाँ नही, तुम्हारे यहाँ।"

भद्रश्रेण्य के हृदय मे अकल्प्य दीनता का सचार हुआ—"क्या तुम मेरे सौराष्ट्र चलोगे ? साथ मे देवो को भी ले चलोगे ?"

राम की आँखें आनन्द मे खिल उठी।

"यदि मुझे तुम लोमा से अलग न होने दो तो मैं तुम्हारे साथ चल सकता हूँ, और देव भी मेरे साथ चलेंगे। तुम्हारा कल्याण होगा।" देव-सुलभ अमेय गौरव के साथ राम ने उन्हे आश्वासन दिया।

भद्रश्रेण्य ने हाथ जोडे—"महाअथर्वण ! चलो मेरा आँगन पवित्र करो।"

[6]

मुनि अग्निकुण्ड पर दृष्टि स्थिर किये हुए देव के दर्शन कर रहे थे। देव ने उन्हे शक्ति दी और वे अर्जुन को समझा सके। वे अपने मनोबल द्वारा राग-द्वेष से परे जाकर देव के साथ तादात्म्य साध सके।

एकाएक उन्हे अग्निकुण्ड मे से चीत्कार सुनायी दी, 'राम'''राम''' राम'''राम !'

वे एकदम चौंके। वह लोमा का स्वर था—लोमा का ही और किसी का नही।

वे एकदम चौक उठे। "शक्ति, शक्ति," उच्च स्वर से वे चिल्लाये।

उन्होने हाथ मे दण्ड लिया और शक्ति के आने से पहले ही वे बाहर निकल पडे। वहाँ खडे हुए घोडे पर चढकर वे चल पडे। वहाँ जो उपस्थित थे, उनमे से कुछ शिष्य चकित होकर दूसरे घोडो पर चढकर उनके पीछे-पीछे चल दिये।

जो कभी शीघ्रता से चलते नही थे वे मुनिवर आज दौडते हुए—उडते हुए—घोडे पर जा रहे थे। उनकी दृष्टि भयोत्पादक हो गयी थी। वे दौडते हुए घोडे पर वहाँ पहुँचे जहाँ अर्जुन का आवास था। शक्ति और अन्य शिष्य भी पीछे-पीछे पहुँच गये।

मुनि आवास के पास पहुँचे, पर वहाँ कोई नही था। उन्होने घोडे से उतरकर द्वार खटखटाये। वे यो ही उढके हुए थे। अन्दर कोई न था।

अर्जुन, उसकी सेना, लोमहर्षिणी और राम सब अदृष्ट हो गये थे।

फिर उन्होने दृष्टि घुमायी। दूर क्षितिज पर जाती हुई सेना के घोड़ों की टापो से धूल छा गयी थी।

[7]

लोमा और राम के दुखद हरण से समस्त आर्यावर्त को आघात पहुँचा। मुनि की योजना उलट गयी। उनकी दृष्टि भी स्पष्ट देख न पायी। अर्जुन

की सहायता भी चली गयी। धर्मयुद्ध का रग विगड गया। अर्जुन का अत्याचार वडा या भेद का ? यदि अर्जुन का अत्याचार वडा था तो उसका विरोध करने के वदले मुनि भेद का विरोध क्यो करते थे ? और ऐसे कुछ संशयो के कारण आर्यावर्त की श्रद्धा डिग गयी तो ?

मुनि ने उग्र तपश्चर्या प्रारम्भ कर दी। उन्हे देवो ने जो आज्ञा दी थी वह स्पष्ट थी। लोगो को यह समझाने की शक्ति उन्हे प्राप्त करनी थी। धीरे-धीरे उन्हे अपना मार्ग प्रशस्त होता दिखायी दिया।

भले ही भेद का अत्याचार अर्जुन जैसा ही हो, पर ऐसे दासो के इन आचरणो के कारण समस्त आर्यावर्त निर्वल हो रहा था। यदि आर्यावर्त ऐसे दासो को वश मे कर सके तो फिर अर्जुन को वश मे करने मे कितनी देर लगेगी ! मुनिवर ने निरन्तर ध्यान किया। अन्त मे देव प्रसन्न हुए, उन्हे दृष्टि दी। आर्यावर्त को सशक्त करने से पहले भेद का विनाश आवश्यक था।

मुनिवर ने पुन सप्तसिन्धु का पर्यटन किया। शका-समाधान, लाभालाभ की समझ, धर्म का आदेश आदि सव शस्त्रास्त्र का उपयोग किया। आर्यों के ग्रामो मे फिर उनके प्रेरक शव्द गूँजने लगे। पुन. लोगो मे श्रद्धा प्रकट हुई। विश्वामित्र द्वारा सिखायी हुई उदारता मे मृत्यु की जडें है, इसका पुन लोगो को भान हुआ। दास आकर आर्यो को उठा ले जायँ, इस अधर्म को निर्मूल किये विना गति नही है, यह परम कर्तव्य सवकी दृष्टि मे ओतप्रोत हो गया। तृत्सुग्राम मे पुन: सेनाएँ एकत्रित होने लगी।

धर्मयुद्ध के रणश्रृंग फूंके जाने लगे। मुनि वसिष्ठ और राजा सुदास के नेतृत्व मे आर्य कटिवद्ध होकर खडे हो गये। श्वेत अश्व पर चढकर मुनि वसिष्ठ राजाओ और सेनापतियो को प्रेरणा-मन्त्र देने लगे।

"आज का दिन तो देव द्वारा निर्दिष्ट है, हम लोग तो निमित्त-मात्र हैं। आर्यत्व का सरक्षण ही हमारा कर्तव्य है। आर्य विशुद्ध वनें, विशुद्ध रहें, यही हमारा व्रत है। आर्यो की शक्ति द्वारा रक्षित आर्यावर्त ही हमारा

ध्येय है। अनार्यत्व का उच्छेदन ही हमारा धर्म है।"

इन शब्दो का उच्चारण करके मुनिश्रेष्ठ ने घोडे को एड दी, और आर्यत्व के सहार के लिए तृत्सु, शृजय आदि की आर्य सेनाएँ दासो पर टूट पड़ी।

०००